॥ श्रीहरिः ॥

आनन्दमय जीवन

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

आनन्दमय जीवन

जीवनका दिव्य अभिप्राय

तुम्हारे अंदर परमेश्वर बोलते हैं, परमेश्वर सुनते और देखते हैं। तुम्हारे अणु-परमाणुओंमें ईश्वरकी निस्सीम सत्ताका निवासस्थान है। जहाँ तुम हो, वहाँ परमात्मा हैं; जहाँ परमात्मा हैं वहाँ तुम हो। तुम्हारा जीवन तथा व्यवहार परमेश्वरके दिव्य प्रबन्धसे सुव्यवस्थित है। परमात्मा तुमसे प्रेम करते हैं, इसीलिये वे सदैव तुम्हारा मार्ग-दर्शन किया करते हैं।

तुम कभी दुःखी, भ्रान्त या निराश नहीं हो सकते; क्योंकि तुम्हारे जीवनके संचालक परमात्मा हैं। परमेश्वरकी आनन्दमयी सत्तामें विकारोंको स्थान नहीं है। वह तो सरल, सुखद, निर्विकार, उदार, प्रेममय सत्ता है। परमेश्वर सत्य और शिव संकल्पमय हैं, तुम्हारे चेतन-अचेतनके साक्षी हैं। जब परमेश्वरसे तुम्हारा इतना निकटका सम्बन्ध है, तब संसारके क्षुद्र थपेड़े तुम्हें कैसे उद्विग्न, अशान्त और अप्रसन्न कर सकते हैं?

परमात्मा मंगलमय हैं। तुम्हारे अंदर रहकर तुम्हारे ही द्वारा वे शुभ कर्म कराते रहते हैं। तुम्हें वहीं जाना चाहिये जहाँ तुम्हारे ईश्वरीय अंशको संतुष्टि प्राप्त हो। तुम्हें वही पवित्र दृश्य देखने चाहिये जिनसे तुम्हारे नेत्रोंके पृष्ठ-भागमें रहनेवाले परमात्माको प्रसन्नता हो। जिसे तुम सुनते हो, वह ईश्वरकी दिव्य वाणी है। अतः तुम्हें स्नायुओं, रक्तकोषों तथा रग-रगमें दिव्य स्फूर्तिका संचार करनेवाली वाणी ही श्रवण करनी चाहिये।

समग्र विश्वमें एक तत्त्व ही निज कार्य नाना रूपोंमें प्रकट होकर सम्पन्न कर रहा है—एक ही आत्मा, एक ही विराट् सत्य वर्तमान है। अन्य तत्त्व इसीसे जीवन-शक्ति ले रहे हैं। यह वही दैवीतत्त्व है, जिसकी ओर हम स्वतः जा रहे हैं। वही सनातन परमेश्वर है। हम परमेश्वरके पुत्रोंका कलुषिता, गंदगी, अभद्रतासे कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि आज हम संसारके माया, मोह, वासनाकी कीचड़में फँसे हुए हैं तो उसका यह अभिप्राय नहीं कि हमें कभी दैवीतत्त्वका ज्ञान ही न हो। अवश्य हमें विश्वके इस महाप्रभावशाली तथा जीवनप्रद दैवीतत्त्वका अनुभव होनेवाला है। जिस दिन हम इस

दैवीतत्त्वसे अपना निकट सम्बन्ध स्थापित करेंगे, उसी दिन हमारे जीवनमें परिवर्तन प्रारम्भ होने लगेगा। वह एक नया रूप धारण करने लगेगा।

स्विट् मार्डनने दैवीतत्त्वके सम्बन्धमें लिखा है—'हम उसी परम तत्त्वके अंश हैं। हम उससे पृथक् नहीं हैं। जो गुण ईश्वरमें हैं, वे हमें सरलतासे प्राप्त हो सकते हैं; क्योंकि हमारा आदिस्रोत वही तो है। हम पूर्ण और अमर हो सकते हैं; क्योंकि पूर्ण परमात्मासे ही हमारी उत्पत्ति है, इत्यादि बातोंका अनुभव करनेसे हमारा जीवन एक प्रकारकी अपूर्व अलौकिकतासे परिपूर्ण हो जायगा। महान् आनन्द और संतोषसे वह भर जायगा। जितना ही हम दैवीतत्त्वके साथ एकताका सम्बन्ध स्थापित करेंगे, जितने ही हम सांसारिक क्षुद्रताओं, पारस्परिक मनोमालिन्य, द्वेष, ईर्ष्यासे सम्बन्ध त्यागकर परम पितामें तन्मय हो जायेंगे, उतना ही हमारा जीवन शान्तिमय, आश्वासनपूर्ण और उत्पादनयुक्त होगा।'

सेण्ट पालकी तो यह धारणा थी कि न मृत्यु, न जीवन, न स्वर्गीय दूत, न सिद्धान्त, न शक्ति, न वर्तमान पदार्थ, न भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले पदार्थ, न ऊँचाई, न गहराई—अभिप्राय यह कि संसारका कोई भी पदार्थ तुम्हें ईश्वरीय प्रेमसे पृथक् नहीं कर सकता। तुम अपनी आत्माके सत्यको पहचानो, वह तुम्हें सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त कर देगा।

जब तुम सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्त होते हो, तब तुम्हारी आत्मा सजग हो उठती है। आत्मा परमेश्वरका निवास-स्थान है। इसमेंसे जो ध्वनि होती है वह परमेश्वरका आदेश है। परमेश्वर आत्माके द्वारा बोलता है। यदि तुम ध्यानसे सुनो तो तुम्हें निर्देश देता है। भ्रष्ट पथसे रोकता है। गलतियोंपर धिक्कारता है। पाप-पथसे रोककर श्रेष्ठ पथकी ओर संकेत देता है। हमारी आत्मा निरन्तर ध्वनि किया करती है। अपने दुष्कृत्यपर जब तुम पछताते हो तो समझो कि यह परमेश्वरका ही संदेश है।

स्मरण रखो, तुम्हारी आत्मापर संसार-संग्रामका और संसारके मिथ्याडम्बरका कोई प्रभाव नहीं हो सकता। तुम संसारकी ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोहके वशमें इधर-उधर मारे-मारे फिरनेवाले पुतले नहीं हो। तुम अजर, अमर, नित्य और सनातन आत्मा हो। तुम सांसारिक परिस्थितियोंके गुलाम नहीं हो सकते।

तुम्हारे भीतर जो प्रकाशमान तत्त्व है वह मरेगा नहीं। शरीर नष्ट हो

सकता है; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश-तत्त्व इन्हीं तत्त्वोंमें विलीन हो सकते हैं; किंतु तुम्हारे भीतर रहनेवाला तुम्हारा स्वरूपभूत आत्मतत्त्व मृत्युसे निर्भय है। मृत्युका उसपर कोई वश नहीं। मृत्यु उसे नहीं मार सकती! वह मृत्युपर भी विजय प्राप्त करता है। इस आत्मस्वरूपको पहचाननेसे मनुष्य विकराल काल-चक्रसे मुक्त हो जाता है।

जबतक तुम अपनी आत्माको नहीं पहचानते, तभीतक बन्धनमें समझते हो। जब तुम अपनेको शरीर नहीं, आत्मा समझोगे; अन्तरात्माकी उच्च स्थितिमें रहोगे; वैयक्तिक क्षुद्रताओंसे ऊँचे उठकर अपने आत्मस्वरूपको पहचान लोगे, तभी वास्तविक अर्थोंमें सुखी हो सकोगे। जबतक मनुष्य अपनी आत्माको नहीं पहचानता, तबतक उसे सुख, शान्ति, संतोष प्राप्त नहीं होते।

अपनी दुश्चिन्ताओंसे तुम इसलिये परेशान हो; क्योंकि तुम अपने-आपको स्थायीरूपसे सांसारिक मोह-बन्धनसे बाँधे हुए हो। गृह, बन्धु-बान्धव, नाना सांसारिक वस्तुएँ तुम्हारे साथ सदैव रहनेवाली नहीं हैं। इनका सम्बन्ध क्षणिक है। इसी प्रकार इनकी चिन्ताओंका आवरण भी क्षणिक है। मोह-बन्धनके अन्धकारमें तुम्हें सदा नहीं रहना है।

इस संसारमें जन्मसे पूर्व तुम्हारा सम्बन्ध परमेश्वरसे था। उसीके तुम एक अंश थे। उस बृहत् प्रकाशपुंजकी एक सनातन अभिन्न रश्मि ही तुम्हारी आत्माका स्वरूप है तथा वह तुम्हारे ही शरीररूपी मन्दिरमें प्रतिष्ठित हुई। पचास-साठ वर्षके लिये इस आत्मतत्त्वकी संसारमें प्रतिष्ठा स्थापित करनेके लिये तुम्हें यहाँ भेजा गया है। जब तुम सांसारिक मोहमें आत्मसत्ता भूलते हो, तब इस दिव्य प्रयोजनको भूल जाते हो जिसके लिये परमेश्वरने तुम्हें भेजा है।

जिस तत्त्वको आत्मविश्वास कहते हैं, वह तुम्हारे भीतर बैठे हुए परमेश्वर ही हैं। आत्मविश्वास तुम्हारी शक्तिका मूल केन्द्र है। जो मनुष्य आत्मविश्वाससे सुरक्षित है, वह परमेश्वरसे सच्चा सान्निध्य प्राप्त कर चुका है। यही सत्य और बुद्धिका प्रकाश है, संसारमें जो चमत्कार देखते हैं, यह महान् आत्मविश्वासी पुरुषोंका प्रताप है। जीवनका दिव्य अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपनी आत्माको समझे और उसीके प्रकाशमें रहकर कार्य करे।

आनन्दमय जीवन

भारतीय संस्कृति एवं जीवन-दर्शनकी मूल वृत्ति जगत्‌को आनन्दमय मानती है। जहाँ हम जीवको ब्रह्मका सनातन अंश मानते रहे हैं, वहाँ जगत् तथा सृष्टिके मूलमें आनन्द और कल्याणके तत्त्वोंका विधान है। हमारे जीवनका लक्ष्य आनन्दकी प्राप्ति है, हम निरन्तर आनन्दकी ओर गतिमान् हैं। चरम आनन्दकी प्राप्ति हमारा लक्ष्य है। हमारे जीवनका आधार और प्रयोजन चरम आनन्दकी उपलब्धि है।

पाश्चात्य विचारधारा और संस्कृति भौतिकवादी आधार-शिलापर अवलम्बित हैं। वस्तुतः उनमें अतृप्ति, विषाद तथा निराशा है। भारतीय जीवन-दर्शनमें, हमारे साहित्य, कला और संगीतमें जीवनका जय-घोष गुंजरित किया गया है, तो दूसरी ओर पाश्चात्त्य साहित्यमें सस्ती भावुकता, रोमांस भौतिकवाद और दुःख-निराशाकी कालिमा बिखेरी गयी है। एक ओर आध्यात्मिक आनन्द, अनन्त सुख, आशा-उत्साह है, तो दूसरी ओर नास्तिकता और भौतिकवादका गहन अन्धकार। हमारे यहाँ मृत्युके पश्चात् भी दूसरे लोकमें आनन्दमय जीवनका विधान है। अपने जीवनपुष्पको आनन्दके वातावरणमें रखने और आशा-उत्साहके शुभ्र आधारपर खड़ा रखनेवाला भारतीय विषम परिस्थितियों तथा प्रतिकूलताओंमें भी उत्साह एवं प्रफुल्लताके दर्शन करता है।

परमेश्वर आनन्दकन्द हैं। उनके सब अंगोंसे आनन्दकी किरणें प्रकाशित होती हैं। उनके मुखारविन्दपर आनन्दकी मधुर मुसकान है। वे सुहृद्, दयालु, प्रेमी, सुन्दर, ऐश्वर्यवान् हैं। वे चारों ओर अपनी सृष्टिमें अपने इसी आनन्द-रसकी वर्षा करते रहते हैं। जब आप अपने-आपको आनन्दस्वरूप परमेश्वरका अंश मानते हैं, तब दूसरे शब्दोंमें उनके आनन्दतत्त्वका अपने अंदर होना स्वीकार कर लेते हैं। बीजमें जो गुण होते हैं, वे ही पौधेके रूपमें अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होते हैं। आनन्दके पौधे होनेके कारण आपमें, आपके अणु-अणुमें आनन्द-ही-आनन्द सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। अतः संसारकी प्रतिकूलताओंके होते हुए भी आपके जीवनका विस्तार सदा-सर्वदा आनन्दमें होना चाहिये।

आपके आनन्दका स्रोत हृदयमें है। मनमें जीवन, जगत् और समाजके प्रति आपका जैसा दृष्टिकोण है, वैसा ही आपके चारों ओर प्रतिक्रियास्वरूप संसारमें प्रकट होता है। यदि आपने अपने आनन्दके उद्‌गमको बंद कर रखा है और दुःख-निराशाके रन्ध्रोंको खोल रखा है, तो निश्चय ही आपका जीवन अन्धकारमय रहेगा।

आपने अपने आनन्द तथा अधिकतम सुखका क्या आदर्श बताया है और सतत उसकी ओर चलनेमें कितना उत्साह, आन्तरिक शान्ति, मनका संतुलन प्राप्त कर रहे हैं।

आत्मिक आनन्द, उच्च विचार एवं सदुद्देश्योंमें रमण करने तथा उन्हें प्राप्त करनेमें आप कितने जागरूक रहते हैं? आपके मनमें उन्हें प्राप्त करनेके लिये कितनी निष्ठा, उद्योग एवं श्रमकी शक्तियाँ हैं? बिना श्रमके आप न अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकते हैं, न भविष्यके लिये सुख-सामग्रीके उपादान एकत्रित कर सकते हैं। अतः मनोयोगपूर्वक श्रम करनेको प्रस्तुत हो जाइये। आनन्दपूर्वक किया गया काम न केवल जीवनमें मधुरता और उत्साहका संचार करता है, प्रत्युत वासनाओंको भी दबाता है। कार्यमें आनन्द लेनेकी वृत्ति बड़ी सुन्दर है। जगत्‌के महत्तम दार्शनिकोंने श्रमकी प्रतिष्ठा की है। अपना प्रिय कार्य चुनिये तथा उसे सम्पन्न करनेमें आनन्दकी भावना सदा मनमें पुनः-पुनः लाते रहिये।

अपने आनन्दोंका वर्गीकरण कीजिये और देखिये कि वे किस कोटिके हैं—

पाशविक आनन्द

क्या आप पाशविक आनन्दोंके पीछे मतवाले हो रहे हैं? पाशविक आनन्द क्या हैं? जिन आनन्दोंसे पशुओंको तृप्ति मिलती है वे पाशविक आनन्द कहलाते हैं। पशुओंमें तीन प्रकारके आनन्द होते हैं—१—भोजनके आनन्द, २—विषय-वासनाकी तृप्तिके आनन्द, ३—निद्राके आनन्द। पशुओंको अच्छा पेटभर भोजन प्राप्त हो जाय, विषय-वासनातृप्तिका सुख प्राप्त हो जाय और फिर निद्रा मिले, तो वे सबसे अधिक आनन्दका अनुभव करते हैं।

क्या आप केवल भोजन, विषयवासना-तृप्ति या निद्रामें ही सबसे अधिक सुखकी प्रतीति मानते हैं? यदि ऐसा है तो निश्चय ही अभी पशुके स्तरसे ऊँचे नहीं उठे हैं। प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि पाशविक आनन्दोंसे ऊपर उठे।

मानवोचित आनन्द

मनुष्य बौद्धिक प्राणी है। मन उसकी अद्‌भुत शक्तियोंका केन्द्र है। उसके मनमें नाना शक्तियोंका संग्रह है। कल्पनाद्वारा वह नये-नये प्रसंगों, नये-नये भावों, कथानकों, स्थितियोंका आनन्द प्राप्त करता है; भाव आनन्दके आदिस्रोत हैं। हर्ष, उल्लास, करुणा, प्रेम, दया, सौहार्द आदि नाना भावोंमें आनन्दका अनुभव करता है। एकाग्रता, मनन, चिन्तन इत्यादि अनेक तत्त्व आनन्द प्रदान करनेवाली प्रक्रियाएँ हैं। हमें चाहिये कि स्वयं अपने मनके द्वारा आनन्द प्राप्त करें। साहित्य, कला, संगीत, ललित कलाएँ, कविता इत्यादि हमारे सात्त्विक आनन्दके स्रोत हैं। हम चाहें तो स्वयं नये साहित्यके निर्माणद्वारा सृजनात्मक आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। वैज्ञानिक आनन्द आजके युगकी माँग हैं। नयी-नयी वस्तुओं, कलों, पुर्जों, डिजाइनोंके निर्माणमें हम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। संसारमें भ्रमणकर देश-विदेशकी समस्याओंके अध्ययनद्वारा आनन्दमग्न हो सकते हैं।

उच्चतम आत्मिक आनन्द

सर्वोत्कृष्ट आनन्द परमेश्वरसे दैवी एकताका सम्बन्ध स्थापित करने, अपना सम्बन्ध किसी उच्चतम सत्तासे जोड़नेमें है। प्रार्थना, ईशचिन्तन, उपवासद्वारा आत्मशुद्धि, उच्च आध्यात्मिक साहित्यका चिन्तन, मनन और अध्ययन, सद्‌विचारमें रमण, सत्संग-विहार आदि वे साधन हैं जिनसे मनुष्य सांसारिकतासे छूटकर उच्च आत्मस्थितिमें प्रवेश करता है। हम जितना ही ऊँचे चिन्तनमें रमण करते हैं, उतने ही भव-मोह-बाधासे मुक्त होते जाते हैं। स्तुति, प्रार्थना और उपासना वे साधन हैं जिनके द्वारा दैवी आनन्दसे हमारा निकट सम्बन्ध स्थापित होता है और हम उच्च आत्मस्थितिमें आते हैं।

आजका युग शिकायतोंका युग है, जिसमें हरेक व्यक्ति असंतुष्ट, अतृप्त, अधीर-सा प्रतीत होता है। लोग उन आदर्शोंके प्रति मनमें टीस लिये फिरते हैं, जो कभी प्राप्त न किये जा सकें। वे उन वस्तुओं, सम्बन्धों, आनन्दोंकी बात सोच-सोचकर पछताते हैं, जो कभी न मिल सकें। वे संसारके संघर्षोंसे टक्कर न ले सके, अतएव सबसे शिकायत करते और दूसरोंके नाना दोष निकालते फिरते हैं; दूसरोंकी विध्वंसात्मक आलोचना करते हैं। इस युगमें हरेक बेसुरा-सा अनुभव करता है और घोर नैराश्यके दुःख-उदधिमें डूब रहा

है। यह गलत दृष्टिकोण ही हमारे दुःख और प्रतिकूलता (Maladjust-ments)-का कारण है। हम शायद इसीलिये दुःखी हैं; क्योंकि हम शिकायतें करते और दूसरोंमें दोष-दर्शनकी प्रवृत्ति रखते हैं। आधी आबादी उस काल्पनिक सुखकी तलाशमें है जो कदाचित् कभी वापस नहीं आयेगी। बहुत-से हाथ मल-मलकर किसी ऐसे भविष्यकी आशा लगाये बैठे हैं जिसमें सब कुछ एकाएक प्राप्त हो जायगा। आजके जीवनमें, वर्तमानमें आनन्द लेनेवाले बहुत अल्पसंख्यक व्यक्ति हैं। दुःख और प्रतिकूलताएँ तो चला करती ही हैं; किंतु उनके बावजूद तो थोड़े-से अल्पसुख, सरल आनन्द और मस्तीके क्षण हैं, उनका रस लेनेवाले कम हैं।

आपका जीवन कितना ही कष्टकर क्यों न हो, व्यक्तिगत अथवा सामाजिक प्रतिकूलताएँ कैसी भी विषम क्यों न हों, संसारमें आपके लिये फिर भी आनन्द, सुख, यश और प्रतिष्ठा है, सच्चे मित्रोंका प्रेम है; प्रकृतिका अतुल भण्डार आपके लिये खुला पड़ा है; निद्राका मधुर मरहम है; शान्तिकी गोद है, उत्साहकी रश्मियाँ हैं। नयी-नयी वस्तुओंके निर्माण, इतिहासकी बहुमूल्य निशानियोंके संरक्षणका आनन्द है। परिवारके बच्चों तथा पत्नीके मधुर प्रेमकी प्रेरणा है; घरकी वस्तुओंकी सजावटमें आनन्द है, संगीतकी मंद स्वरलहरीमें आह्लाद है। सच मानिये, यदि विवेकपूर्ण दृष्टिसे अपनी गरीबी और बेबसीकी जिंदगीको भी आप देखेंगे, तो आपको आनन्दकी अनेक वस्तुएँ प्राप्त हो जायेंगी।

उदात्त मानवीय भावनाओंको मनमें रखना, उनके अनुसार आचरण करना, दूसरोंमें उनका विकास करना स्वयं अपने तथा दूसरोंके आनन्दकी दृष्टिका अमोघ उपाय है।

आनन्दमय जीवनके उपकरण

यदि आप अपने विचारोंको उत्थान और विकासकी ओर उत्तेजित करें तो आप अपनी वर्तमान स्थितिमें भी आनन्द और समृद्धिकी मनःस्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। वह व्यक्ति क्योंकर आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है, जो नकारात्मक विचारोंके वायुमण्डलमें रहता है? आप अपने विरोधी, अपनी कमजोरी, निर्बलता, अयोग्यता, कठिनताके समस्त घातक विचारोंको मनोराज्यसे बहिष्कृत कर दीजिये।

आजसे ही केवल अपनी उन्नति और विकासके सृजनात्मक विचारोंके वायुमण्डलमें ही निवास कीजिये। यह स्वीकार कीजिये और अपने गुप्त मनमें यह बात बैठा लीजिये कि आपकी आत्माका निकट सम्बन्ध परम-आत्मा (ईश्वर)-से है। प्रेम, सौहार्द, सत्य, विवेक, संतुलन, शान्ति आदि दैवीतत्त्वके प्रकाश आपके जीवनमें अवश्यमेव होंगे। ये आपके हैं। आप सुखी, आनन्दमय जीवन अवश्य व्यतीत करेंगे। आपमें उच्चकोटिकी सृजनात्मक शक्ति है, आपमें अन्त:प्रेरणा है, आन्तरिक प्रकाश है। आपके भाग्यमें संकुचितता नहीं, विपुलता है।

मानव-जीवन सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ जीवन है। इसकी महत्ता एक स्वरसे सबने स्वीकार की है। जब अनेक जन्मोंके पुण्यों तथा शुभ संस्कारोंके फलस्वरूप आपको आनन्दमय मानव-जीवन प्राप्त हुआ है, तब क्यों नहीं इसका सर्वाधिक आनन्द प्राप्त करते? आप मानव हैं, सृष्टिके सर्वश्रेष्ठ जीव हैं, अपनी मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियोंको विकसित कीजिये और भविष्यमें अधिकाधिक विकासकी सम्भावनाएँ स्वयं आपको प्रतीत हो जायँगी।

अपनी आत्माको शान्त संतुलित रखनेके हेतु उत्तेजनाओं और क्षुद्र सांसारिकतासे बचते रहिये। जो व्यक्ति ईश्वरमें दृढ़ विश्वास लेकर जीवनमें प्रविष्ट होता है, बच्चों-जैसे निर्मल, चित्तसे श्रद्धापूर्वक दैवी सत्ताके प्रकाशको मानता है, वह संसारके मोहजालसे मुक्त रहता है। ईश्वरीय आधार मिलनेसे मनुष्य आन्तरिक रूपमें आनन्दित हो जाता है।

सादा जीवन व्यतीत किया करें। अपनी आदतोंमें संयमी बनें, स्वार्थ और स्वकेन्द्र करनेकी प्रवृत्तिका परित्याग करें। जीवनमें वे ही व्यक्ति दु:खी बनते हैं जिनका जीवन कृत्रिम आवश्यकताओं, व्यसनों, विलासिता, मिथ्या प्रदर्शन, झूठी शान या अभक्ष्य पदार्थोंके प्रयोगसे भरा हुआ है।

एक बार मैं तथा मेरे छ: साथी प्रोफेसर चुनावके सम्बन्धमें अफसर बनाकर बाहर ग्रामोंमें भेज दिये गये। एक सज्जन स्नानके लिये गरम पानी, शेविंगकी सुगमता, प्रात: चाय तथा बिस्कुटकी चिन्तामें थे, तो दूसरे सिगरेटके लिये उतावले थे। तीसरे नौकरको पुकार-पुकारकर उनका बिस्तर न उठाने और चेस्टर न देनेपर परेशान थे, चौथे महोदय टट्टीके लिये पानी माँग रहे थे, स्वयं नहीं लेना चाहते थे। एक महोदय बिस्तरेमें पड़े-पड़े जाड़ेकी

शिकायत कर रहे थे। सारांश, प्रत्येक अपने कृत्रिम जीवनकी जंजीरोंमें जकड़ा पड़ा था और तनिक-सी असुविधासे छटपटा रहा था। सुखमय जीवन मेरा था, जो नौकरके होते हुए भी स्वयं अपने पाँवोंपर खड़ा दूसरोंकी सहायताको प्रस्तुत था। सादगी सबसे बढ़िया फैशन है। कृत्रिमता और बनावट सबसे अधिक दु:खदायक हैं।

आर्थिक समस्या आज प्रत्येक व्यक्ति और परिवारकी समस्या है। जो कुछ आप कमाते हैं, उससे कम व्यय कीजिये। सम्भव है आपको अपनी आवश्यकताएँ कम करनेमें कठिनाइयाँ प्रतीत हों। सच मानिये, आयके अनुसार अपना बजट बनाने और नियन्त्रण करनेवाला व्यक्ति ही सुखी रहता है। दृढ़ नियन्त्रण और संयमके बलपर प्रत्येक व्यक्ति कुछ बचत अवश्य कर सकता है। आपका सुख आपकी बचतपर निर्भर है—यह मत भूलिये। चाहे आज आधे भूखे रहिये, फटे वस्त्र पहनिये, टूटे घरमें रहिये, पर बचतकी योजना घरमें अवश्य रखिये। स्वयं इसपर कार्य कीजिये और अपने बच्चोंको सिखलाइये।

सृजनात्मकरूपसे विचार किया कीजिये। अपने-आपको ऐसी शिक्षा दीजिये कि आप स्पष्टत: और सचाईसे विचार कर सकें, कल्पनाके मिथ्या लोकमें न रहें। अपना मन उपयोगी योजनाओंसे परिपूर्ण रखा कीजिये। अपने मस्तिष्कके द्वारपर एक जागरूक प्रहरीकी भाँति खड़े रहिये कि कहीं कोई अनिष्टकर, अहितकर घातक विचार उसमें अनजानमें प्रविष्ट न हो जाय। प्रत्येक घातक विचार आपका भयंकर शत्रु है। सावधान!

दूसरोंके समक्ष बहस या तर्कमें, बातचीत तथा व्यवहारमें आत्मसमर्पणकी आदत बनाइये! मान लीजिये, आप किसीसे भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं, धर्म, संस्कृति, जाति-पाँति, शिक्षा या अन्य किसी विषयमें मतभेद है। अब आप बातचीत करते समय अपना मत दृढ़तासे प्रतिपादन कर रहे हैं, दूसरे सज्जन भी हठसे अपनी बातपर डटे हुए हैं। दोनोंमें बहस चल रही है। कोई अपने 'अहम्' को चोट नहीं पहुँचाना चाहता। हमारा सुझाव है कि आप आत्म-समर्पण कर तनिक देरके लिये हार मान लीजिये और विरोधी व्यक्तिको प्रोत्साहित होने दीजिये। इससे दूसरा व्यक्ति अपनी विजय मानकर बड़ा प्रसन्न होगा, उसका 'अहम्' उत्तेजित हो उठेगा और वह आपका सदाके लिये मित्र बन जायगा।

आत्मसमर्पणकी आदत समाजमें मधुर और स्निग्ध सम्बन्धोंको स्थिर

रखनेवाली अमृतोपम ओषधि है। अपनी हठ करनेकी आदत छोड़ दीजिये, बल्कि सम्भव हो तो स्पष्टरूपमें अपनी भूल स्वीकार कर लीजिये, दूसरोंका दृष्टिकोण देखिये, अपनेको तौलिये और व्यावहारिकता सीखिये। घर, ग्राम, मुहल्ला, अपने शहर, सब जगह ऐसे व्यक्तिका स्वागत होता है जो दूसरोंका दृष्टिकोण समझनेको प्रस्तुत रहता है। हठी, उत्तेजित होनेवाला, दम्भी, कुटिल और अहंवादीका सर्वत्र तिरस्कार होता है।

कृतज्ञ बनिये, अर्थात् जो व्यक्ति आपके लिये बलिदान करते हैं, सदा सहायक एवं हितेच्छु हैं, उन मित्रों, हितैषियों, शुभाभिलाषियोंके प्रति कृतज्ञता स्वीकार करते चलिये। सबसे अधिक कृतज्ञ परमेश्वरके प्रति रहिये, क्योंकि उनकी अनुकम्पासे आप कभी उऋण नहीं हो सकेंगे। जिन अवसरोंके कारण आप इतने समुन्नत हुए हैं उनके प्रति, उनको लानेवाले व्यक्तियोंके प्रति कृतज्ञ बनिये। आपको भगवान्‌ने कार्य करने, प्रसन्न रहनेकी शक्तियाँ प्रदान की हैं, अतः उनके प्रति अपने कर्तव्योंका निर्वाह करते चलिये।

अपने स्वभाव तथा मनःस्थितियोंपर काबू रखिये। इसका आपके आन्तरिक जीवन तथा सुख—आनन्दसे निकट सम्बन्ध है। मधुर-प्रसन्न स्वभावका व्यक्ति विकट जीवन-स्थितियोंमें भी प्रसन्न-चित्त रहता है। मुसकराहट उसके मानसिक संस्थानका एक अंश होता है।

मनःशान्ति, उल्लास और सद्भावनाकी मनःस्थितियोंको विकसित कीजिये। जिस मस्तिष्कमें शान्तिपूर्वक उल्लसित मुद्रासे कार्य करनेका स्वभाव है, वह विषम परिस्थितियोंमें भी आनन्दित रह सकता है।

जीवनमें उदारता बड़ी सुखमय मनःस्थिति है। इसका विरोधी तत्त्व अर्थात् संकुचितता मनुष्योंको दबाने, सीमित करने और अहंवादी बनानेवाला दुर्गुण है।

जो सुख हमें दूसरोंको देनेसे प्राप्त होता है, उसे कोई भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है। देनेसे मन उदार बनता है और मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक, आध्यात्मिक सभी प्रकारकी शक्तियोंका विकास होता है। यह दान रुपये-पैसे, श्रम, सहयोग, प्रेम आदि अनेक प्रकारका हो सकता है। यदि आपके पास धन दान देनेके लिये नहीं है, तो श्रम-दान कर दीजिये। श्रम-दान अर्थात् अपने मन, शरीर, वचन, कर्म किसी भी प्रकारके श्रमद्वारा दूसरोंकी सहायता कर दीजिये। इस उदारतासे आपकी गुप्त आध्यात्मिक शक्तियोंका विकास होगा। उदारता मनुष्यके बड़प्पनका चिह्न है।

जीवनमें सदुद्देश्यसे कार्य करते चलिये। यदि आपका उद्देश्य पवित्र है तो गरीबीके जीवनमें भी सुख, शान्ति और आनन्द है। 'सब सुखी हों, सब स्वास्थ्य प्राप्त करें, सब कल्याण प्राप्त करें, सब उन्नति करते रहें'—ये ऐसी भावनाएँ हैं जिन्हें सामने रखकर कार्य करनेसे मनुष्यको आन्तरिक सुख-संतोष प्राप्त होता है। आपके जीवनका उद्देश्य आध्यात्मिक सौन्दर्यसे युक्त जीवन तथा शक्तिकी प्राप्ति होना चाहिये। यह उद्देश्य सबसे ऊँचा और कल्याणकारी है।

दूसरोंके जीवनमें दिलचस्पी लिया कीजिये। स्वकेन्द्रित होनेसे मनुष्य दूसरोंका हानि-लाभ नहीं देख पाता, अपना-ही-अपना भला देखता है। यह स्थिति बड़ी दयनीय है। जितना आप दूसरोंको देते हैं, प्रेम करते हैं और सहायता प्रदान करते हैं, उतने ही अनुपातमें आप आनन्द और सुख-शान्ति प्राप्त करते हैं।

एक-एक दिनको श्रेष्ठ और सुखी बनाइये। अर्थात् एक बारमें एक प्रकारका जीवन व्यतीत कीजिये। आपका जो सबसे आवश्यक कार्य है, जो आपको आज ही कर डालना है, उसके महत्त्वको देखते हुए पूर्ण कर डालिये। जितनी अच्छी तरह, जितनी प्रसन्नता एवं संतोषसे आपका आजका जीवन व्यतीत होगा, एक-एक करके वैसा ही समग्र जीवन बनता जायगा।

कोई विशेष रुचि रखिये। प्रकृति-प्रेम, टहलना, बागवानी, संगीत, खेल, साहित्य, कला, चित्रकारी, फोटोग्राफी, बढ़ईगिरी, विदेशी भाषाएँ सीखना, समाज-सेवा, यात्रा, लिखना-पढ़ना आदि-आदि अनेक प्रकारकी विशेष रुचियाँ हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी प्रकृति और शक्तिके अनुसार कोई भी शौकका साधन जुटा सकता है। शौकोंमें लगे रहनेसे जीवनका भार प्रतीत नहीं रहता और तनाव दूर करनेका एक साधन प्राप्त हो जाता है। अवश्य ही वे शौक आत्म-पतन करनेवाले न हों।

परमेश्वरपर जीती-जागती निष्ठा, पूर्ण विश्वास और श्रद्धा जीवनको मधुर बनानेके अमोघ साधन हैं। पूजा, भजन, कीर्तन, सद्ग्रन्थावलोकन, सत्संगविहार वे दिव्य साधन हैं जिनसे मनुष्यका जीवन ऊँचा उठता है और वह क्षुद्र सांसारिकतासे मुक्त होकर मनःशान्ति प्राप्त करता है। ईश्वर आपके जीवनका केन्द्रविन्दु है। उससे निरन्तर संयुक्त होने, अपना सम्बन्ध बनाये रखने, आत्मचिन्तन करनेसे जीवनमें गहराई आती है।

मंगलमय भविष्यकी आशा रखिये

स्मृति एवं आशा मनुष्यके मानसिक जीवनके दो पक्ष हैं। अनेक व्यक्ति वर्तमान जीवनसे असंतुष्ट होकर विगत कटु-मृदु अनुभूतियोंमें डूबने-उतराने लगते हैं। कुछ वर्तमानके कठोर संघर्षका रोना रोते रहते हैं। अतीतकी चिन्ता या वर्तमानकी व्यस्तता विचारके लिये ये दोनों ही उतने उपयोगी नहीं हैं, जितना मंगलमय भविष्यका शुभ चिन्तन।

वर्तमान जीवनसे पलायन कर दैनिक समस्याओंसे अनायास ही मुक्ति प्राप्त कर लेना सम्भव नहीं है। वर्तमानकी विभीषिकाका सामना करना ही होगा। यदि आप उनसे पलायन करेंगे, तो सम्भव है भारी खतरेमें फँस जायँ। अतः उनमें भरपूर आत्मविश्वाससे संलग्न रहें। वर्तमान हमारे संघर्षका युग है। हम अपने पुरुषार्थको विकसित करें और डटकर इन प्रतिकूलताओंका सामना करें।

अतीत मृतप्राय है। जो समय चला गया, सो सदा-सर्वदाके लिये हाथसे गया, नष्ट हो गया। उसपर हमारा कोई बस नहीं। अतीतकालीन कष्टों एवं दुश्चिन्ताओंमें निमग्न रहना मस्तिष्ककी सूक्ष्म कार्य-शक्तियोंको पंगु कर देना है। आत्मा पुरानी स्थितिमें ही निवास करती है। पुरानी गलतियोंका रोना रोनेवाले आगे चलनेके पाँव काट डालते हैं। बीती हुई त्रुटियोंपर परेशानी हीनत्वकी आत्मभावनाको विकसित कर मनुष्यको डरपोक बना डालती है। गड़े हुए मुर्दे उखाड़नेवाले दुर्गन्धमय वातावरणमें निवास करते हैं।

मनुष्यका मन चंचल है। हमारे मस्तिष्कको चिन्ताके लिये केन्द्र-विन्दु चाहिये। उसे चाहे आप विगत स्मृतियाँ दीजिये अथवा वर्तमानका शुष्क संघर्ष; स्मरण रखिये, यदि आप उसे सोचने-विचारनेके निमित्त विचार-कण न देंगे तो वह अतीत या वर्तमानमेंसे कोई भी चुनकर अपना भला-बुरा ताना-बाना बुनना शुरू कर देगा। चिन्तनके लिये कुछ देना आपके मानसिक स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है।

विगत स्मृतियोंमें हम मृदु अनुभूतियोंके स्थानपर कटु प्रसंग अधिक याद रखते हैं। स्मृतियोंके अतुल भंडारमें नाना दुःखभरी अनुभूतियाँ गुप्त मनमें संगृहीत रहती हैं। बहुत-से मानसिक अनैतिक वासनाओं-सम्बन्धी प्रारम्भिक जीवनकी मूर्खताएँ, अनजानमें किये हुए पाप, दोष, दुर्व्यवहार, दूसरोंका

अहित, ईर्ष्या, मनमुटाव अन्तःकरणमें, स्मृतियोंकी चट्टानोंमें दबे पड़े रहते हैं। अनेक गंदी वासनाओंको हमें बलपूर्वक दबाना पड़ता है, समाजके बन्धनका ध्यान रखना पड़ता है। अतीतकी दबी हुई पीड़ा, कष्ट, दुःखद प्रसंग, गलतियाँ जितनी भुला दी जायँ उतना ही श्रेष्ठ है। मानसिक स्वास्थ्यके लिये उन्हें कब्रमें दफना देना ही स्वास्थ्यप्रद है।

आपका मन यदि इन्हीं गलतियोंमें निहित रहेगा तो ये भूलें या वेदनाएँ परिवर्तित, संक्षिप्त, सम्मिश्रित और रूपान्तरित होकर आपके वर्तमान मधुर जीवनको कड़वा बना देंगी। आपका वर्तमान उस काली छायामें दिल तोड़ देगा और वर्तमानकी फुलवारी सूख जायगी।

अतीतके दुःखोंको याद करनेवाले व्यक्तिके मनमें एक गुपचुप भय, शंका, वेदना सदा बनी रहती है। ऐसे व्यक्ति मिथ्या भय, ईर्ष्या, क्रोध, वासना या वैरकी जटिल मानसिक ग्रन्थियोंसे पीड़ित रहते हैं।

मस्तिष्ककी उन्नति, स्वास्थ्य, ताजगी और उर्वरा-शक्तिको बनाये रखनेके लिये यह आवश्यक है कि आप मंगलमय समुन्नत भविष्यकी आशा रखिये। उत्तम भविष्यपर मनको केन्द्रित करनेसे नव-प्रकाश, नव-स्फूर्ति, नयी-नयी कल्पनाएँ जाग्रत् होती हैं। मनुष्यकी कार्यशक्तियोंमें अभूतपूर्व उन्नति होती है। आशाके सुनहरे प्रदेशका स्पर्श पाकर मनुष्य द्रुतगतिसे अग्रसर होता है।

भविष्य उत्तम है। आगे हमारे सुख एवं समृद्धिका समय आ रहा है। हमारे आनन्दके दिन अब आ गये हैं; दुःख-क्लेश, परस्परविरोधी इच्छाएँ, प्रतिकूलताएँ समाप्त हो चुकी हैं; अब तो चारों ओर आनन्द ही है। हमारे आगे यश, प्रतिष्ठा एवं प्रेमका सुरम्य प्रदेश खुल गया है। आनन्द ही हमारा सच्चा स्वरूप है। हमारा भविष्य ही चतुर्दिक् उन्नतिके लिये शानसे चला आ रहा है—मनको इस प्रकारकी स्वास्थ्यदायक भावनामें सराबोर रखना उन्नतिके लिये बड़ा उपयोगी है। ऐसे संकेत निरन्तर देनेसे हम अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यकी वृद्धि करते हैं।

हम जितना ही अपनी शक्तियोंसे माँगते हैं, उतना ही अधिक हमें मिलता है। आशामें जितनी सचाई और आत्मविश्वास होता है, वह उतनी ऊँची होती जाती है। अन्तमें यह आशावादिता हमारे स्वभावका एक अंग बन जाती है।

भविष्यकी शुभ आशाओंमें ऐसा जादूभरा संदेश छिपा है, जो हमारे मनमें, शरीरके अंगोंमें, अणु-अणुमें, रक्तमें स्फूर्ति एवं नवशक्ति भर देता है। हमारा

मुखमण्डल पौरुष एवं ईश्वरीय तेजसे देदीप्यमान हो उठता है।

वह व्यक्ति धन्य है, जो अपने पुराने अनुभवोंके बलपर विवेकबुद्धि एवं निज शक्तिको देखकर अपने भविष्यकी कल्पना करता है। भविष्यकी आशा जरूर कीजिये, किंतु सावधान! ऐसी ऊँची-ऊँची असम्भव कल्पनाओंमें मत डूब जाइये जो कभी पूर्ण न हों, या जिनतक आपकी शक्तियाँ न उठ सकें। अपने वर्ग, स्तर और योग्यताओंके अनुसार आप भविष्यको उज्ज्वलतर बनानेकी शुभ भावनाएँ करें।

हमारी आशाकी, सुखकी, आनन्दकी भावनाको कोई नहीं छीन सकता। भविष्यमें उन्नति करनेकी भावना, प्रसन्न रहनेकी भावना, अधिक-से-अधिक परिश्रम कर समुन्नत होनेकी भावना—ये मनुष्यको ऊँचा उठानेवाली जीती-जागती शक्तियाँ हैं।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ (गीता २। ६५)

'चित्तके परम प्रसन्न होनेपर सब दुःखोंका नाश हो जाता है और अखण्ड प्रसन्नतायुक्त चित्तकी स्थिति बनी रहनेसे बुद्धि सुस्थिर हो जाती है।'

ये चिन्ताएँ

मानव-बुद्धिके विकारग्रस्त, कुण्ठित, विषादमय रूपसे उत्पन्न मैलका नाम 'चिन्ता' है। यह मस्तिष्ककी वह अवस्था है, जब मनुष्य अपने लाभ तथा उन्नतिके स्थानपर भय, कुढ़न, शक्तिहीनता, परिस्थितिकी विषमता, दैन्यका अनुभव करता है। चिन्ता किसी भी दशामें मनुष्यकी कमजोरी तथा परिस्थितिसे संघर्ष न कर सकनेका प्रमाण है।

चिन्ताएँ नाना रूपों तथा विषयोंकी होती हैं। मुख्यरूपसे हम उन्हें निम्न विभागोंमें बाँट सकते हैं—(१) शारीरिक चिन्ताएँ, (२) सांसारिक चिन्ताएँ और (३) धार्मिक चिन्ताएँ। स्थूलरूपमें यह कहा जा सकता है कि सांसारिक चिन्ताएँ सबसे अधिक लोगोंको सताती हैं। उन्हींसे शारीरिक तथा धार्मिक चिन्ताओंकी उत्पत्ति होती है। अतः सर्वप्रथम उन्हींपर विचार करें।

सांसारिक चिन्ताएँ

इस वर्गमें अनेक छोटी-छोटी बातें सम्मिलित हैं। सर्वप्रथम आर्थिक चिन्ताएँ हैं। आजके जीवनमें दो तत्त्व मुख्यरूपसे महत्त्वपूर्ण बन गये हैं—रुपया तथा इन्द्रिय। अधिकांश व्यक्तियोंकी समस्या भोगसे सम्बन्धित है। भोगका तात्पर्य विस्तृत वासना-जन्य सुखोंसे है। इसमें कामवासना, स्पर्श, गन्ध, सुन्दर दृश्योंको देखनेकी लालसा [illegible] भाँति-भाँतिके सुस्वादु पदार्थोंका उपयोग सम्मिलित है।

मानव अन्ततः एक जानवर ही है। अतः साधारण स्तरपर रहनेवाले निम्न कोटिके व्यक्तियोंको इन्द्रिय-सुख चाहिये। हम इस स्त्रीसे विवाह करते तो कैसा अच्छा रहता? अमुककी पुत्री कितनी सुन्दर है? अमुक अभिनेत्री कैसा मुग्धकारी शृंगार करती है? अमुककी पत्नी सामाजिक आचार-व्यवहारमें कैसी निपुण है?—इस प्रकारकी अनेक छोटी-मोटी चिन्ता-लहरियाँ साधारण मानवीय स्तरपर रहनेवाले मनुष्योंके हृदय-सरोवरमें उठा करती हैं। वे प्रत्येक स्त्रीको ललचाई दृष्टिसे देखते हैं और हृदयमें एक प्रकारकी दलित वासनाके उभरनेका अनुभव करते हैं। इस प्रकारकी चिन्ताओंसे ग्रस्त व्यक्तियोंसे हमें दो बातें कहनी हैं—वासनाका सुख क्षणिक है। दूसरे आकर्षक और समीप आनेपर यह काला-कलूटा, परम निन्द्य, अनेक अनर्थ तथा गुप्त रोगोंकी सृष्टि

करनेवाला राक्षस है।

वासनाजन्य चिन्ताओंसे सावधान! क्या तुम तरह-तरहके गुप्त रोगोंसे बचना चाहते हो? क्या तुम समाजमें उच्च गौरवशाली प्रतिष्ठित पद, स्थिति प्राप्त करना चाहते हो? क्या तुम अपने लिये भावी पीढ़ीके मनपर एक उज्ज्वल भाव छोड़ना चाहते हो? यदि हाँ, तो वासनाकी चिन्ताओंको त्याग दो। प्रत्येक अभिनेत्री तुम्हारे सात्त्विक पवित्र आदर्शसे नीची है, प्रत्येक पड़ोसीकी पत्नी तुम्हारे लिये पूज्य है। तुमसे छोटी आयुकी बालिकाएँ तुम्हारे द्वारा पथ-प्रदर्शनके लिये उत्सुक हैं। [illegible] तुम उनका पथ-प्रदर्शन न करोगे?

वासनाजन्य चिन्ताएँ तुम्हारी निर्बलताकी द्योतक हैं। तुमको अपनी वासनाके ऊपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। सिनेमाके गंदे फिल्मोंको न देखो, दूसरोंकी स्त्रियोंकी ओर वासना-लोलुप दृष्टि कभी न डालो; गंदे चित्र, बुरे गाने, कुसंगति त्याग दो, तुम इन महा-अनर्थकारी चिन्ताओंसे मुक्त रहोगे।

यदि तुम वासनाकी तुच्छताको मनमें गहरा उतार सके तो अपनी बहुत-सी शक्तिका क्षय रोक सकोगे! रात्रिमें शय्या-ग्रहण करनेसे पूर्व मनको पवित्र संकल्पोंमें निरत रखना, कुसंगतिसे बचना, सद्ग्रन्थोंकी प्रेरणा ग्रहण करना वासना-मुक्तिका उपाय है।

आर्थिक चिन्ताएँ

आर्थिक चिन्ताएँ आजके मानवकी बड़ी कमजोरी हैं। हरेक व्यक्ति 'अधिक रुपया चाहिये' चिल्ला रहा है। जिस किसीसे पूछिये, वही अपनी गरीबीका प्रदर्शन करता है। यथेष्ट रुपया रखनेवाले धनी-मानी व्यक्ति भी आर्थिक चिन्ताओंमें डूबे हैं।

आर्थिक चिन्ताओंकी उत्पत्तिके प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—

(१) कृत्रिम आवश्यकताओंकी अभिवृद्धि।

(२) अपनेको दूसरोंके समक्ष बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शन करना।

(३) शौककी वस्तुओं—उत्तम वस्त्र, बढ़िया मकान, कीमती भोजन, मेवा-मिष्टान्न, सैर-सपाटेका उपयोग।

(४) नशेबाजी या वेश्यागमन, गुप्त रोग, मुकद्दमेबाजी।

(५) समाजमें दूसरोंको अधिक देना-लेना, विवाह-शादियोंमें अनाप-शनाप आडम्बर और व्यय।

(६) अधिक संतानकी उत्पत्ति तथा उनकी आवश्यकताएँ जुटानेमें कठिनाइयाँ।

(७) दूसरोंको प्रसन्न करनेकी चेष्टामें व्यय।

ऊपरके प्रत्येक कारणपर विचार कर देखिये कि आप आखिर क्यों चिन्तित हो रहे हैं? व्यर्थका शौक या दिखावा छोड़ दीजिये। अपना वास्तविक रूप जनताके समक्ष आने दीजिये। क्या रखा है थोड़ी देरके उस आनन्दमें जो सदाके लिये आपको ऋणके बोझमें बाँध दे। उस रतिसुखमें क्या आनन्द है, जो इतने बच्चे उत्पन्न कर दे कि आप उनकी शिक्षा, विवाह और नौकरी लगानेमें ही मर मिटें? व्यर्थकी आवश्यकताएँ वे जंजीरें हैं, जो आपको दूसरोंके सामने हाथ फैलानेको विवश करती हैं। एक बीड़ी या दियासलाईकी सींकके लिये आप दूसरोंके सम्मुख हाथ पसारते नहीं लजाते, कैसा दुर्भाग्य है कि चाट, पकौड़ी, सिनेमा, मिठाई या जुएके लिये आप दूसरेकी खुशामद करते हैं।

गरीबी बुरी नहीं है। यदि [illegible] गरीब हैं तो वैसे ही समाजके सम्मुख रहिये। आपके गुण, आपकी शिक्षा, उच्च संस्कार, व्यवहार, मुखकी प्रसन्नता, सज्जनताका व्यवहार आपको समाजमें उच्च पद प्रदान करेगा। सज्जन व्यक्ति गरीब होकर भी प्रतिष्ठाका अधिकारी होता है।

मितव्ययता एक कला है। इसमें पारंगत बनकर आप आर्थिक चिन्ताओंसे मुक्त रह सकते हैं। आयको देखिये, उसीके अनुसार व्ययको कम या अधिक करते चलिये। जिस दिन आप कुछ नहीं कमाते, उस दिन भूखा रह लेना कर्ज लेकर चिन्तित रहनेसे श्रेयस्कर है।

सामाजिक चिन्ताएँ

सामाजिक आचार-व्यवहारमें नाना प्रकारकी चिन्ताएँ आपको व्यग्र करती हैं। आप अपने अफसरको प्रसन्न करना चाहते हैं। डरते हैं कि कहीं वह क्रुद्ध न हो जाय। यदि आप दूकानदार हैं तो ग्राहकोंके रुष्ट हो जानेसे डरते हैं। यदि आप अध्यापक हैं तो विद्यार्थियोंसे, वकील हैं तो अपने मुवक्किलोंसे, उपदेशक हैं तो श्रोताओंसे डरते हैं। ये चिन्ताएँ तब दूर हो सकती हैं, जब आप मनोविज्ञानका अध्ययन कर मनुष्योंके गुप्त रहस्योंका ज्ञान प्राप्त करें। स्त्री, पुरुष, ग्राहक, श्रोता, बच्चों, बूढ़ों, अफसरोंके मनमें रहनेवाले 'अहम्'

को समझ लें। लोग तभी आपसे क्रुद्ध होते हैं, जब आप उनके 'अहम्' पर आघात करते हैं। 'अहम्' को उकसाने या उभारनेसे प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न हो सकता है। आपके सामाजिक व्यवहार सरस—स्निग्ध हो सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति एक बंद पुस्तकके समान है। उसमें नाना अनुभूतियाँ, स्वाभाविक कमजोरियाँ, दलित कामनाएँ भरी पड़ी हैं। वह कुछ चीजोंमें दिलचस्पी लेता है, कुछको नापसंद करता है। इन्हींका मनोवैज्ञानिक अध्ययन हमें इस प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्ति प्रदान कर सकता है।

मानसिक चिन्ताएँ

इनका जन्म अति भावुकता या अति विचारशीलतासे होता है। कुछ व्यक्ति इतने सुकुमार होते हैं कि तनिक-सी मानसिक चोटको भी सहन नहीं कर पाते; टीका-टिप्पणी, मजाक, आलोचना या अपने विषयमें अप्रिय बातें सुनकर आवेशमें भर जाते हैं। कुछ निराशाका ताना-बाना दिन-रात बुना करते हैं। कहीं असफलता हो गयी उसीको लिये चिन्तित रहा करते हैं। भविष्यमें क्या होगा? हमारी नौकरी रहेगी या छूट जायगी? बच्चोंकी शिक्षा कैसे चलेगी?—लड़कियोंका विवाह कैसे होगा? बाजारमें महँगाई है, उदर-पूर्ति कैसे चलेगी?—इन चिन्ताओंमें फँसे रहनेवाले व्यक्तिको जानना चाहिये कि परमेश्वरके हाथ इतने बड़े हैं कि वे उक्त सभी कार्योंकी पूर्तिके लिये उपयुक्त साधन निकाल लेंगे। हमें अशक्तता, निराशा, कमजोरीका अनुभव नहीं करना है, भविष्य उज्ज्वल है। हमारी शक्तियाँ भी तबतक इतनी बढ़ जायँगी कि हम सभी बढ़नेवाले उत्तरदायित्वोंको पूर्ण कर सकेंगे। यदि हमारे उत्तरदायित्व बढ़ते हैं तो हमारी शक्तियाँ, योजनाएँ, संचित धनराशि, समाजमें सम्मान, हमारे सम्बन्ध भी तो उत्तरोत्तर विकसित हो रहे हैं। हमारी मानसिक और बौद्धिक समस्याएँ भी तो निरन्तर वृद्धिपर हैं। हमारे मित्र, सगे-सम्बन्धी भी तो हमारी सहायताके लिये मौजूद हैं। अतः चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। फिक्र क्यों करें। आनेवाला समय हमारे लिये उज्ज्वल होगा। हमारे बाल-बच्चे बढ़कर उस स्थितिमें पहुँच जायँगे कि हमारा भार वहन कर सकें।

मनमें चिन्ता रखना फूसमें अग्निको छिपाये रखने-जैसा मूर्खतापूर्ण प्रयत्न है। चिन्ता आपके स्वास्थ्यको दग्ध कर देगी। आपका बहुत-सा हिस्सा जीनेसे नहीं, प्रत्युत चिन्ताकी महान् अनर्थकारी प्रलयकारी दुर्वह कराल अग्निसे

भस्मीभूत हो जायगा।

अपने विषयमें अधिक चिन्तन कर हम अपनी समस्याओंको हल नहीं कर पाते। उलटे कठिनाइयोंसे संघर्ष करनेवाली गुप्त इच्छाशक्तिका ह्रास करते हैं। आनेवाली कठिनाइयोंके विषयमें चिन्ता कर रही-सही शक्तियोंको भी क्षय करनेकी अपेक्षा यह युक्तिसंगत है कि उनपर स्थिरबुद्धिसे शान्तचित्त हो उनको दूर करनेकी तदबीरोंपर विचार किया जाय।

चिन्ता न कीजिये, ठंडे दिलसे प्रत्येक समस्यापर सोचिये, विचारिये। समस्याको हल करनेको कोई युक्ति निकालिये। श्रम कीजिये। चिन्तासे क्या पायेंगे? यदि आप स्वयं नहीं सोच सकते तो मित्रोंसे, पत्नीसे, अध्यापकसे या किसी विशेषज्ञसे सलाह लीजिये। दूसरोंको अपनी समस्याएँ सुलझानेका अवसर प्रदान कीजिये।

कोई ऐसी विषम स्थिति नहीं कि उसकी सुलझाहट न की जा सके। थोड़ी-सी विचारशीलतासे कुछ-न-कुछ ऐसा उपाय अवश्य निकल आयेगा जिससे परिस्थितिकी रक्षा हो सके।

शारीरिक चिन्ताएँ

शारीरिक चिन्ताओंमें क्रमशः होती हुई कमजोरी तथा आनेवाली वृद्धावस्था प्रमुख हैं। कुछ व्यक्ति अपनी शारीरिक निर्बलताको बढ़ा-चढ़ाकर देखनेके आदी होते हैं। यह एक प्रकारका संदिग्ध स्वभाव है।

साधारण व्यायाम, संयमित जीवन, जिह्वापर नियन्त्रण तथा आहार-विहारमें सावधान रहनेसे अनेक शारीरिक चिन्ताएँ दूर हो सकती हैं। शंकाकी आदत अनर्थकारी है। आपका जीवन सौ वर्षतक मजबूतीसे चलनेके लिये बनाया गया है। उसपर अत्याचार न करें तो वह मजेमें अपने-आप चलता जायगा। मिथ्या भय त्याग दीजिये। साधारण बीमारियोंसे युद्ध करनेकी प्रचुर सामर्थ्य आपमें विद्यमान है। व्यर्थके भयसे शरीर दुर्बल होता है।

चिन्ताकी सृष्टि करनेवाले आप स्वयं ही हैं। यह आपके विचारकी आदतमात्र है। बाह्य वातावरणसे चिन्ताका कोई सम्बन्ध नहीं है। चिन्ता करके वातावरणको बदला नहीं जा सकता।

यदि शरीरकी चिन्ता है, तो कुछ क्रियात्मक कार्य कीजिये। टहलिये, कसरत कीजिये, शुद्ध वायुमें रहा कीजिये या विश्राम लीजिये; पर व्यर्थ

फिक्रसे तो कुछ होना नहीं है। योजना बनाकर चिन्ताके कारणको दूर करना ही उससे मुक्तिका उपाय है।

धार्मिक चिन्ताएँ

ईश्वर क्या है? आत्मा तथा ईश्वरका क्या सम्बन्ध है? मृत्युके पश्चात् क्या होता है? ये प्रश्न बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे मनमें सत्प्रकाशका उदय होता है। लेकिन यदि आप इनके ठीक उत्तर नहीं जानते या कोई आपको संतुष्ट नहीं कर पाता तो कोई चिन्ता न करें। ज्यों-ज्यों आपका ज्ञान बढ़ेगा आप स्वयं इनकी उपयोगिता तथा अर्थ समझते चलेंगे। धर्म अनुभवकी वस्तु है। प्रतिदिन हम धार्मिक समस्याओंके विषयमें भी कुछ-न-कुछ ग्रहण करते हैं। अतः समयसे पूर्व इन चिन्ताओंसे भी परेशान नहीं होना चाहिये। यदि हम अनुभवसे लाभ उठावें तो प्रायः सभी प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त हो सकते हैं।

चिन्तापर विजय प्राप्त करनेका सुनहरा नियम

हार्वर्ड यूनिवर्सिटीके मनोविज्ञानके प्रोफेसर विलियम जेम्सने कहा है, 'चिन्तापर विजय प्राप्त करनेका सर्वोत्तम उपाय धार्मिक विश्वास है।'

वास्तवमें आनन्दकन्द परम प्रभु परमात्माकी भक्ति, उनका भजन-कीर्तन, प्रेमसे उनका गुणगान, सत्संग इत्यादि सत्कर्मोंमें लीन हो जाना सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्तिका सर्वोत्तम उपाय है। भक्ति ही आनन्दका वह मार्ग है, जो स्थायी एवं व्यापक सुख-शान्ति प्रदान करनेवाला उपाय है। भक्त संसारको ईश्वरमय देखता है। जो व्यक्ति संसारको मैत्रीभावसे देखता है; संसारको प्रेमरूप देखता है; उस मनुष्यपर ईश्वर भी प्रेमकी वर्षा करता है। प्रसन्नता, धैर्य, आशा, प्रशान्ति, श्रद्धा, प्रेम और आनन्द—इन लक्षणोंसे युक्त मनुष्यका नैसर्गिक स्वभाव होना चाहिये।

मनुष्यके सारे दुःखोंका कारण यह है कि वह ईश्वरीय आदेशोंके प्रतिकूल चलना पसंद करता है। जगत्की मिथ्या वस्तुओंके प्रति व्यर्थके माया-मोहमें लिप्त हो जानेके कारण ईश्वरीय प्रेम और आनन्दका यह मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। दैवी प्रसन्नता तथा आनन्दके इस स्रोतको खोलनेसे ही उसे शान्ति प्राप्त हो सकती है।

पापग्रसित मनुष्योंको यह संसार अन्धकारमय नैराश्यसे परिपूर्ण प्रतीत होता है। जहाँपर मनोविकार एवं स्वार्थपरता है, वहींपर मानसिक नरक है। जहाँ पवित्रता और प्रेम है, वहींपर मोक्ष है।

आप ईश्वरीय अंश हैं, सतत आनन्दमय हैं। श्रुति भगवतीकी आनन्दमयी वाणीमें—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति।

आनन्दसे ही सब प्राणी जन्मते हैं और उत्पन्न होकर आनन्दसे ही जी रहे हैं। हमारी आत्माका स्वरूप आनन्द ही है। फिर शोक, चिन्ता, निराशामें डूबनेकी क्या आवश्यकता है? यदि हम पारमार्थिक दृष्टि प्राप्त कर सकें तो अपने गन्तव्य धाम—आनन्दको प्राप्त कर सकेंगे। भक्ति ही आनन्दप्राप्तिका राजमार्ग है।

ईसा महान् कहा करते थे कि धर्मके केवल दो ही स्वरूप हैं— १—ईश्वरको पूरे हृदयसे प्रेम करना तथा २—अपने पड़ोसीके प्रति आत्मभाव रखना। ये दोनों ही तत्त्व बड़े महत्त्वके हैं।

चिन्ताके समय आप प्रार्थना करें। परमपिता परमेश्वरकी गोदमें, शान्ति और प्रेमके समुद्रमें अपने-आपको अनुभव करें। जिसपर परमेश्वरकी कृपा है, जिसे परमेश्वरके प्रति श्रद्धा है, उसे चिन्ता दुःखी नहीं कर सकती।

अकेला चल

महात्मा कन्फ्यूशियसने कहा है, 'महान् व्यक्ति जो चीज ढूँढ़ते हैं, वह अपने अंदर ही उन्हें प्राप्त हो जाती है, जब कि कमजोर दूसरोंका मुँह ताका करते हैं।' जीवनका आदेश है, 'मनुष्यकी दो शिक्षाएँ होती हैं। प्रथम वह जो वह अपने गुरुजनों या संसारसे प्राप्त करता है, दूसरी वह जो स्वयं अकेला चलकर अपने अनुभवोंसे संचित करता है।'

चाहे व्यापार हो या खेल, कानून, प्रेम या महत्ताके लिये उद्योग, आपको यह बात गाँठ बाँध लेनी चाहिये कि वह स्वयं अपने बल, बुद्धि एवं उद्योगद्वारा ही अर्जित की जा सकती है। संसारकी सर्वोत्तम शिक्षा वह है, जो मनुष्य स्वयं सतत संसार एवं समाजमें संघर्षद्वारा प्राप्त करता है। आत्मनिर्भर ही सर्वत्र पूजा जाता है। एक विद्वान्‌ने लिखा है, 'नौजवानो! याद रखो, जिस दिन तुम्हें अपने हाथ, पैर और दिलपर भरोसा हो जायगा, उसी दिन तुम्हारी अन्तरात्मा कहेगी—बाधाओंको कुचलकर तू अकेला चल, अकेला। सफलताका शीतल आँचल तेरे माथेका पसीना पोंछनेके लिये दूर हवामें फहरा रहा है।'

जिन व्यक्तियोंपर तुमने आशाके विशाल महल बना रखे हैं, वे कल्पनाके व्योममें विहार करनेके समान अस्थिर, सारहीन, खोखले हैं। अपनी आशाको दूसरोंमें संश्लिष्ट कर देना स्वयं अपनी मौलिकताका ह्रासकर अपने साहसको पंगु कर देना है। जो व्यक्ति दूसरोंकी सहायतापर जीवन-यात्रा करता है, वह शीघ्र अकेला रह जाता है। अकेला रह जानेपर उसे अपनी मूर्खताका ज्ञान होता है।

आपकी शक्ति और सुख आपमें ही है

जो अपना सुख और प्रसन्नता दूसरोंसे चाहता है, उनके सुखमें सुखी, उनकी नाराजगीमें अस्तव्यस्त हो जाता है, वह जीवनभर दूसरोंकी गुलामीमें फँसा रहता है। दूसरोंके आदेशमें हर्ष, प्रसन्नता, घृणा, क्रोध, उद्वेगका अनुभव करनेवाला व्यक्ति उस बच्चेकी तरह है जो दूसरेकी गोदीसे उतरना नहीं चाहता।

मनुष्यके सुख, साहस, उत्साह, प्रफुल्लताका केन्द्र किसी बाह्य सत्तामें

नहीं है। बाह्य वस्तुओंकी ओर निरन्तर दौड़ना और उनसे किसी प्रकारकी सहायता या प्रेरणाकी आशा रखना मृगमरीचिकामात्र है। सोचिये, आज जिस व्यक्तिकी प्रसन्नतासे आप भावी जीवनके सुख-स्वप्न निर्मित कर रहे हैं, यदि कल वह आपसे मुख मोड़ ले, अनायास ही क्रुद्ध हो जाय या चल बसे, तो आपका सुख कहाँ जायगा? दूसरेको अपने जीवनका संचालक बना देना ऐसा ही है, जैसा अपनी नौकाको एक ऐसे प्रवाहमें डाल देना, जिसके अन्तका आपको कोई ज्ञान नहीं।

अकेले चलना पड़ेगा

संसारमें दो व्यक्ति एक-सी रुचि, एक स्वभाव, एक दृष्टिकोण या विचारधाराके कभी भी नहीं रहे हैं। जितने मस्तिष्क, उतने ही उनके सोचने-विचारनेके ढंग, रहनेकी नाना पद्धतियाँ, पोशाक पहननेके तरीके होते हैं। भोजन सबका भिन्न-भिन्न है। एक सरल सीधी खाद्य वस्तुओंमें, सूखी रोटीमें मधुर स्वाद लेता है तो दूसरेको मिर्च-मसालेसे परिपूर्ण नाना शृंगारिक उत्तेजक भोजन प्रिय हैं। एक ठंडा जल पीकर आन्तरिक शान्तिका अनुभव करता है तो दूसरा बर्फसे युक्त सोडा, लेमन, शरबत, ठंडाई या मद्यपान चाहता है। एक छः घंटे सोकर नया जीवन लेता है, दूसरा दस घंटे पलंग तोड़ता है। संक्षेपमें, संसार विभिन्न तत्त्वों, मन्तव्यों तथा जीवनदर्शनवाले व्यक्तिसमूहोंसे विनिर्मित किया गया है। फिर किस प्रकार आप अपनी योग्यता, अभिरुचि अथवा साम्य विचारधाराका व्यक्ति पानेकी आशा कर रहे हैं? नहीं, कदापि नहीं। आपको अपने-जैसा व्यक्ति कदापि प्राप्त न होगा! आपको जीवन-पथपर अकेले ही अग्रसर होना पड़ेगा। कोई आपके साथ दूरतक न चल सकेगा। अकेले चले चलिये।

जीवनको एक यात्रा मानिये। यात्रामें एक-दो अल्पकालीन संगी-साथी आपको प्राप्त हो गये हैं। इनसे चार दिनके लिये आप बोलते-बरतते हैं; हँसी-ठट्ठा, संघर्ष, छीना-झपटी चलती है। साथ-साथ कुछ समयतक आगे बढ़ते हैं, किंतु धीरे-धीरे उनकी जीवन-यात्रा समाप्त होती चलती है। एकके पश्चात् दूसरा आपको छोड़ता चलता है। आपके साथ अभी छः-सात व्यक्तियोंका परिवार था। सातमेंसे छः रह जाते हैं और फिर क्रमशः आप अकेले ही रह जाते हैं। 'अरे, मैं अकेला रह गया, बिलकुल अकेला'—

आपका मन कुछ कालके लिये अशान्त-सा हो उठता है। उसमें एक कड़ुवाहट-सी आ जाती है। पर वास्तवमें जीवनका यह अकेलापन ही मानव-जीवनका चरम सत्य है।

सबको पाकर भी हम सब अकेले हैं, नितान्त अकेले! हमारे साथ कोई भी दूरतक चलनेवाला नहीं है। जिन्हें हम भ्रम-मायावश अपने साथ चलता हुआ समझते हैं, वास्तवमें वे हमारे अल्पकालीन सहयात्रीमात्र हैं। हमारे इस अकेलेपनमें कोई भी हाथ बँटाने, दिलासा देनेवाला नहीं है। हम अकेले आये, अकेले जीवनपर्यन्त चलते रहे, अकेले ही निरन्तर बढ़ते रहेंगे। हमें अपने दोनों पाँवोंपर ही चलना है; हमें अपने दोनों हाथोंका ही सहारा हो सकता है।

नित नये-नये रूप बनाकर मनुष्य इस अकेलेपनको विस्मृत करनेका उद्योग करता है। भीड़-भाड़से भरे हुए विशाल नगरोंमें निवास करता है; सिनेमा, थियेटर, दौड़, खेल इत्यादि देखता है; अपने परिवार, इष्ट-मित्रोंकी संख्यामें विस्तार करता है; किंतु वह मूर्ख नहीं जानता, इस माया-चक्रसे वह स्वयं ही उलझनमें फँस रहा है। सूखी रेतसे स्निग्धताकी आशा रखता है; बालूमेंसे तेल निकालना चाहता है; हवामें किले बनाना चाहता है। दूसरोंके बलपर चलने, उनसे आशा, उत्साह, प्रेरणा या सहायता चाहनेका यह मायाजाल मृगमरीचिका नहीं तो क्या है?

अकेलेपनसे भयभीत न हों!

ईश्वरीय ज्योतिके पुंज मानव! तू अकेला चल! बियावान जंगल अथवा भीड़-भाड़से युक्त नगर, प्रान्त सर्वत्र अकेला चल। अकेलेपनसे तुझे भयभीत नहीं होना है। महान् व्यक्ति सदैव अकेले चले हैं; और इस अकेलेपनके कारण ही दूरतक चले हैं। अकेले व्यक्तियोंने अपने सहारेसे ही संसारके महत्तम कार्य सम्पन्न किये हैं। उन्हें एकमात्र अपनी ही प्रेरणा प्राप्त हुई है। वे अपने ही आन्तरिक सुखसे सदैव प्रफुल्लित रहे हैं। दूसरेसे दुःख मिटानेकी उन्होंने कभी आशा न रखी। निज वृत्तियोंमें ही उन्होंने सहारा देखा। अपने ही पाँवोंके बलपर उन्होंने समग्र यात्रा पूर्ण की। अकेलेपनसे घबराना नहीं है, प्रत्युत अपने पाँवोंको भार वहन करने, संघर्ष करनेके लिये पुष्ट करना है। मानव! अकेला चल, अकेला अपनी यात्राको सफल बना।

अकेलापन जीवनका चरम सत्य है, किंतु अकेलेपनसे घबराना, जी

तोड़ना, कर्तव्य-पथमें हतोत्साह या निराश होना सबसे बड़ा पाप है! अकेलेपनसे मत घबराइये। अकेलापन आपकी निजी आन्तरिक प्रदेशमें छिपी हुई महान् शक्तियोंको विकसित करनेका साधन है। अपने ऊपर आश्रित रहनेसे आप अपनी उच्चतम शक्तियोंको खोज निकालते हैं। जितना ही आप अपनी शक्तियोंसे कार्य लेते हैं, उतना ही उनकी अभिवृद्धि या विकास होता है। अपने हाथ, पाँव, मस्तिष्क, शरीर इत्यादिसे कार्य लेना, अपने पाँवोंपर चलना अपनी गुप्त शक्तियोंको खोज निकालना है। अतः अकेलेपनमें निराशाके लिये, कायरताके लिये, संसारसे भागकर एक कोनेमें छिप जानेके लिये कोई स्थान नहीं है। अकेले हैं, तो डरें नहीं। हतोत्साह न हों। वरं अपनी ही शक्तियोंका इस मर्यादात्मक विकास करें कि दूसरोंके आश्रयकी आवश्यकता न पड़े।

दूसरोंका आश्रय त्यागकर स्वयं अपनी गुप्त शक्तियाँ जाग्रत् करनेके लिये संकेत या सजेशनका प्रयोग किया कीजिये। प्रतिदिन सायंकाल अथवा प्रातःकाल शान्तचित्त हो एकान्तस्थानमें नेत्र मूँदकर दृढ़तासे निम्न वाक्योंका पुनः-पुनः उच्चारण कीजिये—

आत्मशक्ति जाग्रत् करनेके लिये संकेत

'मैं अकेला होते हुए भी शक्तिशाली हूँ। मेरे अंदर वह शक्ति है जो स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर सकती है। मैं दूसरोंका अनुगामी न बनूँगा। मैं कभी दूसरोंका अनुकरण न करूँगा। मैं अपनी महत्ता और प्रतिभाका प्रभाव दूसरोंपर डाल सकता हूँ। मुझमें विशेषता है, निजी मौलिकता है। सच्ची शक्ति मेरे भीतर विद्यमान है। मुझे अपनी शक्तियोंपर पूरा भरोसा है। मैंने अकेले ही सफलता प्राप्त करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की है। मेरी प्रतिज्ञा दृढ़ है और अटल है। उसे भगवान् अवश्य पूरी करेंगे।'

प्रलोभनके आगे न झुकिये

प्रलोभन एक ऐसा आकर्षक मोहचक्र है, जिसका कोई स्वरूप, आकार, स्थिति, अवस्था नियत नहीं है, किंतु फिर भी वह नाना रूपोंमें मानवमात्रको ठगने, पदच्युत कर पथभ्रष्ट कर देनेके लिये आता है। जीवनमें आनेवाले बहुत-से मायावी प्रलोभन इतने मनोमोहक, लुभावने और मादक होते हैं कि क्षणभरके लिये विवेकशून्य हो अदूरदर्शी ■■ हम विक्षिप्त-से हो उठते हैं। हमारी चिन्तनशील सत्प्रवृत्तियाँ पंगु हो उठती हैं तथा हम विषय-वासना, आर्थिक लोभ, स्वार्थ, संकुचिततावश प्रलोभनके शिकार बन जाते हैं। अन्ततः उनसे उत्पन्न होनेवाली हानियों, कष्टों, त्रुटियों, अपमान तथा अप्रतिष्ठासे दग्ध होते रहते हैं। प्रलोभन जीवनकी मृगतृष्णा है, तो बुद्धिका भ्रम-मोहका मधुर रूप।

लालचके रूप अनेक हैं। कभी आप सोचते हैं, 'मैं धनवान् बनूँ, ऊँचा रहूँ, मेरे ऊपर लक्ष्मीकी कृपा रहे।' इस उद्देश्य-सिद्धिके हेतु आप रिश्वत, कालाबाजार, झूठ, फरेब, कपट, हिंसा करके रुपये हड़पते हैं। ठेकेदार, ओवरसियर, इंजीनियरतक रिश्वतमें हिस्सा लेते हैं। रेलवे, पुलिस, चुंगी इत्यादि विभागोंमें भ्रष्टाचार इसी स्वार्थ और संकुचितताके कारण फैले हुए हैं। डॉक्टर और वकील रोगी और मवक्किलोंसे अधिकाधिक ऐंठना चाहते हैं। बाजारमें खराब माल देकर अथवा निम्नकोटिकी वस्तुओंका सम्मिश्रण कर व्यापारी खूब लाभ कमाना चाहते हैं। सिक्केने जैसे मानवीयताका शोषण कर लिया हो। प्रलोभनके अनेक रूप हैं—

अमुक व्यक्तिकी पत्नी मेरी पत्नीकी अपेक्षा सुन्दर है। मुझे भी सुन्दर पत्नी प्राप्त होनी चाहिये। मैं तो अमुक अभिनेत्री-जैसी स्त्रीसे विवाह करूँगा।

अमुक व्यक्तिका मकान सुन्दर है। अमुकके पास आलीशान कोठी, मोटर, नौकर-चाकर, सुन्दर वस्त्र, फर्नीचर इत्यादि हैं। मैं भी किसी प्रकार उचित-अनुचित कैसे ही उपायोंसे ये वस्तुएँ-सुविधाएँ प्राप्त करूँ। अमुक मुझसे ऊँचे पदपर आसीन हो गया, मैं भी छल-बल-कौशलसे या रुपया दे-दिलाकर यही पद प्राप्त करूँ।

अमुक व्यक्ति बड़ा सुस्वादु भोजन खाता है; मिठाई, पूड़ी, पकवान, मेवे, दूध, रबड़ी आदि बढ़िया-से-बढ़िया वस्तुएँ नित्य चखता है। मैं भी किसी

अच्छे-बुरे उपायसे ये चीजें प्राप्त करूँ। ऐसा सोचते-सोचते जैसे ही कोई तनिक-सा प्रलोभन आपको देता है कि आप बिना सोचे-समझे उसके समक्ष घुटने टेक देते हैं। रुपया, कमीशन, डाली, फल, मुफ्त सेवा, नाना उपहार ले लेना—सब प्रलोभनके ही स्वरूप हैं। इनका कोई आदि-अन्त नहीं। समुद्रकी तरंगोंकी भाँति आते ही रहते हैं ये।

नैतिक दृष्टिसे कमजोर चरित्रवाले व्यक्ति आसानीसे प्रलोभनके शिकार बनते हैं। जिनकी आवश्यकताएँ, विलासी इच्छाएँ, चटोरपन, अनुचित माँगें, नशे बढ़े हुए हैं, वे प्रायः प्रलोभनोंके सामने झुकते हुए देखे गये हैं। जिन्हें दान-दहेज, यात्राएँ, भौतिकता, टीपटापका शौक है, वे लालचमें फँसते हैं। कभी-कभी सहज सात्त्विक बुद्धिवाले भी दूषित वातावरणके प्रभावसे प्रलोभनोंके चक्करमें आ जाते हैं।

विषयोंमें रमणीयताका भास बुद्धिके विपर्ययसे होता है। बुद्धिके विपर्ययमें अज्ञान-सम्भूत अविद्या प्रधान कारण है। इस अविद्या, क्षणिक भावावेश, अदूरदर्शिताके ही कारण हमें प्रलोभनमें रमणीयताका मिथ्या बोध होता है। प्रलोभनसे तृप्ति एक प्रकारकी मृगतृष्णामात्र है।

प्रलोभनमें मुख्यतः दो तत्त्व कार्य करते हैं—उत्सुकता एवं दूरी। ईसाइयोंके मतानुसार आदिपुरुष एडम (आदम)-का स्वर्गसे पतन ज्ञानवृक्षके फलको चखनेकी उत्सुकताके ही कारण हुआ था। उन्हें आदेश मिला था कि वे अन्य सब वृक्षोंके फलोंको चख सकते हैं, केवल उसी वृक्षसे बचते रहें। जिस बातके लिये हमें रोका जाता है, अप्रत्यक्ष रूपसे उसके प्रति हम अधिकाधिक आकृष्ट होते हैं। अतः एडमको वर्जित फलके प्रति उत्सुकता उत्पन्न हो गयी। औत्सुक्यसे प्रभावित होनेके कारण उस फलमें रमणीयताका भास हुआ। उन्होंने चुपचाप प्रलोभनके प्रति आत्मसमर्पण कर दिया। पर ईश्वरने उन्हें इसकी बड़ी कड़ी सजा दी।

जो पदार्थ, इन्द्रियोंको तृप्त करनेके नाना साधन हमसे दूर रहते हैं, जिन्हें हम दैनिक जीवनमें नहीं पाते, जिनका स्वाद हमने नहीं उठाया है, वे ही दूरी (Distance)-के कारण हमें आकर्षक प्रतीत होते हैं। वास्तवमें रमणीयता किसी बाह्य जगत्‌की वस्तुमें नहीं है। वह तो हमारी कल्पना तथा उत्सुकताकी भावनाओंकी प्रतिच्छाया (Reflection)-मात्र है। वस्तुको आकर्षक बनानेवाला हमारा मन है जो क्षण-क्षण नाना वस्तुओंपर मचल-मचलकर जाता

है। नयी वस्तुकी ओर हमें बरबस खींचकर ले जाता है। कभी वह जिह्वाको उत्तेजितकर हमें सुस्वादु वस्तुओंकी ओर आकृष्ट करता है, कहीं कानोंको मधुर संगीत सुननेके लिये खींचता है। कहीं हमारी वासनाको उद्दीप्तकर मादक वृत्तियोंको उत्तेजित कर देता है। मनकी कोई भी गुप्त अतृप्त इच्छा प्रलोभनका रूप धारण कर लेती है। विवेकका नियन्त्रण ढीला पड़ते ही मन हमें स्थान-स्थानपर बहकाता फिरता है। अथवा विवेकपर आवरण (पर्दा, तमोवृत्ति, इन्द्रियदोष, बीमारी, प्रमाद) पड़ा रहनेसे बुद्धि तिरोहित हो जाती है। फलतः हम पतनकी ओर जाते हैं। हमारा वातावरण गंदा हो जाता है, हम दूसरोंको धोखा देते हैं, झूठ बोलते, ठगते हैं। विवेकपर पर्दा पड़ा रहनेसे ही दुष्ट पुरुष विद्याको विवादमें, धनको अहंकार और विलासमें, बलको परपीडामें लगाते हैं, निर्बलोंको सताते हैं। अतः मनपर सतर्कतासे अन्तर्दृष्टि रखनी चाहिये।

जैसे युद्ध करते समय जागरूक संतरीको यह ध्यान रखना पड़ता है कि न जाने शत्रुका कब आक्रमण हो जाय, कब किस रूपमें शत्रु प्रकट हो जाय, उसी प्रकार मनरूपी चंचल शत्रुपर तीव्र दृष्टि और विवेकको जागरूक रखनेकी अतीव आवश्यकता है। जहाँ मन आपको किसी इन्द्रिय-सम्बन्धी प्रलोभनकी ओर खींचे, वहीं उसके विपरीत कार्य कर उसकी दुष्टताको रोक देना चाहिये।

न जीता हुआ स्वेच्छाचारी मन बड़ा बलवान् शत्रु है। वासना और कुविचारका जादू इसपर बड़ी शीघ्रतासे होता है। बड़े-बड़े संयमी व्यक्ति वासनाके चक्रमें आकर मनको न रोक सकनेके कारण पथभ्रष्ट हो जाते हैं। मनसे युद्ध करना अत्यन्त दुष्कर कृत्य है। इससे युद्ध-कालमें एक विचित्रता है। यदि युद्ध करनेवाला दृढ़तासे युद्धमें संलग्न रहे, निज इच्छाशक्तिको मनके व्यापारोंमें लगाये रहे तो युद्धमें संलग्न सैनिककी शक्ति अधिकाधिक बढ़ती है और एक दिन वह इसपर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता है। यदि तनिक भी इसकी चंचलतामें बहक गये तो यह मनुष्यके चरित्र, आदर्श संयम, नैतिक दृढ़ता और धर्म-भावनाको तोड़-फोड़कर सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है।

मनको दृढ़ निश्चयपर स्थिर रखने और उसीपर एकाग्र ध्यान रखनेसे मुमुक्षुकी इच्छाशक्ति प्रबल बनती है। मनका स्वभाव मनुष्यकी इच्छाशक्तिके अनुकूल बन जानेका है। उसे जिन विषयोंकी ओर दृढ़तासे एकाग्र कीजिये, वही कार्य करने लगेगा। वह व्यर्थ निश्चेष्ट-निष्क्रिय नहीं बैठना चाहता।

अच्छाई या बुराई—वह किसी-न-किसी ओर अवश्य आकृष्ट होगा। यदि आप शुभ रचनात्मक समुन्नत कार्योंमें उसे न लगायेंगे तो वह बुराईकी ओर चलेगा। यदि आप उसे पुष्प-पुष्प विचरण करनेवाली मधु-लोभी तितली बना देंगे—जो रूप, रस और गन्धपर मँडराये—तो वह अवश्य आपको किसी भयंकर स्थितिमें डाल देगा। यदि आप उसे उद्दण्ड रखेंगे तो वह दिन-रात मनमाने बुरे स्थानोंपर भटकता रहेगा। यदि आप शुभ इष्ट-पदार्थोंके सुविचारोंमें उसे स्थिर रखेंगे तो वह आपका सबसे बड़ा मित्र बन जायगा।

जब-जब अपने अन्तःकरणमें विषय-वासनाका प्रबल संघर्ष उत्पन्न हो, तब-तब नीर-क्षीर-विवेकी निश्चयात्मिका बुद्धिको जाग्रत् कीजिये। मनसे थोड़ी देर पृथक् रहकर इसके कार्य-व्यापारोंपर तीव्र दृष्टि रखिये। बस, कुविचार, कुत्सित चिन्तन, वासनाका ताण्डव, कुकल्पनाका चक्र टूट जायगा और आप मनके साथ चलायमान न होंगे। मनके व्यापारके साथ निज आत्माकी समस्वरता न होने दें। इसी अभ्यासद्वारा वह आज्ञा देनेवाला न रहकर सीधा-सादा आज्ञाकारी अनुचर बन जायगा—

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल मन चौर।
मनके मत चलिये नहीं, पलक-पलक मन और॥

प्रमादमें फँसी इन्द्रियोंके सुखमें स्थिरता नहीं है। इन्द्रियसुख दुःखरूप है। यह अस्थिर और क्षणिक है। यह आनन्दका आवरणमात्र है। इन्द्रिय-सुखके लिये मनुष्यको अनेक कुचक्रों—कुटिल रीतियोंका अवलम्ब लेना पड़ता है। एक सुखकी लालसामें मनुष्य अधिकाधिक उलझता ही जाता है। एक इन्द्रियको तृप्त करते-करते मनुष्य दूसरी-तीसरी—यों अधिकाधिक सांसारिकतामें लिप्त होता ही जाता है। अन्तमें पापयोनिको प्राप्त होता है। जबतक मन और इन्द्रियोंपर पूरा नियन्त्रण नहीं होता, तबतक सुखकी आशा रखना व्यर्थ है। मनपर निरन्तर कड़ी दृष्टि रखिये—स्वयं भगवान् श्रीकृष्णजीने गीतामें हमें मनपर तीखी निगाह रखनेकी ओर निर्देश किया है—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥ (६। ३६)

'मनको संयमित न करनेवाले पुरुषके द्वारा योग दुष्प्राप्य है। स्वाधीन मनवाले प्रयत्नशील पुरुषके द्वारा ही योग प्राप्त होता है—इष्टसिद्धि प्राप्त होती है।'

अभ्यास और वैराग्यसे मनको वशमें करनेमें बहुत सहायता मिलती है। गीतामें मनको ईश्वरमें एकाग्र करनेके लिये अभ्यास करनेका अमूल्य उपदेश दिया गया है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ (६।२६)

'यह अस्थिर और चंचल मन जिस-जिस कारणसे संसारमें जाय, उस-उससे हटाकर इसे बार-बार आत्मामें लगावे।'

सुखरूप भासनेवाली विषय-वासनाके प्रलोभनमें कदापि न फँसिये। कुपथगामी मनके विपरीत चलिये। परमात्माका जो रूप आपको विशेष आकर्षक प्रतीत होता हो, उसीमें मन-बुद्धिको एकाग्र करनेका सतत अभ्यास करते रहिये। वैराग्य और शुभचिन्तनके अभ्याससे प्रलोभनसे मुक्ति मिल सकती है।

भारतीय संस्कृतिमें प्रलोभनसे बचे रहनेके लिये दान और त्यागका विधान है। भारतीय, यदि वह सच्चे अर्थोंमें भारतीय संस्कृतिका पुजारी है तो वस्तुओं, धन, ज्ञान, श्रमशक्ति इत्यादिको एकत्र न कर सबके भलेके लिये अधिक-से-अधिक व्यक्तियोंमें उसे वितरित करनेका प्रयत्न करता है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र अपनी रश्मियोंको संसारके कोने-कोनेमें फैलाकर प्रकाश करते हैं, सच्चा भारतीय वैसे ही अधिक-से-अधिक दान देता है—शक्तिका, सेवाका, अपने श्रम-सामर्थ्य और सम्पत्तिका त्याग करनेसे उसका आत्मसंयम बढ़ता है। शरीर और मनपर काबू होता है, वासनाएँ शान्त रहती हैं, आत्मा भौतिक पदार्थोंके चिन्तनसे मुक्त होकर अन्तर्मुखी बनती है। क्षुद्र बाह्य पदार्थों तथा रूपोंसे आसक्ति हटते ही उसे आत्मानुभव होने लगता है। वह जान लेता है कि मैं हाड़, मांस, वासना, तृष्णा, मोह नहीं हूँ, मैं तो सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, विशुद्ध आत्मा हूँ।

विस्मृतिका महामन्त्र

बीते हुए कटु, दुःखप्रद, अप्रिय अनुभवोंको विस्मृतकर, उज्ज्वल प्रकाशपूर्ण भविष्यपर समस्त वृत्तियाँ केन्द्रित कर दिन प्रारम्भ करना शान्त और सुखी रहनेका सर्वश्रेष्ठ साधन है। जीवनकी कड़वाहट दूर करनेके लिये अनिष्ट कल्पनाओं, दुष्ट वासनाओं, प्रतिकूलताओं, दुश्चिन्ताओं, विषम परिस्थितियों, अभद्र प्रसंगोंको भूलना सीखो। यदि अपने शरीरका स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति और जीवनकी मधुरता अभीष्ट है तो विस्मृतिके इस महामन्त्रकी सिद्धि करो।

जो व्यक्ति हर समय बीते हुए दुःख-क्लेश-विपत्ति, विघ्नबाधामय विचारोंका शिकार रहता है, अपने जीवनके अन्धकारमय अंशपर केन्द्रित रहता है, सदैव बुराई—असफलताके ही कुवचन मुखसे उच्चारण करता है, जीवनके अप्रीतिकर भागको ही देखता रहता है, रोज-रोज अपने जीवनकी छोटी-मोटी भूलोंको लेकर झींकता रहता है, निरन्तर पश्चात्तापकी और वैर-विरोधकी ज्वालासे जला करता है या क्षुद्र चिन्ताओंमें आत्मग्लानिका अनुभव कर अपने हृदय-मन्दिरमें निज चरित्रकी कमजोरियोंको पोसता रहता है—उसका हृदय सदैव क्षुब्ध रहता है और अन्तःकरणमें एक भयानक तूफ़ान मचा रहता है। वह आध्यात्मिक उच्च शिखरपर आरूढ़ नहीं हो पाता।

जो पहले भूल करके पुनः सँभल जाता है, पीछे भूल नहीं करता, वह मेघसे मुक्त शुभ्र चन्द्रमाकी भाँति इस लोकको प्रकाशित करता है। ऐसा पुरुष अपने पिछले परितापमय अनुभवोंको विस्मृत करनेको सदैव प्रस्तुत रहता है; क्योंकि वह जानता है कि ये ही अन्तःकरणमें सत्य ज्ञानको प्रकाशित होनेसे रोकते हैं और उन्नतिके पथपर अग्रसर नहीं होने देते। वह उधरसे चित्त हटा लेता है, मन मोड़कर झींकनेके स्थानपर भविष्यपर आशा बाँधता है। इसी कारण उसका प्रत्येक कार्य एक अभिनव ज्योतिसे आलोकित रहता है।

जो हुआ सो हुआ; किंतु भविष्यमें ऐसा कदापि न होगा, हम प्रलोभनोंके पंजेमें दुबारा न आयेंगे, हम दुष्ट मनोविकारोंमें चित्त विक्षिप्त न होने देंगे, जन्म-जन्मान्तरोंके कुसंस्कारोंको अपने चित्तसे बाहर निकाल देंगे और जीवनके विषाक्त और परम दुःखमय क्षणोंकी पीड़ासे कातर होनेके स्थानपर मनको पूर्ण निर्मल रखेंगे, उसमें परम पवित्रताका संचार करेंगे और तमाम

कुत्सित विषैली दुश्चिन्ताओंको अन्तःकरणसे देशनिकाला दे देंगे, ऐसी शुद्ध भावनावाले व्यक्तिके निमित्त दुःखका भार उतार डालना साधारण-सी बात है।

तुम अपना कार्य उचित रीतिसे तभी सम्पन्न कर सकोगे, जब अपनी पिछली भूलों, कमियों, न्यूनताओं, गलतफहमियों, असावधानियों, कमजोरियोंको मनसे सदैवके लिये निकालकर पूर्ण विश्वास धारणकर अग्रसर होगे। यदि तुम्हारे अंदर अपनी कमियोंके विचार बहते रहेंगे तो वे आत्मविश्वासको कभी दृढ़ न होने देंगे। तुम्हारे संकल्प सदैव ढीले-ढाले बने रहेंगे, तुम इच्छाशक्तिकी अभिवृद्धि न कर सकोगे। तुम अयोग्यताकी निकृष्ट भावनामें रमण करोगे तो निरन्तर अयोग्य ही बनते जाओगे। यदि तुम्हारे अंदर यह भाव घर कर गया कि हमसे तो गलतियाँ ही हुआ करती हैं तो पूर्ण सावधानी रखते-रखते भी तुम कुछ-न-कुछ गलती कर ही दिया करोगे। शंकित और दुविधामय मानसिक स्थितिमें रहनेसे हम देखते-देखते गलती कर बैठा करते हैं। मानसिक पृष्ठभूमिमेंसे ऐसी भ्रमात्मक कल्पनाएँ, असत्-चिन्तन, दुविधामय विचारधारा नष्ट कर दी जाय तो मनुष्य श्रेष्ठ कार्योंके सम्पादनके निमित्त अधिक स्वच्छन्दता तथा शक्ति प्राप्त कर लेता है और उसका जीवन सुधर जाता है।

इस विकारस्वरूप प्रकृतिमें सभी जीव त्रुटियोंसे परिपूर्ण हैं। किसीमें कम तो किसीमें अपेक्षाकृत अधिक, दोष सभीमें हैं। तुमसे यदि कोई अप्रिय बात हो गयी और तुम्हें उसके लिये हार्दिक पश्चात्ताप हो गया तो ठीक है। यही यथेष्ट है, किंतु इसीपर झींक-झींककर अपना जीवन क्लेशयुक्त, भारस्वरूप न बनाओ। इसी विषयको लेकर रोते न रहो। बार-बार इन्हींपर विचारकर, तिलका ताड़ बना पश्चात्तापकी ज्वालामें जलते न रहो। इस प्रकार तुम अपना सुनहरा भविष्य भी शूलमय बना लोगे। इस परिवर्तनशील जगत्में अप्रिय प्रसंगोंको विस्मृत कर देनेपर ही हम आध्यात्मिक विकास कर सकते हैं। जो व्यक्ति यही चिन्तन करता है कि मैं मूर्ख हूँ, मूढ और मन्दमति हूँ, अधम और पापी हूँ, निकृष्ट और कुटिल हूँ, मुझसे कुछ होना-जाना नहीं, वह क्रमशः तद्रूप हो जाया करता है। जीवनकी सफलता भावनाओंपर निर्भर है। जितना ही तुम अपनी योग्यतापर अविश्वास करोगे, जितना भय और शंकाको हृदयमें स्थान दोगे, उतने ही उन्नतिसे दूर पड़े रहोगे। तुम्हारी शंकाएँ और भय ही तुम्हारे जीवनको नष्ट करते हैं। अनेक व्यक्तियोंकी असफलताका कारण केवल यह है कि वे निराशाजनित भावोंको ही प्रोत्साहन देते रहते हैं।

अपनी इन कुत्सित कल्पनाओं और अनिष्ट-चिन्तनके द्वारा वे विफलता, अकल्याण और पतन तथा निराशाप्रद वातावरणकी सृष्टि अपने चारों ओर कर लेते हैं। वे मूर्ख नहीं जानते कि इनको विस्मृत कर देनेमें ही कल्याण है; क्योंकि ये ही हमारी आत्मश्रद्धामें बाधक होते हैं।

संसारने हमारे अरमान कुचल डाले हैं, निकट सम्बन्धियोंतकने हमारे हृदयके टुकड़े-टुकड़े किये हैं, लोगोंने जानते-बूझते हमारा अपमान किया है, हमारे वैरी प्रतिशोध लेनेकी ताकमें हैं, हमें रह-रहकर अपने ऊपर क्रोध आता है, दिलमें दर्द है, चित्तमें खिन्नता है, पर क्या हम नित्य इन्हीं निकृष्ट विनाशकारी, आत्माको पंगु करनेवाले विचारोंमें उलझे रहें? क्या हमारा यह बहुमूल्य मानव-जीवन इन्हीं अकल्याणकारी बातोंमें तिल-तिलकर कुढ़ते-कुढ़ते, झींकते-झींकते समाप्त हो जायगा? हमें चाहिये कि हम इन्हें भूल जायँ; हृदयसे तुरंत निकाल फेंकें।

यदि हमारे विचार कल्याणकारी महानुभावोंके शुभ चरित्रोंपर केन्द्रित रहेंगे, हम उनके चरित्रके उत्तम अंशों, सद्गुणों, शुद्ध तत्त्वोंपर विचार किया करेंगे तो हमारा भी कल्याण होता जायगा, हम उठते जायँगे, निरन्तर आगे बढ़ते जायँगे। इसके विपरीत यदि हम अपने विरोधियों, वैरियों और कुप्रवृत्तिवाले दुर्जनोंके विषयमें सोचा करेंगे तो निश्चय ही पतनकी ओर ढुलकते जायँगे। सर्वोत्तम यही है कि हम अपने शत्रुओंके विचार बलात् मानसिक परिधिमें लाकर उसे कलुषित न होने दें, उन्हें विस्मृत कर दें और कभी उनके विषयमें सोचें ही नहीं। दुःख, क्लेश, तिरस्कार, निन्दासे मुक्त होनेके लिये विस्मृति अमोघ ओषधि है, अतः पीड़ा, अधमता और दुष्टताको भूल जायँ, सदैवके लिये उधरसे नेत्र मूँद लें, चित्त हटा लें, मनको मोड़कर उत्तम अभिलाषाओंपर केन्द्रीभूत कर दें। जिन विचारोंसे हमारा जीवन सुखमय बनता है हम उन्हींको हृदयमें प्रवेश होने दें, उन्हींका दृढ़ चिन्तन करें, उन्हींपर चित्तको एकाग्र करें।

बाह्य जगत्में नित्य संघर्ष चला करता है; किंतु प्रत्येक वस्तुके अन्तरिक्षमें अक्षय शान्ति निवास करती है। जिन व्यक्तियोंको तुम बुरा कहते हो, सम्भव है उनका हृदय परम पवित्र हो। तुम्हारी धारणा ही गलत हो। अतः तुम दूसरेके दोषोंको विस्मृत करना सीखो। उनके चरित्रके उन्हीं गुणोंको स्मरण रखो जो सुन्दर हों और कल्याणकारी हों। परच्छिद्रान्वेषणके समस्त विचारोंको

भूलकर आत्माको उत्तम तत्त्वोंपर दृढ़ करो। विषयोंसे, इन्द्रियोंके भोगोंसे, बुद्धिके ऊहापोहसे, सांसारिक ताने-बानेसे उन्मुक्त पक्षीकी भाँति स्वच्छन्द होकर हृदयके अन्तरालमें प्रवेश करो। वहाँ स्वार्थयुक्त समस्त दूषित वातावरणसे मुक्त रह सकोगे। इस आनन्दधाममें तुम्हारी झंझटें, प्रतिकूलताकी भावनाएँ, अप्रिय प्रसंगोंके कटु अनुभव, निरर्थक क्षोभ और व्यर्थकी हाय-हाय नष्ट हो जायगी।

जिस व्यक्तिने विस्मृतिके माहात्म्यको हृदयंगम कर लिया है, वही सुखी है। उसके लिये दुःखोंका बोझ उतार डालना अत्यन्त साधारण-सी बात है। कुछ दिन पूर्व इसी तत्त्वको स्पष्ट करते हुए एक महोदयने यूनिटी (Unity) नामक मासिक पत्रिकामें लिखा था—

'और मैं अपने अनुभवसे कह रहा हूँ—सच मानो। इस ओषधि (अर्थात् विस्मृति)-द्वारा दुःखोंका भार उतार डालना अत्यन्त सरल है। प्रारम्भिक अभ्यासके उपरान्त आप बड़ी-से-बड़ी चिन्ताको चुटकियोंपर उड़ा डाला करेंगे। क्रमशः इस कलामें आप इतने दक्ष हो जायँगे कि जीवनकी किरकिरी और दुःखपूर्ण परिस्थिति सामने आते ही अदृश्य हो जाया करेगी। तब यह संसार आपको पूर्ण आनन्दमय प्रतीत होगा; क्योंकि इसमें चिन्ता, कष्ट, पीड़ा, अभाव इत्यादि कोई भी कुत्सित वस्तु शेष न रह जायगी।

यदि आप शूरवीर और बहादुर होना चाहते हैं तो आप हीनत्वकी भावनाको पूर्णरूपसे विस्मृत कर दीजिये। विजयके ही विचारोंको अपने मनमें आने दीजिये और निश्चय कर लीजिये कि हम किसीसे नहीं डरेंगे, कोई हमें डरपोक नहीं बना सकता, मनुष्य कायर जन्तु नहीं होता, हमारी रचनामें भय रखा ही नहीं गया। हम तो साहसिक कार्योंके सम्पादनके लिये बनाये गये हैं, उन्हें अवश्यमेव प्राप्त करेंगे।

यदि आप सफलता प्राप्त करना चाहते हों तो नाकामयाबी, क्षुद्रता, अयोग्यताकी समस्त बातें मनसे निकाल डालिये। यदि कोई आपसे मन्दबुद्धि कहता है तो उसकी बातसे साफ इन्कार कर दीजिये। दूसरेकी ऐसी किसी भी प्रेरणा (Suggestion)-का अपने ऊपर प्रभाव न होने दीजिये। हार, हीनत्व, दारिद्र्यके दुष्ट विचारोंको सदैवके लिये तिलांजलि दे डालिये। जबतक विफलताके विचार आपके हृदयमें अतिक्रमण करते रहेंगे, तबतक कदापि सफलता प्राप्त न होगी। आप अयोग्यता, अविश्वास, आशंकाके क्षुद्र

विचारोंको विस्मृतिके गर्तमें फेंक दीजिये। हृदयमें इस बातको ही ऊपर रखिये कि हम मन्दबुद्धि नहीं, कायर नहीं, पथभ्रष्ट नहीं हैं। हममें वह साहस है जिससे हम महान् कार्य सम्पादन करेंगे।

शक्तिकी इच्छा है तो कमजोरीके विचारोंको विस्मृत कर डालिये। स्वास्थ्य चाहते हैं तो बीमारी, आधि-व्याधिके विचारोंको भूल जाइये। स्वास्थ्यप्रदायक विचारधाराको मनमें आने दीजिये। स्वास्थ्यका भाव स्थायी रखिये, वार्तालाप उसी विषयपर कीजिये। प्रेमकी कामना है तो ईर्ष्या, क्रोध, निन्दा, कटुताके विपरीत भावोंको विस्मृत कर दीजिये। शान्ति चाहते हैं तो मिथ्यावाद, बकवास, परच्छिद्रान्वेषण, भ्रम, संशयको भुला दीजिये। आप केवल वांछनीय तत्त्वोंका ही चिन्तन कीजिये। जैसी अभिलाषा हो, वैसे ही विचारोंको हृदयके कोने-कोनेमें भर दीजिये। ऐसा न हो कि प्रतिकूलताकी भावनाएँ आपके अन्तःकरणमें घर करके आपका सर्वनाश कर डालें।

प्रिय पाठक! आप नीच, दुःखी, दीन-हीन समझकर, अपने-आपको अकर्मण्य, रोगग्रस्त मानकर किस प्रकार उत्तम तत्त्वोंकी प्राप्ति कर सकते हैं? दुःख, दरिद्रता और असफलता उस व्यक्तिसे सदैव दूर रहती है, जो इनका स्वागत नहीं करता, इनकी ओरसे सदैवके लिये मुख मोड़ लेता है और विस्मृत कर बैठता है। दुनिया उसीकी है जिसने अपने प्रकाशमय अंशको देख लिया है, जो दैवी तत्त्वोंमें तन्मय रहता है और जिसने निकृष्ट विचारसे मुक्ति पा ली है।

यदि आप अनन्त सुख और अक्षय शान्तिकी कामना करते हैं और अपने पापों, दुःखों, चिन्ताओंसे छुट्टी पा लेना चाहते हैं तो विस्मृतिके रहस्यको चित्तमें अंकित कीजिये। यदि स्वस्थ शरीर, दीर्घायु और मानसिक शान्ति अभीष्ट है तो पतनकी ओर ले जानेवाली कुप्रवृत्तियों, मानसिक जगत्में तूफान लाकर अस्त-व्यस्त बनानेवाली दुर्भावनाओंको विस्मृत करना सीखिये। दुःखको, पीड़ाकी, रोगकी कष्टप्रद बातोंको भूलना सीखिये। ऐसा व्यवहार कीजिये जिससे स्वयमेव आपकी मानसिक प्रेरणा विजय, वृद्धि, उन्नति और उच्चताकी ओर स्फुरित हुआ करे।

न जाने कल क्या होगा?

भविष्यमें क्या होगा, हमारे ग्रह शुभ हैं या अशुभ, हमारे भाग्यकी लकीरोंकी प्रगति किस ओर है, हमारे ऊपर कोई आपत्ति तो नहीं आ रही है, हमारे शकुन, फल, कर्म अच्छे हैं या बुरे, न जाने कल क्या होगा—ये ऐसे भयंकर प्रश्न हैं जो कितने ही व्यक्तियोंकी आध्यात्मिक शान्ति भंग किया करते हैं। भविष्यत् जाननेके लिये कितने ही थोथी विचारधाराके युवक फकीरों-मुल्लाओं और पहुँचे हुए साधुओंके पास भटकते हैं। जिससे जरा उन्हें भविष्यत्के विषयमें पता चलनेकी आशा हुई, उसके पीछे-पीछे लगे रहते हैं, हजार खुशामद करते हैं और पसीनेकी गहरी कमाई सहर्ष सौंप दिया करते हैं। किसीने उनके मनकी बात कह दी, वे फूल उठे। किसीने कुछ भयानक बात बतला दी, बस, मुरझाकर निरुत्साह हो गये, अपने भाग्यको दोष देने लगे। कमनसीबी, नाकामयाबी, असफलताकी घातक कल्पनाओंद्वारा अपनी शक्तिको पंगु करने लगे। सिर्फ अनिष्टकी कल्पनामात्रसे वे झींकने लगते हैं, परेशान हो जाते हैं और यह मान बैठते हैं कि हम तुच्छ हैं, क्षुद्र हैं, हीन हैं। हमारे भाग्यमें तंगी, कमजोरी, अयोग्यता, अकर्मण्यता ही है। हमारे पल्ले रूखी-सूखी रोटी ही बदी है। हमें तो सदैव कड़ी धूपमें ही काम करना है, हमें गरीबीमें ही सड़ना है।

मनुष्य अपने भविष्यकी अच्छी बात सुनकर इतना प्रसन्न नहीं होता, जितना कुत्सित बात सुनकर डर जाता है। हमलोगोंकी प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि अशुभ, निकृष्ट, आधि-व्याधिके विचारोंपर शीघ्र विश्वास कर लेते हैं। हमारे ऊपर इन अन्धकारमयी भावनाओंका प्रभाव बड़ी शीघ्रतासे होता है और कभी-कभी तो ये विचार इतने स्थायी (Fixed Ideas) हो जाते हैं कि हम उन्हें आयुभर भूल नहीं पाते। एक व्यक्तिके दिलमें यह विचार जम गया कि मेरी मृत्यु पागल कुत्तेके काटनेसे होगी। वह मामूली कुत्तेको देखकर ही भागता, छिप जाता और जबतक वह अदृश्य न हो जाता, बाहर न निकलता। एक बार एक साधारण कुत्तेने उसे जरा-सा पंजे लगा दिये। कुछ खरोच-से आ गये। वह बीमार पड़ा और लगभग एक मास बीमार रहकर मृत्युको प्राप्त हुआ। कितने ही व्यक्तियोंकी यह धारणा बन जाती है कि आगामी जीवन बड़ा कठिन, बड़ा संघर्षपूर्ण, बड़ा कठोर आ रहा है।

बस, वे बेसिर-पैरकी निराश कल्पनाओंद्वारा अपने जीवनको संकटमय बना लिया करते हैं। घबराकर व्यर्थकी चिन्ताओंसे ग्रस्त रहते हैं और पनपने नहीं पाते।

प्रिय पाठक! भविष्यका ज्ञान पहले तो असम्भव है और यदि हो भी जाय तो क्या लाभ? यदि भवितव्य ही होता है, नियतिका लेखा बँधा है, उसका एक भी अक्षर इधर-से-उधर नहीं हो सकता तो उसे जान लेनेसे क्या लाभ? हम उसे नहीं बदल सकते, वह अपरिवर्तनीय है, शाश्वत है तो उसके विषयमें जान लेनेसे क्या प्रयोजन? हाँ, हानिकी अधिक सम्भावना है! यदि हमें यह मालूम हो जाय कि कल इतने रुपये प्राप्त हो जायँगे तो सम्भव है हम आज गाँठकी पूँजी समाप्त कर डालें। इसी प्रकार यदि यह ज्ञात हो जाय कि हमें कल इस संसारसे चल देना है तो डर, चिन्ता, उद्वेग, क्लेशसे कलके बजाय आज ही मृत्यु हो जाय। प्रायः देखा गया है कि फाँसीका दण्ड पानेवाले कैदी केवल मृत्युके विषम विचारद्वारा पहलेसे ही अधमरे हो जाया करते हैं।

भविष्यमें क्या होनेवाला है इस तत्त्वकी अनभिज्ञता जीवको इसलिये प्रदान की गयी है कि जिससे भविष्यमें आनेवाले अनिष्टकी आशंकासे उस शूलमयी घटनाके पूर्ववर्ती दिनोंके सुखको हम न खो बैठें।

एलेक्जेंडर पोप नामक कविने बलि-पशुका उदाहरण लेकर इसी भावको बड़े मर्मस्पर्शी रूपमें व्यक्त किया है—

'उस बलिपशु को देख आज जिसका तू हे नर!
निज उमंग में रक्त बहाएगा बेदी पर।
होता उसको ज्ञान कहीं तेरा है जैसा,
क्रीड़ा करता कभी उछलता फिरता ऐसा?
अंतिम क्षण तक खाता पीता काल काटता।
हनने को जो हाथ उठा है उसे चाटता?

मृत्यु प्रतिपल उसके सिरपर नाचती रहती है, यमदूत उसे हड़प जानेको तत्पर रहते हैं, वधिक पत्थरपर उसे काटनेको छुरा पैना करता है पर बलि-पशु अन्ततक आनन्दमय रहता है। अन्तमें पोपके इसी सिद्धान्तपर पहुँचता है—

The blindness to the future kindly given.

अर्थात् भविष्यका अज्ञान परमेश्वरका परम अनुग्रह है। यदि उस पशुको

यह विदित हो जाय कि जरा देरमें उसे मृत्युके घाट उतार दिया जायगा तो कदाचित् वधसे पूर्व ही उसका अस्तित्व विलीन हो जाय और मृत्युके पूर्ववर्त्ती दिनोंके सुखको भी खो बैठे।

सचमुच अनिष्टकी कल्पना विषमय है। मृत्युकी आशंकासे प्राणिमात्रका विचलित हो जाना स्वाभाविक बात है। और हम सबको क्रमशः विलीन भी हो जाना है, फिर उसकी चिन्ता क्यों? मौत आयेगी, यह निश्चय है; पर जिस चीजसे बच नहीं सकते उससे डरना ही क्यों? जितने दिन हमें रहनेको मिले हैं उनका तो पूर्ण आनन्द उठा लें, जब बुरे दिन आयेंगे देखा जायगा। आजका सुन्दर दिन हमें परमेश्वरने प्रदान किया है। उसे तो आनन्दपूर्वक बिता लें। कल क्या होगा कौन जाने? किसे यह पता है कि कल आयेगा भी या नहीं, हम आजके लिये कह सकते हैं कि हमारा अस्तित्व है, हमारा गृह, बाल-बच्चे, बन्धु-बान्धव इत्यादि हैं पर कल क्या होगा यह सब कुछ छिपा है और जिसको कोई नहीं जानता उसकी फिक्र भी क्यों?

जीवनकी मोटी पुस्तकका एक पृष्ठ आपके सम्मुख खुला है। उसे देखकर आप आजकी बात जान सकते हैं पर अन्य पृष्ठोंमें कौन-सी बात छिपी है यह बात तुरंत नहीं बतायी जा सकती। परमेश्वर अत्यन्त सावधानीसे एक-एक शब्द, एक-एक पंक्ति और एक-एक पृष्ठ हमारे सामने आने देता है। यदि इस पूरी पुस्तककी विचारधारा, जीवनका पूरा लेखा, हमें पहले ही ज्ञात हो जाय तो शायद अनिष्टकी बाट देखते-देखते ही हम मृत्युके ग्रास बन जायँ।

विशाल समुद्र है। हम अपनी छोटी-सी नाव लिये उसे पार करने निकले हैं। डूबते बहुत हैं, घबराते अधिक हैं, पर दृढ़ विचार, संकल्प और आशावादी उसी नन्ही-सी नावसे उसे पार भी कर जाते हैं। यदि हम कठिनाई आनेसे पहले ही हाय-हाय मचाने लगें; अस्थिर, चंचल, भीरु हो जायँ तो हमारी जीवन-नैया क्षणभरमें डूब जाय।

जीवन तो प्रगतिशील है, चलता जाता है, मरनेवाले मरते हैं, डूबनेवाले डूबते हैं। जो गिरता है गिरे, पर तुम लोगोंको गिरता देखकर क्यों विचलित होते हो, चले चलो, सफरमें आगे क्या होगा—देखा जायगा।

प्रिय पाठक! यदि तुम सर्वांगपूर्ण जीवनका आनन्द लेना चाहते हो तो कलकी चिन्ता छोड़ो। तुम अपने चारों ओर जीवनके बीज बोओ। भविष्यमें

सुनहरे सपने देखनेकी आदत बनाओ। सदैवके लिये मनमें यह बात बैठा लो कि तुम्हारा कल अत्यन्त प्रकाशमय, मधुर और आनन्ददायक होगा। कल तुम अपनेको आजसे भी अधिक सौभाग्यशाली पाओगे। 'मुझे अपने कार्योंमें कल और अधिक सफलता प्राप्त होगी। कल वह समय आयेगा, जब मेरा मन उत्पादक शक्तिसे भर जायगा और मेरा जीवन ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हो जायगा, जब मैं और आगे बढ़ जाऊँगा, ऊँचा उठ जाऊँगा, उत्तरोत्तर उन्नतिशील होऊँगा, अधिकाधिक उज्ज्वल हो जाऊँगा। रोज मेरे अंदर कुछ-न-कुछ इच्छाशक्तिका प्रादुर्भाव हो रहा है। कलपर मुझे पूर्ण विश्वास है। वह मुझमें और दिव्यताका संचार करनेवाली है। मुझमें इतनी शक्ति है कि विघ्नबाधाएँ डरकर दूर भाग जायँगी। कल मैं आजसे भी अधिक प्रसन्न रहूँगा'—ऐसी विचार-धारासे निश्चय ही परम कल्याण होगा। जब तुम अंदर साँस खींचो तो यही विचार करो, अपने मस्तिष्कके प्रत्येक कणके साथ 'आनन्दमय जीवन' का चिन्तन करो। जबतक तुम इसे पूर्णरूपसे ग्रहण न कर लो, तबतक निरन्तर जाप करते रहो। इसे रसकी तरह पेट भरकर पान कर जाओ। जब तुममें दृढ़ताका संचार हो, तब क्रमशः अपने-आपको इनकी अवस्थाके साँचेमें ढलता हुआ पाओगे। तुम्हारे संशय उड़ जायँगे और कलकी चिन्ता न सतायेगी।

सच्चे अर्थोंमें 'मनुष्य' बनिये

तुम मानवताके प्रतीक हो। आदिकर्ता परमप्रभु परमेश्वरके वीर मेधावी पुत्र हो। तुम उन दिव्य गुणों, आत्मिक और मानसिक सम्पदाओंके पुंज हो, जो तुम्हारे परम पितामें सन्निहित हैं।

प्रत्येक मनुष्य उस दिव्य विभूतिका अधिकारी है, जिसकी धारणा हम जगन्नियन्ता, सच्चिदानन्द-आनन्दघन, अमृतमय भगवान्‌में करते हैं।

मानवता क्या है?

हमें पशुत्वसे ऊँचा उठानेवाला जो गुण है, उसे 'मानवता' कहते हैं। 'मानवता' मनुष्योंका धर्म है। इसे धारण करके ही हम 'मनुष्य' नामको सार्थक करते हैं। इसकी अनुपस्थितिमें हम मनुष्य-जैसे पवित्र सम्बोधनके अधिकारी नहीं हैं।

मानवता [illegible] है? सद्‌गुणों, मनुजोचित सद्भावनाओंसे युक्त भद्रजनों-जैसा सदाचरण एवं शुभ कार्योंको करनेमें हमारा जो पुरुषत्व है, उन्हीं सामूहिक सद्‌गुणोंका नाम 'मानवता' है। मानवता शुभ संकल्पोंको धारण करनेवाली है। मानवता उन सद्व्यवहारोंका नाम है जो हमें असुरत्वसे ऊँचा उठाते हैं और हमारी प्रवृत्ति सदाचार, संयम, परमार्थसिद्धि, सद्‌बुद्धि और विवेककी ओर रखते हैं।

मानवताकी पूर्णता देवत्वकी प्राप्तिका प्रथम सोपान है। जिस मनुष्यके **'शिवम्'** तत्त्वका जितना अधिक विकास होता है, वह मानवताके उतना ही निकट है। मनुष्यमें ईश्वरका जो दिव्य अंश है उसे धारण किये रहनेकी सतत प्रयत्नशीलता मानवता है। दिव्य भावनाओंमें जितनी तल्लीनता और निष्ठा है वह उतना ही मानवताके समीप है। अपने कार्योंद्वारा अन्तःस्थित परमेश्वरको प्रकट करना, निज वातावरणकी भूमिको दैवी प्रकाश, प्रेम, सहानुभूति, दया, आनन्द, तृप्तिसे भर देना, गिरे हुए प्राणियोंको ऊँचा उठाना, परस्पर सेवा, सद्भाव, सहानुभूति रखना मानवताका विकास करना है।

एक विद्वान्‌का कथन है, दिव्य शक्तियोंका सम्पूर्ण विकास मानवताकी पूर्णता है। विश्वमें एक ही पवित्रतम मन्दिर है, जिसमें अत्यन्त शक्तिशाली पूर्णताकी प्रतिमा स्थित है। वह मन्दिर मानवका शरीर है। इस मानवीय

शरीरका सर्वोत्तम उपयोग, अपने अन्तःस्थित देवको सुरक्षित रखना है। मानवोचित कर्मोंसे ही वह अन्तःस्थित देव प्रसन्न होता है। परस्पर प्रेमपूर्वक सम्मिलन, दर्शन और स्पर्शसे स्वर्ग-सुखका अनुभव मानवताके अभ्युदयपर निर्भर है। मानवताकी शीतल, सुखकर और समुन्नत वृष्टिसे विश्वके समस्त संताप शान्त हो जाते हैं।

हिंदुओंके दो महापुरुषों—भगवान् राम तथा योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें हमें मानवताकी पूर्णताके आदर्श उदाहरण मिलते हैं। उनकी सर्वगुण-सम्पन्नता, सर्वज्ञता, कर्म-कुशलता, कर्तव्यशीलता ही उनके मानव-जीवनकी पूर्णताके परिचायक हैं। श्रीरामचन्द्रने जन्मसे लेकर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, राज्यत्व, प्रसन्नता, पुत्रधर्म, संकट, युद्ध-सहायता इत्यादिकी नाना मर्यादाओंके आदर्श हमारे सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। जगत्के जंजालों और त्रितापोंसे घिरे रहकर धर्मकी धुरन्धरता, ज्ञानकी गरिमा, नीति-निपुणता, बुद्धि-विशालता, मन तथा संयमकी महत्ता, चित्तकी संशुद्धि और मननशीलता, अहंकार-शून्यता, विचारोंकी दक्षता, बल-सौन्दर्य, सरसताकी प्रचुरता, ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्षकी सम्पूर्णता प्राप्त कर लेनेका आदर्श भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रमें दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य-जीवनका ऐसा कोई अंग नहीं जिसकी पूर्णता तथा सर्वांगीण विकास इन दोनों महामानवोंमें न हो। **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** का एकीकरण करके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक पूर्णता यहाँ हमें सहज ही उपलब्ध हो जाती है। श्रीकृष्णके चरित्रसे स्पष्ट है कि मानव संयम और सादे जीवनके द्वारा (१) कर्म, (२) भक्ति, (३) ज्ञान तथा (४) योगका समन्वय करता हुआ दिव्य शक्तियोंसे सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सकता है।

श्रीराम तथा श्रीकृष्णने मानवताका पथ प्रशस्त किया, मानवताका उच्चतम आदर्श हमारे सम्मुख रखा और विशुद्ध मानवताकी रक्षाके लिये सतत संग्राम किया। इन दोनों महामानवोंकी मानवता-कर्तव्यशीलता, लोकोपकार, सात्त्विकता, कर्मशीलता और धर्म-संस्थापनामें है। इन्होंने स्वार्थके लिये कर्म नहीं किया, प्राणिमात्रके तथा देश-जातिके सुखके लिये व्यक्तिगत सुखका बलिदान किया; मानवीय धर्मकी रक्षाके लिये निरन्तर संघर्ष किया; समग्र जीवन दूसरोंकी सेवा, परोपकार, कर्तव्य-पालन और सत्यकी स्थापनामें लगाया।

इन दोनों महामानवोंमें शरीरकी हृष्टपुष्टता, विद्याध्ययनके प्रति प्रेम, गुरुजनोंके प्रति असीम आदर-भाव, माता-पिता आदि ज्येष्ठोंके प्रति पूजनीय

भाव, कुल तथा देशकी मानरक्षाके लिये बलिदान; कर्तव्य-पालनमें निर्भीकता, जागरूकता, विनम्रता, दैनिक जीवनमें आत्मसम्मान, सात्त्विकता, शिष्टता, अथक परिश्रम, कार्य-कुशलता और धर्म-प्रेम मिलते हैं। साहित्य, कला और संगीत उनके व्यक्तित्वके अंग थे। श्रीकृष्णने उपनिषदोंका दोहन कर महान् दार्शनिक साहित्यका निर्माण किया, जो गीताके नामसे विख्यात है। धार्मिक जीवनमें, ये महामानव, जीवन्मुक्त थे। इनमें भोगके साथ योग तथा त्यागका समन्वय था। इनके किसी भी कर्ममें आसक्ति, ममता और अहंता नहीं थी। ऐश्वर्य, धर्म, बल, यश, श्री और वैराग्य आदि मानवताके सभी तत्त्वोंकी पूर्णता ही नहीं, अनन्तता इन महामानवोंमें उपलब्ध हो जाती है। इनमें मानवता और ईश्वरत्वका जो समन्वय मिलता है, वह हमारे लिये आदर्शरूपमें पथ-प्रदर्शक है। हम चाहें तो उनमेंसे अनेक तत्त्वोंका जीवनमें विकास कर सकते हैं। इनका मानवरूपमें प्रकट होना मानवमात्रके लिये ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज आदिके अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करना था। मानव-जीवनकी पूर्णताके लिये श्रीकृष्णका संदेश देखिये—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ (गीता ३।३०)

'हे अर्जुन! ध्याननिष्ठ चित्तसे सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें समर्पण करके आशारहित, ममतारहित और संतापरहित होकर जीवन-युद्ध कर।'

मानवताके सद्‌गुण

मानवताके लक्षणोंका वर्णन भगवान् श्रीकृष्णने गीताके १६वें अध्यायमें दैवी सम्पदाके अन्तर्गत किया है। सच्चे आदर्शरूप मानवमें निम्न गुण होने आवश्यक हैं। इनके सर्वोच्च विकाससे ही हम सच्चे अर्थोंमें मनुष्य कहलानेके अधिकारी हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ (गीता १६। १—३)

श्रीकृष्णभगवान्‌के उपर्युक्त मन्तव्योंके अनुसार जिन व्यक्तियोंको दैवी सम्पदाएँ प्राप्त हैं, उनके लक्षण इस प्रकार हैं—

१ **अभयम्**—मनमें भयका सर्वथा अभाव।

२ **सत्त्वसंशुद्धिः**—अन्तःकरणकी अच्छी प्रकारसे स्वच्छता।

३ **ज्ञानयोगव्यवस्थितिः**—तत्त्व-ज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति।

४ **दानम्**—बिना फलकी इच्छा किये देशकालपात्रानुसार सात्त्विक दान।

५ **दमः**—इन्द्रियोंका दमन।

६ **यज्ञः**—भगवत्पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण।

७ **स्वाध्यायः**—वेद-शास्त्रोंके पठन-पाठनपूर्वक भगवत्‌के नाम और गुणका कीर्तन।

८ **तपः**—स्वधर्म-पालनके लिये कष्ट एवं प्रतिकूलताएँ सहन करना।

९ **आर्जवम्**—शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता।

१० **अहिंसा**—मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना।

११ **सत्यम्**—यथार्थ और प्रिय भाषण।

१२ **अक्रोधः**—अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधित न होना।

१३ **त्यागः**—कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग।

१४ **शान्तिः**—चित्तकी चंचलताका अभाव।

१५ **अपैशुनम्**—किसीकी निन्दा न करना।

१६ **भूतेषु दया**—सब भूत-प्राणियोंमें हेतुरहित दया।

१७ **अलोलुप्त्वम्**—इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना।

१८ **मार्दवम्**—मन, वाणी, कर्म और स्वभावकी कोमलता।

१९ **ह्रीः**—लोक और शास्त्रके विरुद्ध आचरणमें लज्जा।

२० **अचापलम्**—व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव।

२१ **तेजः**—वह शक्ति, जिसके प्रभावसे श्रेष्ठ पुरुषोंके सामने विषयासक्त और नीच प्रवृत्तिवाले मनुष्य भी प्रायः अन्यायाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं।

२२ **क्षमा**—अपने अपकार करनेवालेके दोषको क्षमा करके उसका भला करना।

२३ **धैर्यः**—किसी भी विपत्तिमें धैर्य रखना।

२४ **शौचम्**—बाहर-भीतरकी पवित्रता।

२५ **अद्रोहः**—किसी भी प्राणीमें शत्रुभाव न होना।

२६ **नातिमानिता**—अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव।

दीर्घकालीन अभ्याससे इनका निश्चय ही आपमें विकास होगा और आप सच्चे मानव बन सकेंगे।

मानव-धर्मके दस लक्षण

गीता, स्मृति, पुराण और रामायण इत्यादि धर्म-ग्रन्थोंमें मानव-धर्मकी विशद व्याख्या की गयी है। स्मृतियोंमें मनुस्मृति सबसे अधिक प्रमाणित मानी जाती है। मनुजीने मनुष्यके लिये दस लक्षण आवश्यक बताये हैं। जो व्यक्ति इन दस लक्षणोंसे युक्त हैं, वे ही सच्चे मानव-धर्मका पालन कर रहे हैं। मनुजी कहते हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ (६।९२)

अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य तथा अक्रोध—ये मनुष्यके दस मुख्य लक्षण हैं। जिसमें ये मानव-धर्मके दसों लक्षण मौजूद हों, वह सच्चा मानव कहलानेका अधिकारी है। इन गुणोंका सम्बन्ध किसी देश, जाति या समुदायविशेषसे नहीं है, प्रत्युत सभी देश, सभी जाति और सभी समुदायोंके धर्मनिष्ठ मानवोंमें ये गुण समानरूपसे पाये जाते हैं और सभी इनका सम्पादन कर सकते हैं।

प्रथम लक्षण—धृति

मानवताके अधिकारीमें धैर्यधारण, संतोष अथवा उच्चकोटिकी सहनशीलता होनी चाहिये; वह आपत्तियोंसे कर्तव्यच्युत न हो। धृतिमान् पुरुष विपत्तियों, प्रतिकूलताओंके विरोधमें अपना धैर्य नहीं छोड़ते। वे दूसरोंका भी कल्याण करते हैं। धैर्य ही मानव-धर्मकी नींव है।

दूसरा लक्षण—क्षमा

अपने शरीरमें पूर्ण शक्ति होनेपर भी अपना अपकार करनेवालेको उन्नति

या सत्पथपर अन्तःप्रेरणासे आनेका अवसर देना; उसकी उन्नतिके लिये अपकारको भी प्रसन्नतासे ग्रहण करना क्षमा कहलाता है। हिंसासे हिंसा, घृणासे घृणा, क्रोधसे क्रोध, प्रतिशोधसे प्रतिशोधकी निरन्तर उत्पत्ति तथा वृद्धि होती रहती है और दोनोंका अहित होता है। अतः दूसरोंके बुरे संस्कारोंको हटानेके लिये क्षमा धारण करनी चाहिये।

तीसरा लक्षण—दम

दमका अर्थ यहाँ मनका निग्रह है; क्योंकि इन्द्रियनिग्रह अलग बताया है। संयम या मनको नियन्त्रित तथा नित्य शुभ विचारों तथा भगवच्चिन्तनमें लगाये रखना। निगृहीत मनमें गंदे, अशुभ विचार कभी नहीं आते। मन बड़ा चंचल है। वैराग्य, व्रत, संयम, उपवास और एकनिष्ठ होकर निरन्तर भगवन्नाम-जपद्वारा मनको अपने काबूमें रखनेवाला ही मानवताका अधिकारी है।

चौथा लक्षण—अस्तेय

अस्तेय अर्थात् चोरी न करना, तरह-तरहकी धोखेबाजियों, रिश्वत, कालाबाजार, दूसरोंका शोषण करनेके लिये विभिन्न चालाकियाँ चलना, लूट-मार करना, धर्मकी आड़ लेकर, कानूनसे बचकर छोटी-बड़ी चोरियाँ करना मानवताका ह्रास करना है। 'चोरी' शब्द बड़ा व्यापक है। रिश्वत लेना-देना, बाजारमें चीजोंको चोरीका आश्रय लेकर खरीदना-बेचना, अच्छी चीज दिखाकर खराब देना, सब चोरीमें सम्मिलित हैं। मनुष्य जितना पाता है, उससे अधिक पानेका लोभ, भोगविलास, फैशन, मौज, शौक, मनमाने व्यय निषिद्ध होने चाहिये।

पाँचवाँ लक्षण—शौच

सच्चे मनुष्यको पवित्र हृदयसे साफ होना चाहिये। 'शौच' का अर्थ है सफाई। बाहर शरीरसे वह स्वच्छ रहे और अंदर मनमें पवित्र रहे। बाहरी सफाईमें शरीरकी निर्मलता होनी चाहिये। तड़क-भड़क, दिखावा, शौकीनी कृत्रिमतासे मुक्ति होनी चाहिये। आन्तरिक सफाईमें हमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अभिमान, राग-द्वेष, वैर, छल, कपट एवं दम्भादि दुर्गुणोंसे मुक्त होना चाहिये। अन्तःकरण-शुद्धिसे ही हम मानव कहलानेके अधिकारी हैं।

आन्तरिक शुद्धिके लिये आत्मनिरीक्षण, आत्मालोचन और सद्विचारकी अतीव आवश्यकता है।

छठा लक्षण—इन्द्रियनिग्रह

मनुष्यमें कान, त्वचा, आँख, जीभ, नाक—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और जो ग्रहण, गति, शब्दोच्चारण, त्याग और आनन्द-भोगकी शक्तियाँ हैं वे कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। इनमें मनुष्यकी ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक प्रबल एवं श्रेष्ठ हैं। जो इनके वशमें रहता है, वह पशु या राक्षस बन जाता है। इन पाँचोंके विषयोंकी आसक्तिके भयंकर दुष्परिणाम होते हैं। अतः इनके संयमसे हम 'मनुष्य' कहलानेके अधिकारी बनते हैं।

सातवाँ लक्षण—धी

'धी' अर्थात् बुद्धि। मनुष्यमें बुद्धिबलका सर्वोच्च विकास होना चाहिये। गीतामें कहा गया है, 'जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य, भय और अभय, बन्धन और मोक्षको ठीक-ठीक जानती है वह सात्त्विकी है। जिसके द्वारा पुरुष धर्म और अधर्म तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको यथार्थ रीतिसे नहीं जान पाते वह राजसी है और जिस बुद्धिसे वह अधर्मको धर्म तथा अन्य सब विषयोंको भी उलटा ही समझता है वह तामसी बुद्धि है।' सात्त्विकी बुद्धिके विकासद्वारा ही मानवताकी रक्षा हो सकती है।

आठवाँ लक्षण—विद्या

विद्यावान् ही सच्चा मनुष्य कहलानेका अधिकारी हो सकता है। अपढ़, मूर्ख, अन्धविश्वासी, रूढ़ियोंमें फँसे हुए व्यक्ति मानव कहलानेके अधिकारी नहीं हो सकते। सब विद्याओंमें श्रेष्ठ आत्मविद्या है जिससे हृदयमें सद्ज्ञानका प्रकाश होता है।

नवाँ लक्षण—सत्य

मनुष्यका सच्चा धर्म सत्य है। जैसा सत्य-व्यवहार वैसा ही सत्य-भाषण; बाहर-भीतर एक-सा रहना; दिखावेसे दूर रहना; ऐसे शब्दोंका प्रयोग करना जिनसे मन्तव्य स्पष्ट हो जाय और अर्थका अनर्थ न हो, दूसरेके हृदयमें द्वेष

तथा दु:ख उत्पन्न न हो; यह मानवताका एक लक्षण है।

दसवाँ लक्षण—अक्रोध

क्रोधकी उत्तेजनासे मुक्त रहना; मनसे शान्त, सहनशील, सद्भावनाओं, प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा आदिसे परिपूर्ण रहना मनुष्योचित कर्म है। उत्तेजित होनेवाला स्वभाव अनेक भयंकर पापोंकी जड़ है। सच्चे मानवको बाहर-भीतरसे शान्त, मृदुल, सहनशील तथा विनयी होना चाहिये।

उपर्युक्त सद्‌गुणोंके विकाससे सच्ची मानवताका निर्माण होता है। सच्चा मानव संसारके सौन्दर्यका सिरमौर है। पूर्ण मानवमें ऐश्वर्य, धर्म, यश, कर्म, श्री और वैराग्यकी परिपक्वता होती है। उसमें लौकिक और अलौकिक सभी गुण होते हैं। ऐसे मानवोंसे पृथ्वीपर ही स्वर्गका निर्माण हो सकता है।

आप स्वयं एक देवता हैं

मनुष्यमें सब देवताओंका निवास है। विधाताने मनुष्यके शरीरमें देवत्वकी सब गुंजाइशें भर दी हैं। देवताओंमें प्रस्तुत सब सद्गुणोंका भण्डार मानव-शरीरमें है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने जो जीवन व्यतीत किये थे, वे ऐसे थे कि जिनमें देवताओंके तत्त्व प्रत्यक्ष प्रकट थे।

इस भूमिमें जो स्वर्ग भरा हुआ है, जो-जो दिव्य विशेषताएँ हैं, यदि उनके लिये आप हृदयके द्वार खोल दें तो आपका देवत्व विकसित हो सकता है। भारत-भूमि देवताओंकी पवित्र भूमि है। इसके कण-कणमें देवत्व भरा हुआ है। आप भारत-भूमिमें जन्मे हैं अतएव अपनेको परम भाग्यशाली समझिये।

वास्तवमें शरीरकी अधिक महत्ता नहीं है। राक्षस और देवता दोनोंके बाह्य शरीरोंमें एक-से ही अवयव होते हैं। हमारी आन्तरिक भावनाएँ, सद्गुण, सात्त्विकता और पवित्रता ही हमें देवत्वकी ओर अग्रसर करती हैं। हमारी अच्छाइयोंका सम्बन्ध देवत्वसे है। श्रवणकुमार, प्रह्लाद, ध्रुव इत्यादि मानवशरीरमें देवता ही थे। कहते हैं कि एक बार श्रवण अपने पिता-माताको टाँगे-टाँगे, लादे-लादे थक गया। उसने क्रोधित होकर माँ-बापको उतार देना चाहा। उसके पिताने कहा कि कुछ आगे और ले चलो। श्रवणकुमार जैसे ही कुछ आगे बढ़ा, उसके हृदयमें देवत्वका प्रादुर्भाव हुआ। उसे अपनी गलती मालूम हुई और उसने अपने पितासे बार-बार क्षमा माँगी। उसके पिता यह दिखाना चाहते थे कि एक पुत्र पिताके लिये क्या-क्या कर सकता है। हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, कर्ण इत्यादि हमारे लिये प्रकाशस्तम्भ हैं।

इस भारत-भूमिके अतीतकालीन इतने दिव्य संस्कार फैले पड़े हैं, इसका अतीत इतना उज्ज्वल है कि यदि आप अपना हृदय उसके लिये खोल दें, तो निश्चय जानिये आपमें जरूर देवत्वके गुण प्रकट होंगे। आपकी सात्त्विकता और पवित्रता निरन्तर प्रकाशित होगी, आप ऊँचे उठते रहेंगे और राक्षस-तत्त्वसे मुक्त होते रहेंगे।

देवताओंकी प्रथम विशेषता है, वे (देव अर्थात् देनेवाले)—सदैव देनेवाले, दान करनेवाले हैं। यह देना (या दान) अनेक प्रकारका हो सकता है। श्रम, धन, स्नेह, प्रेम, करुणा, सहानुभूति, आश्रय आदि देना। देवता भावनाओंसे परिपूर्ण हैं। देवताओंकी पूजा करनेसे वे प्रसन्न होते हैं। वे कम लेते हैं,

अधिक-से-अधिक देते हैं। यदि हम भी समाजसे कम-से-कम लेकर अधिक-से-अधिक दें तो हम देवता बन सकते हैं। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि, ज्ञानी-संत-महात्माओंमें कमानेकी असंख्य योग्यताएँ थीं और उनसे वे बहुत धन प्राप्त कर सकते थे। लेकिन उन्होंने लिया नहीं, त्याग किया। उन्होंने शेष आयुपर्यन्त कुछ-न-कुछ दिया, यहाँतक कि सर्वस्व दे डाला। ऐसे श्रमी, दानी, उदार महात्मा मानवशरीरमें देवता ही थे।

गायत्रीका '**देवस्य**' हमें यह शिक्षा देता है कि हम कम-से-कम लें और अधिक-से-अधिक प्रदान करें। हम समाजकी अधिक-से-अधिक सेवा करें और आयके रूपमें कम-से-कम लें। अधिक लेना स्वार्थका प्रतीक है। अधिक लेना संकुचितता है, निर्बलता है और राक्षसत्वकी ओर पतन है।

देवताओंकी दूसरी विशेषता यह है कि वे स्वर्गमें रहते हैं। तो क्या आप भी स्वर्गमें निवास कर सकते हैं? हाँ, आप रह सकते हैं। इमरसन लिखते हैं कि यदि मुझे नरकमें भी रहना पड़ा तो अपने स्वभावसे नरकको भी स्वर्ग बना लूँगा। वास्तवमें अपने स्वभावकी उदात्तता, मधुरता, अच्छाईके कारण हम स्वर्गकी सृष्टि कर सकते हैं। यदि हम दूसरोंपर विश्वास करें, प्रेम करें, सहानुभूति दिखलायें, ऊँचा उठायें, अच्छाइयाँ बढ़ावें तो विश्वास रखिये आपका देवत्व जरूर विकसित होगा। प्रेम और अच्छाइयोंके विकाससे बिगड़े हुए, पथभ्रष्ट भी सुपथपर आ जाते हैं। सद्व्यवहारका गहरा प्रभाव पड़ता है। सद्भावनाएँ जैसी जाती हैं, दुगुनी-चौगुनी होकर देनेवालेके पास लौटती हैं। वे चारों ओर पवित्र वातावरणकी सृष्टि करती हैं। आपकी सद्भावनाएँ और सद्व्यवहार आपके अंदर व्याप्त दैवी तत्त्वके प्रतीक हैं। इनका विकास प्रतिदिनके अपने सत्कर्मोंद्वारा करते रहें।

हमारे अंदर अच्छाइयोंका भण्डार भरा पड़ा है। हमारी तरह अन्य मानवोंमें भी सद्गुण भरे हैं। यदि हम अपने अंदर देवत्वको विकसित कर लें तो अन्य व्यक्ति भी हमारे अनुकरणपर अपनी सात्त्विकता और पवित्रताका विकास करेंगे। हम सब सात्त्विकता और पवित्रताके सद्व्यवहारसे एक अच्छे वातावरणकी सृष्टि करते हैं। हमारा यह पवित्र कर्तव्य है कि इस दिव्य वातावरणकी परिधिका निरन्तर विस्तार करते रहें। जितने अधिक व्यक्ति हमारे इस वातावरणके अन्तर्गत आयेंगे, उतने अधिक वे गुप्तरूपसे देवत्वका विकास कर सकेंगे।

देवता अमर होते हैं। हम भी अमर बन सकते हैं। जिस व्यक्तिकी सत्-कीर्ति अमर है वह शरीररूपसे न सही आत्मिकरूपसे अजर-अमर है। बुद्ध, गाँधी, ईसा क्या मर गये? नहीं, अपनी कीर्तिके कारण अमर हैं। उनकी कीर्ति अक्षय है। वे सदा अमर बने रहेंगे। यदि हम भी अपने सत्कार्योंकी वृद्धि करें तो देवत्वका विकास कर सकते हैं।

जो शरीरके लिये जीते हैं, वे मरते हैं। जो पेटू होते हैं, वे मरते हैं। जो शरीरकी खुजली मिटाने और भोगोंकी तृप्तिके लिये जीते हैं, वे निकृष्ट जीवन व्यतीत करते हैं। उस आदमीकी मौत आती है, जो दूसरोंका शोषण करता है, हिंसा करता है या दूसरोंका हृदय दुखाता है। इन्द्रिय-तृप्ति तो पशु भी करते हैं, उदर एवं कामेन्द्रियकी क्षुधा वे भी तृप्त करते हैं। यदि हम इसी गंदगीके नीचे जीवनमें फँसे रहें तो हम पशुत्वकी कोटिमें ही रहते हैं। यह निकृष्ट जीवन मानवके लिये अशोभनीय है।

देवता वृद्ध नहीं होते, सदा युवक बने रहते हैं। अक्षय यौवन उनकी विशेषता है। उनकी विशेषताओंका जो सौन्दर्य है, वह उन्हें युवक बनाता है। देवता हँसता है, मधुर मुसकान उसके मुखपर खेलती रहती है। मृत्युतकसे वह मुसकराकर व्यवहार करता है। मृत्यु हमारा अन्तिम अतिथि है। जो व्यक्ति निराशाकी भावनासे मुक्त हैं, उदासी जिनके पास नहीं आती, जो प्रफुल्ल हैं वे देवता हैं। युवककी भावना है कि अपने कर्त्तव्यपर स्फूर्तिसे, जोशसे लगा रहे, आगे बढ़ता रहे, आनन्दपूर्वक जिये। देवत्वकी भावना कहती है कि हम नवयुवककी भावना लेकर जियें। हम राक्षसत्व (पशुत्व)-का हमेशा विरोध करते रहें। अपने परमार्थ, लोक-सेवा, सद्व्यवहारके रूपमें देवत्वका विकास करते रहें। आप अपनेको सुधारिये, पूर्ण समाज सुधर जायगा। आप स्वयं देवता बनिये, सम्पूर्ण समाज, देश और विश्व देवताओंसे भर जायगा।

विश्वास कीजिये, आप स्वयं एक देवता हैं। जिस कामको करनेसे आपके मनमें नीचता, ओछापन, हिंसा, स्वार्थ, घृणा और क्रोध उत्पन्न होता है, वह आपके आचरणके योग्य नहीं है। आपका सरोकार दुष्टता और पशुत्वसे कदापि नहीं है। आप कुपथपर नहीं जा सकते। आपका पग बुराईकी ओर नहीं बढ़ सकता। आप तो देवत्वके सब गुणोंसे परिपूर्ण समुन्नत आत्मा हैं। परमेश्वरके एक दिव्य अंश हैं।

व्यक्तिविशेष, जातिविशेष और देशविशेषके नाते आप कोई कार्य न करें।

आप तो मानवताके नाते सेवा-कार्य कीजिये। आपका धर्म व्यक्तिका धर्म नहीं है वह तो समाज और सारे विश्वका है। कोई जाति अथवा धर्म अपनी संकुचित परिधिमें आपको बाँध नहीं सकता। आपका आचरण किसीके लिये हानिकर न हो, दुःखकर न हो, हिंसा, द्वेष, ईर्ष्यासे परिपूर्ण न हो। आप तो समस्त मानवमात्रकी भलाईको दृष्टिमें रखकर देवत्वका आचरण करें और दूसरोंकी सद्भावनाओं, श्रेष्ठताओं और पवित्रताओंका आदर करें।

महर्षि रमणका वचन है—'दैवी ज्ञान हुए बिना मनुष्यको अपनी कीमत नहीं मालूम होती और इसीलिये अपने विषयमें वह औरोंसे जानना चाहता है, जब कि अपने सम्बन्धमें वह अपनी आत्मासे विश्वस्त किंतु दृढ़तापूर्वक जानकारी कर सकता है। सांसारिक दृश्यपर देव मोहित नहीं होते; क्योंकि निरन्तर अन्तर्दृष्टि रखनेके कारण उन्हें अपने भीतर ही उससे अधिक महत्त्वपूर्ण चीजें मिल जाती हैं।'

सबसे धनी सबसे दुःखी

धन और सुख—क्या इन दोनोंका परस्पर सम्बन्ध है? जो व्यक्ति धनी है, क्या वह सुखी भी है? जिन व्यक्तियोंके पास बड़ी पूँजी, जमीन, जायदाद, धन, मकान इत्यादि हैं, क्या वे वास्तवमें आनन्दित, संतुष्ट, शान्त भी हैं? सुसज्जित मकान, सुन्दर वस्त्र, मोटर, सुस्वादु भोजन एवं धनके भरे हुए भण्डारोंके स्वामी ही इस संसारका आनन्द लूट सकते हैं?—ये ऐसे प्रश्न हैं जो जन-मानसको उद्वेलित किया करते हैं।

धन एक साधन है, जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न आवश्यक वस्तुएँ खरीदकर हम सुख-शान्ति प्राप्त करते हैं। धनसे वे चीजें हमारे पास आ सकती हैं, जिनके द्वारा हम स्वयं अपने और अपने परिवारके योग्य वस्त्र, भोजन इत्यादि ले सकते हैं। लेकिन जब धन ही साध्य बन जाता है और मनुष्य केवल धन-संग्रहको ही जीवनका लक्ष्य बना लेता है, तब वह एक ऐसी दुष्ट वृत्तिमें फँस जाता है जिससे उसे लाभके स्थानपर मानसिक अशान्ति प्राप्त होने लगती है। वह उसीके मोह-चक्रमें घूमता-फिरता और उसे बढ़ाने तथा सहेजनेकी चिन्तामें लगा रहता है।

हमारे नगरके एक सेठ, जिनकी अभी पिछले दिनों मृत्यु हुई है, नगरमें अपने ऐश्वर्य और धनके लिये प्रसिद्ध थे। जीवन बड़े सुख-विलासमें व्यतीत हो रहा था कि वृद्धावस्थामें विवाह कर लिया। धीरे-धीरे पुनः परिवार-वृद्धि हुई। वृद्धावस्थामें दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनके पोषण-शिक्षणके अतिरिक्त नयी पत्नीके यौवनको संतुष्ट रखनेकी चिन्ता सवार हुई। इधर व्यापारने रुख बदला और उधरसे ध्यान हटनेके कारण भयंकर हानि हुई। कुछ जायदाद बिकनेकी नौबत आ गयी। अपनी प्रतिष्ठाके ह्रासकी चिन्ताने सेठजीको मानसिक रोगी बना दिया। रेहन की हुई जायदाद बिक गयी। जिस दिन उन्हें मालूम हुआ कि मेरे दिवालेकी बात लोगोंकी जबानपर है, उनका घरसे निकलना दुष्कर हो गया। मानसिक रोग बढ़ता गया। एक रात हृदयकी गति रुकनेसे अनायास ही उनकी मृत्युका समाचारपत्रोंमें छपा। समाचारपत्रमें लिखा गया कि '५७ वर्षकी वृद्धावस्था होनेके कारण सेठजीकी मृत्यु हो गयी।' किसे ज्ञात था कि मृत्युका कारण बुढ़ापा नहीं, प्रत्युत धनके आधिक्यसे उत्पन्न मानसिक चिन्ता थी।

पंजाबके एक पूँजीपतिका वृत्तान्त मुझे स्मरण हो आया है। ये महानुभाव गल्लेके व्यापारी हैं। लक्ष्मीकी कृपा हुई तो एक साधारण-सी स्थितिसे उन्नत होते गये। स्वयं अध्यवसाय और परिश्रमसे कार्य लिया और शहरके एक धन-सम्पन्न व्यक्ति गिने जाने लगे। ढलती अवस्थामें, व्यापार उनके पुत्रोंके हाथोंमें आया तो शैथिल्य आ गया। लड़के सट्टा करने लगे। एक उदास और अभाग्यशाली दिन उन्होंने सुना कि सट्टेका दाँव उनके विपरीत रहा और वे सब कुछ हार गये हैं।

'मेरा सब कुछ चला गया। अब जबतक घरके मकान और दूकानें न बेची जायँ तबतक इज्जत बचना सम्भव नहीं है। क्या किया जाय? इस वृद्धावस्थामें भी क्या यह दुःखदायी दिन देखना बदा था! क्या करूँ? आत्महत्या कर लूँ या कहीं भाग जाऊँ? लेकिन कर्जेवाले कब मुझे छोड़ेंगे?' ऐसी अनेक बातें मनमें लिये वे मुझे मिले।

'कुछ अनावश्यक मकान या जायदाद बेचकर बेहद जरूरतमंद कर्जदारोंका ऋण चुका दीजिये। शेषको पुनः सचाई, निष्ठा और परिश्रमसे व्यापार कर धन कमाकर चुकाइये। आपके तीन पुत्र हैं। एक आप स्वयं हैं। नये जोशसे यदि परिश्रम करेंगे तो निस्संदेह आप पुनः उसी सम्पन्न स्थितिमें आ जायँगे।' वे मेरी सम्मति मान गये। लगभग आधी जायदाद बेच दी गयी। शेषको रख पुनः व्यापार चालू किया गया। गत आठ वर्षकी साधनाके अनन्तर आज वे पुनः साधारणतः सम्पन्न स्थितिमें आ गये हैं। किंतु उन्हें मामूली हैसियत पसंद नहीं है। वे अपनी पहली अवस्थाके स्वप्न निरन्तर देखकर दुःखी और अशान्त रहा करते हैं। उनके मनकी शान्ति और संतुलन ठीक नहीं हो पाता। सदा कुछ खोये-खोये-से रहते हैं।

धनके आधिक्यसे मनुष्यमें एक प्रकारकी मिथ्या शान-सी आ जाती है। यदि कभी संयोगवश धनकी कमी हो जाय, हानि हो, व्यापार नष्ट हो जाय, तो धनी मनमें व्यथा-भार लिये रहता है। एक दिन यही उसे ले बैठता है। धनके साथ उसे सदा ज्यों-का-त्यों बनाये रखनेकी इच्छा बनी रहती है। इससे धनी व्यथित रहता है।

व्यापारी, पूँजीपति और धनी व्यक्ति सदासे अस्वस्थ रहते आये हैं। अंदर-ही-अंदर रुपयेको बनाये रखने और मान-प्रतिष्ठा स्थिर रखनेकी चिन्ता उन्हें अशान्त रखती है। कभी उनके पेटमें विकार है तो कभी सिरदर्द, उदासी

इत्यादि। उन्हें चिन्ताके कारण पूरा भोजनतक नहीं पच पाता; रात्रिमें पूरी निद्रा नहीं आती; बाह्य प्रदर्शनकी भावना उन्हें अतृप्त-सी रखती है।

धनीकी जल्दी मृत्युका कारण अतृप्ति, लालसा, चिन्ता और उदासी हैं। धनके आधिक्यके साथ चिन्ता बढ़ती रहती है। धन जितना एकत्रित किया जाता है, उतना ही वह मानसिक उत्तरदायित्वके भारको बढ़ाता है।

यदि धनी दान, परोपकार, समाज-सेवा इत्यादिमें अपने रुपयेका सदुपयोग करता चले, तो उसका यह भार कम हो जाता है; संकुचितवृत्ति नष्ट हो जाती है। सर्वोत्तम यही है कि मनुष्य यदि अपने पास रुपया रखे भी तो अपने-आपको उससे बाँधे नहीं, अपने ऊपर रुपयेका अनावश्यक प्रभुत्व न होने दे। रुपयेको एक साधनमात्र समझकर ग्रहण करे, उसे साध्य कदापि न माने।

सच्चा सुख, शान्ति, आनन्द मनुष्यके आन्तरिक भावमें हैं। धनसे इनका सम्बन्ध बहुत कम है। गरीब व्यक्ति, फक्कड़, मस्त, बेपैसेवाले व्यक्ति धनकी चिन्तासे मुक्त होनेके कारण स्वस्थ और दीर्घायु होते हैं। सड़कोंके किनारे पड़े हुए फकीर, दैनिक श्रम करनेवाले मजदूर, आठ-दस घंटे काम करने और चिथड़े लपेटे रहनेवाले गरीब किसान अधिक जीते हैं, वे अधिक शान्त, प्रसन्न और स्वस्थ रहते हैं। उन्हें न धनको स्थिर रखने, न अनावश्यक संग्रह करने और न कृत्रिम मायाजाल फैलाये रखनेकी चिन्ता है और न पूँजीद्वारा शोषण करनेकी आकांक्षा।

धन एक विष है, एक मद है जो मनुष्यको विक्षिप्त कर देता है। सत्य ही कहा है—

कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौराय है, यह पाये बौराय॥

धर्मकी कमाईसे समृद्धि

धनको हमारे यहाँ एक देवीके रूपमें माना गया है। इसे हम माता लक्ष्मी कहते हैं। लक्ष्मीमें देवत्वके गुणोंकी भावना है। जो व्यक्ति रिश्वत, काला बाजार, झूठ, कपट, चोरी करते या बिना परिश्रमकी कमाई लेते हैं, वे लक्ष्मी देवीका अपमान करते हैं। जिस स्थानपर माता लक्ष्मीका अपमान हो, वे वहाँ कैसे ठहर सकती हैं? अतः वे उस स्थानको त्यागकर उस व्यक्तिके पास

पहुँचती हैं जो सचाई, परिश्रम और धर्मकी कमाई करता है।

सट्टे और जुएसे लोग एक रातमें ही इतने अमीर होते देखे गये हैं कि आश्चर्य होता है। अहमदगढ़ (पंजाब)-की एक घटना हमें याद है। एक सुनार साधारण आयसे जीवन-निर्वाह करता था। एक दिन दूकानके लिये सोना खरीदने वह लुधियाने गया। वहाँ देखा कि कुछ व्यक्ति सट्टा लगा रहे थे। उसका भी मन मचल उठा। जी कड़ाकर उसने भी सट्टा लगा दिया। संयोगसे भारी माल हाथ लगा। सोचा कि यह पेशा सबसे अच्छा है। न मेहनत, न देर। अठगुने रुपये मिलते हैं। बस, दूकान छोड़कर सट्टा ही लगाने लगा। भाग्य अच्छा था। हर बार जीत-ही-जीत होती गयी। एक दिन सट्टाबाजारमें गया और सब कुछ दाँवपर लगा दिया। उस दिन भाग्य उलटा था, वह सब कुछ हार गया। सारी सम्पत्ति क्षणमात्रमें विलीन हो गयी। सोचा एक बार और प्रयत्न करें। पर दुबारा-तिबारा हारता ही चला गया। अन्ततः दूकानका भी सब धन स्वाहा हो गया। अब मानसिक क्लेशकी भीषण यन्त्रणामें दग्ध होने लगा। एक मास पश्चात् उसका शव ही घरसे बाहर निकला और वह घरवालोंको गरीबी, बेबसी और ऋणमें छोड़ गया!

इसके विपरीत धार्मिक कमाईके अनेक उदाहरण आपको मिल सकते हैं, जिनमें आय कम हुई; किंतु सचाई, श्रम और ईमानदारीके कारण उसीमें समृद्धि और संतोष रहा। कबीर एक जुलाहे थे। रैदास चमार थे। इन महापुरुषोंकी आय कितनी होती होगी। स्वयं अनुमान कर सकते हैं; पर उसीमें उन्होंने जीवनका मजा लूटा, सुखी और मस्त रहे। गाँधीजी गरीबोंका, परसुख और संतोषका जीवन व्यतीत करते रहे। इसके अतिरिक्त सैकड़ों ऐसे श्रम, सचाई और ईमानदारीके उदाहरण उपलब्ध हो सकते हैं जो सात्त्विकता और धर्मभावनासे परिश्रम करनेपर प्रतिष्ठित पदपर आसीन हुए।

धर्मका पैसा टिकाऊ होता है। मनुष्य उसका मूल्य समझता है तथा उससे स्थायी लाभ उठाता है। ऐसा व्यक्ति व्यसन, व्यभिचार, दिखावा इत्यादिसे दूर रहकर संयमी, सदाचारी जीवन व्यतीत करता है। धर्मका एक पैसा चोरी-अधर्मके हजार रुपयेसे अच्छा है; क्योंकि उसमें मानसिक और आध्यात्मिक सुखका भाव है। यह भय नहीं कि हमारी चोरी पकड़ी जायगी।

अधर्म और पापकी कमाईके साथ फजूलखर्चीका आगमन होता है। मनुष्य व्यर्थके अभिमान, अहंकार, डाह, शौक, व्यसनमें पड़कर अनाप-शनाप

व्यय कर डालता है। झूठी शान और दम्भके वशमें पड़कर शेखीबाज बेजरूरी चीजोंको भी जरूरी बना डालते हैं।

वकालतके पेशोंमें स्थान-स्थानपर झूठ, फरेब, बेईमानीसे काम लेना पड़ता है। वकील रुपयेके कारण सत्य और मिथ्याका कोई विवेक नहीं करते। फलत: वे अमीर होते देखे जाते हैं, पर अन्तमें उनकी विलासी, भड़कीली, क़ामसे बचनेवाली संतान सारा रुपया चौपट कर डालती है। सिनेमा चलानेवालोंकी संतान दुश्चरित्र, विलासी और रोमांटिक हो जाती है। शराब बेचनेवाले महाजन बहुत जल्दी अपनी मक्कारीसे ऊँचे मकान खड़े कर लेते हैं, पर बच्चे शराबी बनकर सारी पूँजी नष्ट कर देते हैं। पापकी कमाईके साथ फजूलखर्ची, नशेबाजी, बुरे कामकी शौकीनी, प्रमाद और आलस्य आते हैं।

धर्मकी कमाई ही समृद्धिका मूल मन्त्र है। वह टिकाऊ और सदा आनन्द देनेवाली है। मनुष्य जानता है कि उसने कितने श्रमसे उसे प्राप्त किया है, अत: वह उसे व्यय करनेमें भी संयमसे काम लेता है। इस आत्मदमन और संयमसे वह समुन्नत होता है।

अपनी आवश्यकताएँ घटाइये

आज सर्वत्र पैसेकी तंगीकी ध्वनि आ रही है। प्राय: सभी अपनी आयमें अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं। भौतिक आनन्दोंको पानेके लिये रिश्वत, घूस और कालाबाजार चल रहे हैं। आय बढ़ती नहीं तो उनकी व्यग्रता और भी बढ़ती है।

विवेक हमसे कहता है कि इस समस्याको दूसरी तरहसे क्यों नहीं सुलझाते। **'तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर।'** आयकी चिन्ता छोड़कर आवश्यकताओंको घटाना प्रारम्भ कर दीजिये, जिससे इसी आयमें काम चल जाय और कुछ शेष भी बच जाय।

हमें परेशान करनेवाली हमारी कृत्रिम आवश्यकताएँ और बनावटी जीवन है। जैसे हम हैं, उससे बढ़ा-चढ़ाकर दिखानेके हम आदी बन गये हैं। हमने पढ़-लिखकर अपने विलास तथा आरामकी नाना वस्तुओंको जन्म दे डाला है। हमारी जीभ तथा वासना अनियन्त्रित हो गयी है। हम दूसरोंका अन्धानुकरण करनेकी मूर्खता कर रहे हैं। फलत: रोगी और दु:खी हैं।

आवश्यकताएँ हमारे गुण, स्वभाव और परिस्थितिके अनुसार घटती-बढ़ती रहती हैं। रबरकी तरह, चाहे जितनी बढ़ा लीजिये, चंचल मनका नियन्त्रण कर चाहे जितनी सिकोड़ लीजिये। जितनी अधिक आवश्यकताएँ, उनकी पूर्तिके लिये उतना ही श्रम, भाग-दौड़ और संघर्ष। अपूर्ण रहनेपर उसी अनुपातमें मानसिक कष्ट और वेदना।

मोटे रूपसे आपकी आवश्यकताएँ तीन प्रकारकी हैं—(१) जीवन-यापनके लिये जरूरी, (२) सुखविषयक, (३) विलासविषयक। प्रथम वर्गकी आवश्यकताएँ पूर्ण कर अधिक-से-अधिक संतोष हो सकता है। वर्ग २ और वर्ग ३ की अन्तिम सीमाका कोई ठिकाना नहीं।

प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियोंने आवश्यकताओंमें भेद नैतिक आधारपर किया था। उन्होंने मानवके लिये उन्हीं आवश्यकताओंकी योजना रखी थी, जो सरल, सादा जीवन और उच्च विचारोंकी पोषक थी। सुख और विलासको उन्होंने मानवकी शक्तियाँ कुण्ठित करनेवाला माना था।

भौतिक सभ्यताके युगमें मनुष्यने सुख और विलासकी आवश्यकताओंको बढ़ाया और उनके अपूर्ण रहनेपर वह विक्षोभ, मानसिक कष्ट तथा अभावोंकी

भट्ठीमें जलता रहा।

जीवनविषयक आवश्यकताएँ क्या हैं? हम आवश्यक, सुखविषयक एवं विलासकी आवश्यकताओंमें विवेक किस प्रकार करें? आइये इस प्रश्नपर विचार करें।

जीवन-रक्षक आवश्यकताएँ वे हैं जिनके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। पौष्टिक भोजन, वायुयुक्त मकान, साधारण वस्त्र, रोगोपचारक सुविधाएँ तथा शिक्षा—ये ऐसी मौलिक आवश्यकताएँ हैं, जो जीव धारणके अतिरिक्त मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक तथा शैल्पिक शक्तियोंका विकास करती हैं। प्रत्येक व्यक्तिको इनकी पूर्तिका प्रथम प्रयत्न करना चाहिये।

इनके पश्चात् उन आवश्यकताओंको पूर्ण कीजिये जो आपके सामाजिक प्रतिष्ठाके लिये जरूरी हैं और जिनके लिये आपको कभी-कभी अपनी जीवनविषयक आवश्यकताओंसे विमुख होना पड़ता है।

यहाँतक आप अपने-आपसे उदारताका व्यवहार कर सकते हैं; किंतु आगेका मार्ग बड़ी जागरूकता एवं सावधानीका है। भोग-सुख एवं विलासके क्षेत्र अनन्त हैं। आजके मानवकी चिन्ताका कारण ये ही वर्ग हैं।

विलास एवं भोग-सुखका वर्ग बड़ा लम्बा है। इसमें बढ़िया-बढ़िया वस्त्र, आलीशान मकान, गहने, मनोरंजनके कीमती साधन, मिष्टान्न और ऊँचे प्रकारके भोजन, मोटर, सिनेमा, क्लबका जीवन, मादक पदार्थोंका सेवन, दान-दहेजकी अधिकता, बहुमूल्य वाहन और कलात्मक वस्तुओंका संग्रह सम्मिलित है।

अपने पेशे, स्तर तथा वातावरणको देखिये और फिर उपर्युक्त आवश्यकताओंको कम करते जाइये। अपने सामाजिक जीवन, आर्थिक शक्ति, परिवारके सदस्योंकी संख्या, स्थान एवं समयको देखिये।

जिस वस्तुको रखनेकी आपमें क्षमता नहीं है और जो आपकी किसी स्थायी माँगकी पूर्ति न कर केवल मिथ्या प्रदर्शनमात्रके लिये है, उसे त्याग दीजिये। जिन भोजनोंसे आपकी कार्यक्षमता नहीं बढ़ती, केवल व्यसनके रूपमें वे साथ बँधे हुए हैं, उनसे तुरंत दूर रहने लगिये। पान, सिगरेट, शराब, भाँग, चरस, बीड़ी और इसी प्रकारके दूसरे व्यसन आपकी अज्ञानताके सूचक हैं, इनके पंजेमें बँधे रहना महामूर्खता है।

मानवको शान्ति तब प्राप्त होती है, जब वह कम-से-कम आवश्यकताओंका

बोझ सिरपर रखता है। जिसे तनिक-तनिक-सी वस्तुका मोह होता है, वह उनकी अपूर्तिपर निरन्तर विक्षुब्ध रहता है।

कम आवश्यकतावाला व्यक्ति अपनी शक्ति क्षुद्र कार्योंसे बचाकर उच्चतर कार्योंमें व्यय कर अपनी आत्मिक उन्नति कर सकता है। देहमें वासना है, वासनासे असंख्य इच्छाएँ और इच्छाओंसे कष्ट उत्पन्न होता है। जैसे हाथीके बाहर निकले हुए दाँत फिर अंदर नहीं जाते, वैसे ही एक बार बढ़ी हुई आवश्यकताएँ कम नहीं हो पातीं। प्रत्येक आवश्यकता एक ऐसा महसूल है, जो चुकाना ही पड़ता है।

आजके जीवनमें जो समस्याएँ अत्यन्त पेंचीदा हो रही हैं, जिनसे अन्त:करणमें क्षोभ उत्पन्न होता है, वे बढ़ी हुई झूठी कृत्रिम आवश्यकताओंसे ही उत्पन्न हुई हैं। हम स्वयं ही इनके जनक हैं।

देखिये आपकी प्रवृत्ति किस ओर चल रही है—क्या आप निरन्तर एकके पश्चात् दूसरी अन्धाधुन्ध आवश्यकताएँ बढ़ाते चले जा रहे हैं? अनाप-शनाप व्यय कर दूसरोंसे ऋण ले-लेकर क्यों व्यर्थ ही अपनेको बन्धनोंमें डाल रहे हैं? कहीं आपको मिथ्या प्रदर्शन, झूठी शान, जगत्को अपना अतिरंजित स्वरूप दिखानेकी तो आदत नहीं पड़ गयी है? विलास, भोग, व्यभिचार, अभक्ष्य वस्तुओंका भोजन-पान करनेकी कुत्सित आदतमें पड़कर आपका चित्त चंचल तो नहीं रहता है? यदि आप इन शत्रुओंसे मुक्त रहना चाहते हैं तो अपनी आवश्यकताओंको एक-एक करके कम करते जाइये, आप सुखी रहेंगे।

हमारा सुख हमारी आवश्यकताओंके अनुपातमें रहता है। अधिक आवश्यकताओंवाला व्यक्ति बड़ी कठिनतासे सुख-समृद्धि प्राप्त करता है। कारण, उसकी अन्तिम आवश्यकताको पूर्ति होते-होते, सुख भोगनेकी शक्ति बिलकुल क्षीण हो जाती है। प्रत्येक आवश्यकता एक मानसिक बन्धन है। जो इन बन्धनोंमें अधिक-से-अधिक बँधा है, उसके सुखमें उतनी ही बाधाएँ हैं।

अधिक आवश्यकतावाला व्यक्ति जिस मानसिक रोगसे पीड़ित रहता है, वह है मनका वशमें न रहना, अति चंचलता, अति स्वच्छन्दता और इन्द्रियोंको वशमें न कर सकना। यदि ऐसे व्यक्ति कुछ चित्तवृत्ति-निरोध करें तो, बढ़ी हुई आवश्यकताओंसे मुक्ति पा सकते हैं। मनुष्य मनकी वृत्तियोंको ढीला

छोड़कर चंचल, उन्मत्त और प्रचण्ड बना लेता है। कालान्तरमें आदत बन जानेपर उनसे मुक्ति असम्भव हो जाती है। व्यसन, फैशन, व्यभिचार आदि कुत्सित आदतोंका प्रारम्भ बड़ा साधारण होता है, धीरे-धीरे व्यसन बढ़ते हैं। अन्तमें मनुष्य इन्द्रियोंका दास हो जाता है।

इसी प्रकार यदि मनुष्य मनमें दृढ़तासे यह प्रण कर ले कि मुझे मनकी चंचलता, व्यर्थके प्रलोभन इत्यादिसे मुक्त रहना है तो वह मनकी प्रलोभन-वृत्तिको नियन्त्रित कर सकता है।

जैसे आपने व्यसनके मायाजालको प्रारम्भसे क्षीण किया था, वैसे ही शुभ भावनाओंका प्रारम्भ कीजिये। शुभका चिन्तन कीजिये, सद्विचारमें लगे रहिये, व्यर्थकी कृत्रिम आवश्यकताओंको काटते जाइये, आप देखेंगे, आपका अन्तर्द्वन्द्व कम हो गया है। मनमें अब दुःखकी लहरें कम उठती हैं। अपनी पूर्णताकी भावना, आत्मशान्तिकी भावना अन्तर्मुखी निश्चयात्माकी भावनामें दृढ़तापूर्वक रमण करनेसे चित्तवृत्तिका निरोध होता है। मनमें यह भावना जमाइये—

'आवश्यकताओंकी पूर्ति सम्भव नहीं है। एक आवश्यकता पूर्ण होती है तो चार नयी और आकर खड़ी हो जाती हैं। इनकी पूर्तिपर बीस-पचीस नयीं जरूरतें मुँह फैला देती हैं। इस मायाजालमें फँसनेपर आवश्यकताओंका अन्त नहीं। अतः मैं व्यर्थ इन्हें कदापि न बढ़ने दूँगा।'

अन्तर्द्वन्द्वसे मुक्ति

कितने ही क्षीण मनोबलवाले व्यक्ति मनकी दो विरोधी भावनाओंके पारस्परिक संघर्षके शिकार रहा करते हैं। दोनों ओर समान रूपसे आकर्षण रहता है। उनका मन दोनों ओरको आकृष्ट होता है। वे चाहते हैं कि उन दोनों पारस्परिक विपरीत बातोंको कर डालें। एक ओर उन्हें जगत्‌के नाना भोगों, पुत्र-कलत्र इत्यादिमें आकर्षण प्रतीत होता है, सुन्दर मिष्टान्नपर उनका मन लुभता है, तो दूसरी तरफ यह भी जी करता है कि अन्तःकरण शुद्ध सात्त्विक बन जाय, इन्द्रियाँ वशमें हो जायँ, मन विषयोंसे हटकर परमात्मामें एकाग्र हो जाय। इस प्रकार मनमें संशयकी उत्पत्ति होती है और मन भ्रमित हो जाता है।

जीवनमें अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब मन अन्तर्द्वन्द्वसे अशान्त हो जाता है। किसी विशेष परिस्थिति या मनोदशामें हम कोई कार्य करना स्थिर करते हैं। उसकी प्राप्तिका उद्योग भी करते हैं; किंतु कुछ काल पश्चात् मनके किसी अज्ञात कोनेसे एक दूसरी आकांक्षा उदित हो आती है; उस ओर भी प्रबल आकांक्षा होने लगती है। फलतः मनमें अन्तर्द्वन्द्वकी उत्पत्ति हो उठती है जिसके कारण हम बड़े असमंजसमें पड़ जाते हैं। कुछ स्थिर नहीं कर पाते। अतः किंकर्तव्यविमूढ़ रह जाते हैं।

स्थिरबुद्धिकी न्यूनता

स्थिरबुद्धिकी न्यूनता अनेक साधकोंकी निर्बलता है। इसके गर्भ-भागमें संदेह तथा प्रलोभनके तत्त्व कार्य करते हैं। मनुष्य किसीके कहनेसे या पढ़नेसे या दूसरेके उदाहरणमात्रसे साधन आरम्भ करता है; किंतु तुरंत ही उसे सिद्धि नहीं मिलती। फलतः वह अपने साधनमें संदेह करने लगता है। यह संदेह मनको शिथिल बना देता है तथा वह किसी दूसरी ओर आकर्षित हो उठता है। संशय तथा प्रलोभनसे पूर्ण अन्तःकरणमें स्थिरबुद्धिका निरन्तर क्षय हुआ करता है। ये दोनों शत्रु मनुष्यको कर्तव्यमार्गसे च्युत किया करते हैं।

जब मनुष्य सत्यके अन्वेषणमें तुच्छ वस्तुओंको ही परम पदार्थ मानकर उनमें लिप्त होना चाहता है, तब मनकी स्थिरबुद्धि पंगु तथा शक्तिहीन-सी हो जाती है। स्वार्थपूर्ण प्रयत्न हमारी दैवी आकांक्षाको ग्रस लेते हैं, अतः अनन्त

जीवनके साथ हमारी एकता नहीं हो पाती। यह पृथक्त्व, जो प्रतीत और अनुभूत होता है, केवल मानसिक भ्रम (Mental illusion) है और मूर्खता तथा अविश्वाससे उत्पन्न हुआ है। अपने वास्तविक स्वरूपकी अनभिज्ञताके फलस्वरूप ही यह विलगता हमें विक्षुब्ध करती है।

मनकी दो भूमिकाएँ

प्रत्येक व्यक्तिके अन्तःकरणमें दो स्तर हैं। एक परम दिव्य, द्वितीय निकृष्ट। उच्च भूमिका हमें सात्त्विक जीवनकी ओर खींचती है। निम्न भूमिका हमें उच्छृंखलताकी ओर आकर्षित करती है। अन्तर्द्वन्द्वकी उत्पत्ति उस समय होती है जब साधक इन दो भूमिकाओंके जोड़ (Margin)-पर रहता है। जो सदैव उच्च भूमिकामें जीवन व्यतीत करते हैं—जैसे योगी, ऋषि, मुनि, तपस्वी, महात्मा इत्यादि, उनके मनमें निम्न विकारोंका समावेश ही नहीं होता। इसके विपरीत निम्नकोटिके राजसी और तामसी प्रकृतिवाले व्यक्तियोंको पवित्रताका आनन्द मालूम ही नहीं। अतः निकृष्ट बुद्धिके व्यक्तियोंमें भी अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता। मुश्किल तो उन व्यक्तियोंकी है जो मध्यमें हैं। कभी इस ओर आकर्षित होते हैं तो कभी दूसरी तरफ खिंच जाते हैं। ऐसे ही उदीयमान व्यक्तियोंके मनमें द्वन्द्व उत्पन्न हुआ करता है। इस प्रकारकी दो विरोधी भावनाएँ उनके मनको इष्ट मार्गपर एकाग्र नहीं होने देतीं। मानसिक शान्ति एवं समस्वरताको अस्तव्यस्त कर देती हैं।

कल्पना कीजिये—एक साधक चाहता है कि मनमें अश्लील विचार, कामोत्तेजक स्मृतियाँ, निन्द्य इच्छाएँ प्रविष्ट न हों; किंतु फिर भी इच्छाके विपरीत ये विरोधी विचार बारम्बार आया करते हैं। वह उन्हें विस्मृत करना चाहता है, किंतु फिर भी वे पुनः अधिकाधिक वेगसे प्रविष्ट होकर प्रज्ञाको आशंकित कर देते हैं।

मूल प्रवृत्तियोंका शोध

अन्तर्द्वन्द्वसे मुक्तिके लिये मानवकी मूल प्रवृत्तियोंके स्वरूपोंका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। मनमें जो प्रवृत्तियाँ जन्मजात हैं वे तो किसी-न-किसी मात्रामें अवश्य वर्तमान रहेंगी। उनसे आप छुटकारा केवल दो प्रकारसे पा सकते हैं। प्रथम तो यदि आप देवता बन जायँ तब और दूसरे

जब आप उनका शोध (Sublimation) कर दें तब। प्रथम कार्य तो बहुत कठिन है; किंतु यदि हम चाहें तो दूसरे रूपको अपनी सहायतामें ले सकते हैं। यदि हम कुछ मनोवैज्ञानिक साधनोंको कार्यरूपमें परिणत करें तो अवश्य ही हमें अन्तर्द्वन्द्वसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

कोई भी मूल प्रवृत्ति न अपने-आपमें अच्छी ही है या बुरी ही। जैसे पानीका स्वाद न तो मीठा ही कहा जा सकता है, न कड़ुवा; इसी प्रकार मनुष्यकी किसी भी मूल प्रवृत्तिको न तो निन्दनीय कहा जा सकता है न प्रशंसनीय। ये प्रत्येक जीवमें स्वाभाविक हैं। फ्रायड महोदयका कथन है कि इन पाशविक प्रवृत्तियोंका दमन सम्भव नहीं है। यदि दमन किया तो दबी वासना बड़े-बड़े जटिल रोग उत्पन्न कर देती है। अनेक सांकेतिक चेष्टाएँ, व्यर्थ प्रलाप, अन्तर्द्वन्द्व इत्यादि इन दबी हुई वासनाओंके प्रकाशित होनेके लिये ही हुआ करती हैं।

अतः जब कोई मूल प्रवृत्ति प्रकट होना चाहे, तब लोक-मर्यादाकी रक्षा करते हुए उसे प्रकाशित होनेका अवसर प्रदान करना चाहिये। निन्दनीय समझकर दबानेकी चेष्टाका भयंकर परिणाम हो सकता है। यद्यपि इस सिद्धान्तका बड़े-बड़े मनीषियोंने खण्डन किया है और वह युक्तियुक्त भी है, तथापि इस सिद्धान्तको मान लें तो हमें उसे प्रकट होनेके उपाय सोचने चाहिये और उन्हें किसी दूसरे रूपमें प्रकाशित करनेमें शीघ्रता करनी चाहिये। ऐसा करनेसे हमारा अन्तर्द्वन्द्व विभिन्न प्रवृत्तियोंसे सामंजस्य प्राप्त कर लेगा और मन शान्त हो जायगा।

दबी हुई वासनाएँ गान-विद्यामें खूब प्रकाशित होती हैं। अनेक व्यक्ति पढ़-लिखकर अपनी वासनाओंका शोध किया करते हैं। बच्चोंको पढ़ाने-लिखाने, उनके साथ हँसने-खेलने, लोरी देनेमें; पूजा-पाठ, मन्त्रोच्चारण, मन्दिरमें निवास करनेसे, प्राकृतिक रमणीय स्थानोंका निरीक्षण करनेसे, टहलनेसे, पशु-समाजसे मित्रता स्थापित करनेसे, चित्रपट देखनेसे, खेतीबारी-फुलवारी इत्यादिमें हलका कार्य करनेसे मनका संस्कार होता है। प्राणायाम, व्यायाम तथा कुम्भक इत्यादि क्रियाएँ योगियोंकी मूल प्रवृत्तियोंका शोध करती हैं। उपवाससे पाशविक प्रवृत्तियोंका दमन होता है। कुछ व्यक्ति तन-मनसे अपने कार्यमें लिप्त होकर इच्छाको तृप्त कर लेते हैं।

चिर यौवन

इस कुत्सित कल्पनाने—'अमुक अवस्थाके उपरान्त मनुष्यकी ढलती अवस्था प्रारम्भ हो जाती है, जीवनके परमाणु कम हो जाते हैं अथवा निस्तेज होकर बिखरने लगते हैं। बुझा हुआ दिल, गिरा हुआ मन, तेजहीन मुख और शक्तिहीन शरीर—इनमें बुढ़ापा आ घेरता है। उसकी इच्छा, अभिलाषा, उत्साह, उद्योग और पुरुषार्थका ह्रास होने लगता है और जीवनके प्रत्येक भागमें अकर्मण्यताका राज्य छा जाता है—साथ ही रोग, निर्बलता, जड़ता, निरुत्साह आदि मृत्युके पूर्वचिह्न दिखायी देने लगते हैं और वह क्रमशः किसी अज्ञात लोकका पथिक बन बैठता है।'—सचमुच मानव-समाजका बड़ा नाश किया है।

जिन डरपोक व्यक्तियोंमें जीवनशक्ति नहीं है, जिस जीवनमें पुरुषार्थ और सामर्थ्य नहीं है, जिनके हृदयकमलपर चिन्तारूपी कीड़ा लग चुका है, वे जीवनको व्यर्थ, मूल्यहीन अथवा नगण्य समझेंगे ही। ये ही लोग दूसरोंको भी मृत्युके मुखमें ढकेलते हैं। जीते हुए ये मृतक प्राणी मानवताके भयंकर शत्रु हैं।

यदि हम इस प्रकारके संकीर्ण, अन्धकारमय, निराशाजनक विचारोंका रोना रोते रहेंगे, यौवनरूपी कौमुदीको असमय ही बुढ़ापेके काले-काले बादलोंसे ढाँक देंगे, वृद्धावस्थाके कुविचारोंको आत्माके किसी कोनेमें स्थान दे देंगे, कमनसीबी, फूटे-भाग्य और रोगोंकी कल्पनाओंमें विहार करते रहेंगे, जईफ़ी के स्वप्न दिन-रात देखा करेंगे, तो निश्चय ही बुढ़ापेकी ओर बढ़ेंगे, बूढ़े होने लगेंगे और बूढ़े हो जायँगे। जैसी हमारी हार्दिक इच्छा होगी, जैसे हमारे विचार होंगे, जैसी हमारी मानसिक अभिलाषाएँ होंगी, हम वैसे ही बनते जायँगे। यदि हम मनको गिरती हुई शक्तियोंकी ओर लगायेंगे, बुढ़ापेके दुःखदायी विचारोंके पंजेमें फँसा देंगे तो फल निश्चय ही अत्यन्त कष्टकर होगा। हमारा प्रत्येक मानसिक भाव, जो उत्थान, उन्नति, उत्साह और यौवनकी मधुर कल्पनाओंसे बिछुड़कर किसी अनर्थके साथ जुड़ा है, बुढ़ापा, आलस्य, प्रमाद, शैथिल्य ही उत्पन्न करेगा। वह कार्यशक्ति और मानसिक दृढ़ताको पंगु कर देगा, महत्त्वाकांक्षाको नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा और शीघ्र ही हमें यमराजके घरका अतिथि बना देगा।

प्रिय पाठक! आनन्दकन्दके इस आनन्द-जगत्में बुढ़ापा-जैसी कोई वस्तु नहीं। आपका शरीर काफी दिनतक रहनेवाला है। आप सत्य हैं, असत्य या पानीके बुलबुलेकी तरह क्षणिक नहीं। आप इच्छानुसार जितने दिन चाहें, जीवित रह सकते हैं। आयुकी मर्यादाका आधार शरीरकी बनावटपर निर्भर है। जिस कालमें शरीर सुदृढ़, बलवान्, नीरोग एवं चिन्तामुक्त रहता है, उस कालमें आयु भी लम्बी होती है। अतः यदि आप शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करें तो पिछले पाँच सौ वर्षोंमें मनुष्यकी आयुकी जो मर्यादा रही है, उसे निश्चय ही पा सकते हैं।

यौवन वास्तवमें किसी आयुविशेषका नाम नहीं। हम यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि अमुक वर्षमें मनुष्यके यौवनका सूर्यास्त हो जायगा और बुढ़ापेके बादल आ घेरेंगे। यौवन तो स्वास्थ्य और बलका दूसरा नाम है। जवानी जिन्दादिली, उत्साह और महत्त्वाकांक्षाको कहते हैं। यदि ऐसा न होता तो आज हम बीस-बीस वर्षके बूढ़े और साठ-साठ वर्षके जवान न देखते।

याद रखिये, जबतक आपमें रस, रुधिर, मांस, वसा, अस्थि, मज्जा और वीर्य—ये सप्त धातुएँ पर्याप्त मात्रामें विद्यमान हैं, जबतक ये सातों बढ़तीपर हैं या कम नहीं होतीं, जबतक ये सभी तत्त्व आपके भोजनसे पुष्टि पा रहे हैं और आप किसी अस्वाभाविक या अप्राकृतिक रीतिसे इन्हें फिजूल खर्च नहीं कर रहे हैं—तबतक आपकी आयु चाहे कुछ भी क्यों न हो, आपको युवक बनाये रखनेमें पूर्ण समर्थ है। आधि-व्याधि आपके पास आनेका साहस नहीं कर सकतीं।

इन सातों धातुओंका बल ४० वर्षतक बढ़ता है। यह अवस्था शरीरके सब धातुओंको पूर्णता पहुँचाती है। मैकफैडन (Bernarr Macfadden) साहबका तो यह कहना है कि 'जीवन ५० वर्षके उपरान्त प्रारम्भ होता है, (life begins after fifty) प्रत्येक प्राणीके शरीरकी पूरी बाढ़ होनेमें जितना समय लगता है, उससे पाँचगुनी उसकी आयु होती है।' अतः जो व्यक्ति अपने प्रारम्भिक जीवनके पैंतीस या चालीस वर्षतक ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करेगा वह अवश्य १२५ वर्ष जीवित रहेगा। प्रिय पाठक! यौवन, स्वास्थ्य और दीर्घजीवनके लिये आजसे अभीसे प्रतिज्ञा कीजिये कि आप ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करेंगे। ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठासे आपको अमित बल, तेज और शान्ति प्राप्त होगी। धैर्य, साहस, ओज, मनोबल—सभी कुछ वीर्यके अन्तर्गत

आ जाते हैं। वीर्यलाभसे आपकी समस्त गुप्त शक्तियोंका विकास होगा और आप एक बार पुनः सजीव और चैतन्यमय हो सकेंगे। वीर्यवान् साधु पुरुष ही युवक, बलवान्, आरोग्यवान् और भाग्यवान् हो सकता है।

वही व्यक्ति अधिक दिनोंतक जीता है जो शरीर और मस्तिष्ककी समान (Harmonious) उन्नति करता है। यदि आप मानसिक परिश्रम करते हैं, अपना अधिकांश समय पठन-पाठन, अध्ययन, हिसाब-किताब इत्यादिमें व्यतीत करते हैं तो यौवनके लिये आपको शारीरिक श्रम अवश्य करना होगा। यदि आप दिनभर शारीरिक मेहनत करते हैं तो कुछ समय आपको मस्तिष्ककी उन्नतिके लिये जरूर देना होगा। गाढ़ी नींद सोनेके लिये शारीरिक परिश्रम अत्यन्त आवश्यक है, किंतु मीठी नींद सोनेके लिये शान्त, पुष्ट और निर्भय मस्तिष्क अनिवार्य है। इन दोनोंका समावेश पर्याप्त मात्रामें नियमितरूपसे कीजिये।

यौवन बनाये रखनेके लिये एक दिन भी व्यायाममें नागा न होनी चाहिये। नियमितरूपसे रोज शुद्ध ताजी हवामें सामर्थ्यानुसार व्यायाम कीजिये। दीर्घ श्वासोच्छ्वास, यौगिक आसन या अंग्रेजी व्यायाम हो सके तो थोड़ा-थोड़ा सभीका अभ्यास करें। टहलना, दौड़ना, तैरना, खेलना, हँसना भी अपने-अपने स्थानपर कम महत्त्व नहीं रखते। दीर्घायुके लिये अल्पाहारी होना पड़ेगा। मिर्च-मसाला, मादक तथा उत्तेजक राजसी आहारको त्यागकर साधारण भोजनमें दूध, फल, साग, सब्जीकी मात्रा बढ़ाइये। हर एकादशीको व्रत करना अत्यन्त गुणकारी है। स्वास्थ्यपर जितने ग्रन्थ पा सकें उनसे अवश्य लाभ उठाइये। सादा और पवित्र जीवन बिताने, शाकाहारी बनने, प्रकृतिकी शरणमें जानेपर जरूर आपको यौवन मिलेगा।

शारीरिकके साथ मानसिक स्वास्थ्यपर भी यथेष्ट ध्यान दीजिये। जितने प्रकारके भाव मनमें उठते हैं, सबका अच्छा या बुरा प्रभाव धमनियोंपर पड़ता है। क्रोध, घृणा, भय, ईर्ष्या गुप्तरूपसे अत्यन्त विषैला प्रभाव शरीरपर करते हैं और समय पाकर नाना प्रकारकी बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत उदारता, विश्वास, आशा और प्रेमका असर स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक तथा लाभप्रद होता है। सबसे प्रेम करना सीखिये। जीवनमें जो कुछ मिठास है प्रेमके ही कारण। इसीसे भगवान् प्रेमके अवतार कहलाते हैं। यौवनके लिये हमें प्रेमसिद्धि अवश्य करनी होगी। हमारे अंदर प्रेमका जो

अंकुर है उसे खिलनेका अवसर जरूर मिलना चाहिये। प्रेमकी बाढ़को रोकिये नहीं, बल्कि विवेक, बुद्धि, धर्मभावना और कर्तव्यको सामने रखकर जैसे बने उसे रास्ता दीजिये।

सदा-सर्वदा प्रसन्नचित्त, संतुष्ट, शान्त और घोर आशावादी बने रहिये। बीती हुई बातोंके लिये न तो अधिक दिनतक पश्चात्ताप कीजिये, न भविष्यके लिये चिन्ता और भय। 'हम कायर हैं, दुर्बल, रोगी या मूर्ख हैं, कमनसीब हैं—हमारा भाग्य फूट गया—दैव हमारे प्रतिकूल है'—इस प्रकारके अन्धकारमय निराशाजनक विचार कभी मनमें न आने दीजिये। कभी एक क्षण भी मनमें इस विचारको स्थान न दीजिये कि हम बीमार हैं, बूढ़े हैं या कमजोर हैं—क्योंकि बुढ़ापा, बीमारी या कमजोरी विचारोंके ही फल हैं। हमेशा अपने उज्ज्वल भविष्यपर भरोसा रखकर आत्मविश्वास एवं पूर्ण निश्चयसे कहिये—'मुझमें दुर्बलता नहीं, रोग नहीं, बुढ़ापा नहीं। मुझे मृत्युका डर नहीं। निकृष्टता, दीनता, निर्बलता, आधि-व्याधिसे मेरा कोई सरोकार नहीं।

प्रिय पाठक! यदि आप अक्षय यौवनका सुख लूटना चाहते हैं तो सदैव यौवनके दिव्य प्रवाहको मनमें बहाते रहिये। ऐसा आचरण रखिये कि आपकी मानसिक प्रेरणा विजय, वृद्धि, उन्नति और उच्चताके लिये स्फुरित हुआ करे। आत्माको सुखके, आनन्दके, संतोषके मीठे समुद्रमें हिलोरें लिवाते रहिये। बालकोंपर प्रेम, प्राकृतिक सौन्दर्यके प्रेम, विश्वप्रेम, विशुद्ध संगीतप्रेम, सच्ची भक्ति, परमार्थके काम, कसरत, मानसिक शुद्धता, कामकाजी जीवन और जीवनके सुखमय पहलुओंपर विचार करनेसे जवानी बनी रहती है।

यदि हम हमेशा यौवनके उच्चादर्शको सम्मुख रख उसकी प्राप्तिके लिये उत्साहपूर्वक प्रयत्न करें तो बुढ़ापा हमसे अवश्य दूर रहेगा। जबतक हमारे जीवनमें माधुर्य है, उत्साह और आशाका कमल खिला है, महत्त्वाकांक्षाका सुखद राज्य है और खूनमें कार्यशक्तिका प्रवाह बहता है—तबतक कौन हमें बूढ़ा कह सकता है?

मानवताके तीन शत्रु—हरी (Hurry), वरी (Worry), करी (Curry)

मनुष्यके शरीरमें प्राय: प्रत्येक रोगके कीटाणु बीजरूपसे वर्तमान हैं। दवाइयोंके किसी सूचीपत्रको लेकर बैठ जाइये और एकके बाद एक तरह-तरहके रोगोंकी भयानकता, उनके लक्षण तथा बचनेके उपाय आपको मालूम होंगे। आपकी मानसिक परिधिमें ये लक्षण स्थायीरूपसे जड़ पकड़ने लगेंगे और प्राय: हरेक लक्षणको पढ़ते समय आपके दिमागमें यही आयेगा कि 'हम प्रत्येक रोगसे पीड़ित हैं। उनके कारण हम अपने शरीरमें शिथिलताका अनुभव कर रहे हैं; उन्हींकी वजहसे हम अपना कार्य पूरी तरह नहीं कर पा रहे हैं; उन्हींके कारण हमें चिन्ता, दुःख और क्लेश हैं।' यह मनुष्यके अन्तःकरणमें रहनेवाली संदिग्ध वृत्तिका कुपरिणाम है। मनुष्य अपने विचारोंके प्रभावसे नष्ट होता या श्रेष्ठ बनता है। रोगोंका विचार, उनकी कुकल्पनामें निरन्तर रमण, मरनेका भय—मनुष्यको रोगग्रस्त कर देता है। रोगोंसे भरे इस मानव-जीवनमें अनेक रोग ऐसे हैं, जिनसे तनिक-सी चेष्टा और मनोवृत्ति-मात्रसे मनुष्य चाहे तो बच सकता है। हरी, वरी, करी ऐसे ही भंयकर रोग हैं जो मनुष्यका जीवन चाट जाते हैं, खून पी डालते हैं और उसे दीन-दुनिया कहींका भी नहीं छोड़ते।

हरी (Hurry) अर्थात् जल्दबाजीका ज्वर सबसे भयानक होता है, यह न केवल हर कामको उचित रीतिसे करनेमें ही बाधक होता है अपितु मनुष्यकी बुद्धि, बल और सम्मानका भी क्षय करता है। जल्दीका काम शैतानका होता है। जिस-जिस जगह, जिस-जिस क्षेत्रमें, जिस-जिस अवसरपर आप जल्दबाजी करेंगे, काम बिगड़ेगा। दैनिक व्यवहारसे लेकर ऊँचे-से-ऊँचे क्षेत्रमें जल्दबाजी उस पैरमें बँधी चक्कीके समान होगी जो उसे दिन-प्रति-दिन अवनतिके गहरे गड्ढेमें गिराती जायगी। हड़बड़, घबराहट, उतावलापन, अधीरता इन सब स्थितियोंके अन्तरमें भय छिपा है। भय मानवताका सबसे बड़ा शत्रु है। इसीके कारण अव्यवस्था और अनिश्चयात्मकता उत्पन्न होती है। कहते हैं कि महाराणा प्रतापको मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए किसी बातपर इतना दुःख न हुआ था जितना अपने पुत्र

अमरसिंहकी उतावलीपर। यूरोपके एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञके विषयमें भी एक ऐसी ही घटना प्रसिद्ध है, जिससे पता लगता है कि वह जल्दबाजीसे कैसा चिढ़ता था। उसने कुछ धर्म-सम्बन्धी पत्र लिखे थे और कह रखा था कि 'मेरे मरनेके बाद इन्हें पोपके पास भिजवा देना।' मरते समय लोगोंने पूछा, 'क्या ये कागज पोपके पास भेज दिये जायँ?' उसने कहा, 'नहीं कलतक ठहरो। मैंने अपने जीवनभरमें उतावली कभी न करनेका नियम कर लिया है। मेरे सब काम ठीक समयपर होने चाहिये।'

याद रखिये क्रम और व्यवस्था मानव-जीवनकी सफलताके मूलमन्त्र हैं। प्रातः सोकर उठनेसे रात्रिमें सोनेतक आपका प्रत्येक कार्य सुचारुरूपसे होना चाहिये। जीवनमें सुव्यवस्था लाइये। यह नहीं कि उठनेमें आलस्य कर गये। फिर टहलना, दातुन, व्यायाम, स्नान या भोजन करनेमें जल्दी की। हड़बड़ाते हुए खाना खाया—खाया क्या बिना कुचले जल्दी-जल्दी निगल गये। दफ्तरमें देरसे पहुँचे, जल्दीमें वहाँ गलती-पर-गलती की। रोनी सूरत लिये घर आये और भाग्यको कोसते रहे या घरवालोंपर गुस्सा उतारा और फिर झगड़ते-झगड़ाते सोने चले।

वरी (Worry) अर्थात् चिन्ता मानवताका सबसे भयंकर शत्रु है। चिता और चिन्तामें केवल एक बिन्दुका अन्तर है। यदि चिता मृतक शरीरको जलाती है तो चिन्ता जीते-जी मनुष्यको दग्ध कर देती है। बहुत-सी बातें जिनकी आप चिन्ता करते हैं अनहोनी हैं; और यदि कोई ऐसी बात है जो जीवनमें अवश्य होगी तो उसके लिये भी फिक्र करनेसे क्या लाभ? फिक्रसे फाका अच्छा है। एच० जी० वेल्सका कहना है, 'भयकी गर्जना उसके द्वारा की हुई क्षतिसे अधिक भयानक है।' (Bark of danger is more fearful than its bite) डरकर आप अपनी शक्तियोंको कुण्ठित कर बैठते हैं। उस कुभावनाकी पूर्तिके लिये उपयुक्त वातावरण उपस्थित कर देते हैं और फिर उस बातसे बचना असम्भव-सा हो जाता है। यदि आप बीमारीसे डरेंगे, तो याद रखिये आप अवश्य बीमारीके शिकार हो जायँगे। यदि दरिद्रतासे डरेंगे, तो दरिद्रता हाथ धोकर आपके पीछे पड़ेगी और यदि आप मृत्युसे डरेंगे तो यमदूतोंके आनेमें कुछ संदेह न समझिये। व्यर्थकी चिन्ता छोड़िये। जबतक हृदयसे भयकी भावना न जाय, हठपूर्वक प्रबल वेगसे पुनः-पुनः चेष्टा कीजिये। आपकी चेष्टा कभी निष्फल न होगी, आपका अवश्य उद्धार होगा।

आप सदा-सर्वदा सुखी, नीरोग, निश्चिन्त, निर्भय, लक्ष्मीपति होनेके विचार मनमें भरिये; सुख, समृद्धि, शान्ति, आरोग्यता, निर्भयता आदिका संचार कीजिये। प्रातः उठते ही और रात्रिमें सोते समय मनमें कहिये, 'मैं पूर्ण निर्भय, निःशंक और निष्पाप हूँ। मैं पूर्ण वीर्यवान् एवं पूर्ण भाग्यवान् हूँ। कोई मुझे डरा नहीं सकता। मेरी शक्ति अनन्त है। मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ, अब मैं पहलेसे आरोग्य हूँ, अधिक निर्भय हूँ, अधिक शान्त हूँ, अधिक निर्विकारी हूँ।'

करी (Curry) अर्थात् मसाले भी हमारे जानी दुश्मन हैं। हम जैसा भोजन करते हैं, वैसी ही बुद्धिवाले बन जाते हैं। लोगोंके दिमाग आजकल आसमानपर चढ़े हैं। जबतक तरह-तरहके मसालोंसे भरा साग न हो, टुकड़ा न तोड़ेंगे। दिनमें चार-पाँच आने चाट-पकौड़ीकी भेंट जरूर होनी चाहिये। याद रखिये, मसाले बहुत उत्तेजक होते हैं। दिन-रात चटपटी, मसालेदार, खट्टी चीजें खानेसे अँतड़ियाँ निर्बल हो जाती हैं, पाचन-क्रिया मन्द पड़ जाती है और भूख कभी खुलकर नहीं लगती। लाल मिर्च ब्रह्मचर्यके लिये प्रत्यक्ष काल ही है। मसालेदार भोजनसे वीर्य उछल पड़ता है और आयु कम होती है। अतः जिन्हें वीर्यकी रक्षा करनी हो उन्हें चाहिये कि वे मिठाई, खटाई, मिर्च-मसालेसे सर्वदा बचे रहें। सदैव सस्ता, सादा, स्वच्छ और स्वल्प भोजन किया करें। धीरे-धीरे कम करके आप इनका सर्वथा त्याग कर सकते हैं।

अपनी भलाईके लिये इन तीनों भयानक शत्रुओंसे कुश्ती लड़िये। इनसे डरिये नहीं, जहाँ डरे कि मरे। परमात्मामें पूर्ण विश्वास लाकर साहसपूर्वक इनका सामना कीजिये।

प्रशंसकसे सावधान

तुम्हारी प्रशंसा कर अपना काम निकाल ले जानेवालोंकी कमी नहीं है। स्वयं तुम भी उनसे अपनी तारीफ सुनकर मद-मस्त हो जाते हो, प्रसन्नतामें फूल उठते हो, नीर-क्षीर-विवेक विलुप्त कर बैठते हो। प्रशंसकको गले लगाते हो, किंतु तुम यह विस्मृत कर बैठते हो कि तनिक-सी प्रशंसामें बह जाना तुम्हारी एक मानसिक निर्बलता है।

आजके युगमें लोग दो ही इच्छाओंकी पूर्तिके हेतु एड़ी-चोटीका पसीना एक करते हुए प्रतीत होते हैं—प्रथम रुपया, दूसरी प्रशंसा। बड़े-बड़े नेता, त्यागी, महात्मा, विद्वान्, वक्ता, लेखक, दानी, दार्शनिक—जिसे भी देखिये वह प्रशंसा या सम्मान चाहता है। सम्मान-प्राप्तिके लिये वह जो कहो, वही कर डालनेको तैयार रहता है। विद्वान् चाहे आर्थिक सम्पन्नताकी कामना न करे, किंतु भूखे पेट रह तथा फटे वस्त्र पहनकर भी वह अपनी प्रशंसा अवश्य चाहता है। वह चाहे और सब छोड़ दे, प्रशंसाकी भूखको नहीं छोड़ पाता।

प्रशंसा सुनकर हमारा 'अहम्' तृप्त होता है। हम मद-मस्त हो उठते हैं और अंदर-ही-अंदर अपनी महत्ताका अनुभव करते हैं। अहम्-तृप्तिसे मनुष्य अपनी निर्बलताओंको आँखोंसे ओझल करनेका विफल प्रयत्न करता है। दूसरेके द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर भले ही हम अपनी दुर्बलताओंके प्रति वीतराग हो जायँ, अपने-आपको लाख अच्छा समझें, किंतु निर्बलताएँ तो ज्यों-की-त्यों रहेंगी ही। प्रशंसासे हम थोड़ी देर कल्पनाके सुखद जगत्में विचरण कर लें; किंतु संसार और समाजकी कटुता और कठोरतासे हम आँखें नहीं मूँद सकते।

आप निरन्तर मिलते-जुलते अपने प्रशंसकोंकी संख्या बढ़ानेमें व्यस्त हैं। भिन्न-भिन्न अवसरोंपर आप उन्हें उपहार भेजते हैं, दावतें देते हैं, मुबारिकबाद देकर प्रसन्न करनेकी चेष्टा करते हैं, किंतु आपको यह ज्ञात नहीं कि प्रशंसाकी भित्ति कमजोर बालूपर खड़ी होती है। अवसर अटकनेपर सब छोड़ भागते हैं। जबतक आप प्रतिष्ठित पदपर आसीन हैं, दूसरोंके आपसे दस छोटे-बड़े कार्य सम्पन्न होते हैं, रुपया-पैसा या अधिकार आपके पास है, तभीतक प्रशंसक आपके साथ हैं।

प्रशंसा मनुष्यकी कार्य-शक्तियोंको पंगु कर उसे छोटी-सी प्राप्तिमें तुष्टि दे देती है। वह सस्ती प्रसिद्धिसे संतुष्ट होकर मजबूतीसे आगे नहीं बढ़ता। जो जितना कमजोर और उथला होता है वह उतनी ही आसानीसे प्रशंसासे

विजित हो जाता है। प्रशंसा एक प्रकारका झूठा आवरण है।

प्रशंसा एक झूठा माया-जाल है। इसमें फँसकर मनुष्य अपना सही रूप नहीं देख पाता। यह वह शीशा है, जिसमें मनुष्यको अपने-सा बड़ा प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। वह अपने विषयमें बड़े ऊँचे मंसूबे बाँधता है, अपनेको बड़ा अमीर, बुद्धिमान्, वक्ता, विवेकवान् या सुन्दर समझता है जब कि असली बात उलटी ही होती है। प्रशंसासे सबसे बड़ी हानि वास्तविकतासे दूर हट जाना, अपनी असलियतको, कमजोरियों या दुर्बलताओंको भूल जाना है।

अध्यात्म-जगत्में प्रशंसा, मान, आदरकी भूख एक प्रकारका मद है। प्रशंसा करनेवालेसे प्रेम करना तथा निन्दा करने या आलोचना करनेवालेसे घृणा या उसका तिरस्कार करना—ये दोनों ही विवेकको सीमाके अतिक्रमण हैं। वास्तविकता इनके मध्यमें स्थित है। हमें उचित तो यह है कि प्रशंसा और निन्दामें अपना मानसिक संतुलन (Mental balance) बनाये रखें और अपने जीवनको समुन्नत करने, उन्नत बनानेवाले सुझावोंको ग्रहण कर लें, चाहे वे प्रशंसकसे आयें अथवा आलोचकसे प्राप्त हों।

आध्यात्मिक व्यक्ति न प्रशंसामें फूलता है, न निन्दामें निराश होकर आत्महत्या करता है। वह अपनी इस कमजोरीसे दूसरोंको अनुचित लाभ नहीं उठाने देता। वह अच्छी तरह जानता है कि उथले, ओछे व्यक्ति ही प्रशंसकोंसे घिरे रहते हैं; ऐसे व्यक्ति ही हानि पहुँचाते हैं। कुछ व्यक्ति प्रशंसामें इतने घिर जाते हैं कि भविष्यमें उन्नति नहीं करते। आध्यात्मिक व्यक्ति निरन्तर आगे बढ़ता है। सस्ती प्रसिद्धिसे उसे घृणा होती है। वह जो क्षेत्र चुनता है, उसीमें अपनी समस्त विद्या-बुद्धि लगाता चलता है। चाहे उसे प्रशंसाकी मिठाई प्राप्त न हो। वह प्रशंसासे ऊँचा रहता है। उसकी प्रेरणा बाह्य थोथे व्यक्तियोंमें न होकर अन्तरमें होती है। वह अपनी आत्मतुष्टिके हेतु कार्यमें संलग्न होता है। गोस्वामी तुलसीदास, भक्त कवि सूर, राजरानी मीराँ, गुरु नानक, संत कबीर, महात्मा दादूको कभी यह चिन्ता नहीं रही कि कोई उनकी प्रशंसा करता भी है अथवा नहीं, कोई उनकी रचनाएँ पढ़ता है या तिरस्कार करता है। वे तो निरन्तर अन्तःप्रेरणासे शान्तिपूर्वक सधैर्य साहित्य-साधना करते रहे। हम ऐसे व्यक्तियोंको आध्यात्मिक व्यक्ति कहेंगे, जिन्हें न प्रशंसाकी भूख है, न निन्दासे निराश होनेकी कायरता। प्रशंसाके अभावमें वे कभी विचलित नहीं हुए। मीराँ अनेक निन्दाओंके बावजूद दृढ़तासे भक्ति और काव्य-जगत्में आगे बढ़ती रहीं।

आत्मसंयमका अभ्यास कीजिये

मनुष्यका सुख संसारकी बाह्य वस्तुओं, नाना विलास-सामग्रियों, गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, सुस्वादु भोजन अथवा वासनातृप्तिमें नहीं है। बाह्यमुखी व्यक्ति नाना आकर्षक वस्तुओंमें मृगतृष्णाकी भाँति सुखकी अतृप्त लालसाओंमें भटकता रहता है। मनुष्यका मन तो महाचंचल है। वृक्षकी डालोंपर कूदते हुए बंदरकी भाँति सुखकी एक वस्तुसे दूसरी फिर तीसरी-चौथी वस्तुपर फुदकता-कूदता रहता है। अन्तमें मनुष्य अस्त-व्यस्त हो भ्रमित हो जाता है। आत्मसंयमके अभावमें मनुष्य निरा पशु है।

सुखका साधन अपनी वृत्तियोंको अन्तर्मुखी करना है। शान्ति और सुखकी जड़ मनुष्यके हृदयमें है। बाह्य संसारमें सुख-शान्तिकी खोज करना मृगतृष्णामात्र है। जबतक आपका मन संयमित होकर स्वयं अपने अधिकारमें नहीं आता, तबतक कोई साधना सम्भव नहीं है।

विचारोंमें आत्मसंयम

सर्वप्रथम विचार-संयम प्रारम्भ कीजिये। आपके मनमें जो-जो विचार आते हैं, उन्हें ध्यानसे परखिये। वे कैसे हैं? उनकी प्रवृत्ति किस ओर है? वे किस तरफ प्रवाहित होते रहते हैं। कहीं उनकी प्रवृत्ति वासनाकी ओर तो नहीं है? अधिकांश साधक वासनासे आकृष्ट होकर अपना संयम भंग कर बैठते हैं। वासना नाना आकर्षक रूप बनाकर उनके सम्मुख आ उपस्थित होती है। देखिये, आपके विचार वासनाके पंकसे तो नहीं सने हुए हैं?

विचार-संयममें ध्यान रखनेयोग्य प्रथम तत्त्व यही है कि आप केवल अपने हितके सात्त्विक, पवित्र एवं उच्च प्रकारके सृजनात्मक विचारोंमें ही रमण करें। निराशाके सब विचार, वासनासे सने गंदे विचार, दूसरोंकी निकृष्ट आलोचना, चुगली या क्षुद्र प्रलोभनोंके घातक विचार सर्वथा त्याज्य हैं। जबतक आपके विचारोंका प्रवाह शुद्ध नहीं होता, आप द्वन्द्वोंमें फँसे तड़पा करेंगे।

शुद्ध विचारसे मन, वचन, इन्द्रियाँ शान्त रहती हैं, क्योंकि शुद्धता पवित्र ईश्वरीय गुण है। जो विचार किसीके अहित, प्रतिशोध, हानि अथवा स्वार्थसिद्धिके हेतु किया जाता है, वह ऐसे घातक भाव उत्पन्न करता है कि स्वयं सोचनेवालेकी बड़ी हानि हो जाती है।

अच्छे विचार ही मनमें आने दीजिये और इन्हींको दूसरोंके कल्याण एवं प्रेरणाके हेतु प्रसारित कीजिये। सद्विचारोंके शुभ्र वातावरणमें रहनेसे मनुष्य अपनी बुद्धिका विकास उचित रीतिसे कर पाता है। आपके विचार अधर्मोंका उद्धार करें, पीड़ितोंको सान्त्वना दें और शोकाकुलोंको आशावान् बनायें।

अनुभवोंमें आत्मसंयम

अनुभवोंमें आत्मसंयम कीजिये, अर्थात् आप उन्हीं अनुभवोंको स्मृति-पटलपर आने दीजिये जो आपके भावी जीवन, उत्थान, प्रगति तथा विकासके लिये हितकर हों, जिनसे आपको सत् प्रेरणा और उत्साह प्राप्त हो।

सुखद उत्साहवर्द्धक अनुभवोंको याद करनेसे भावी जीवनके लिये प्रेरणा प्राप्त होती है। यदि आप अपनी गलतियोंको यादकर रोते रहेंगे तो आपका विकास अवरुद्ध हो जायगा और आपका व्यक्तित्व निर्बल पड़ता जायगा।

आपके प्रत्येक अनुभवके साथ एक पूरा दृश्य, जीवनका एक अंग संयुक्त रहता है। यदि आप आशावान् अनुभवोंको स्मरण करेंगे तो आपको आगेके लिये शक्ति और प्रेरणा प्राप्त होगी, आप हृष्ट-पुष्ट अनुभव करेंगे, आपका भोजन सहज ही पच जायगा। सफलता एक ऐसा उत्साहवर्द्धक शब्द है कि वह चाहे छोटी-सी ही क्यों न हो, अपनी सफलताका नाम सुनकर या अनुभवोंको स्मरणकर हमें अतिशय आनन्द प्राप्त होता है, ध्यानमें उत्साह और एकाग्रता प्राप्त होती है, आगे बढ़कर कार्य करनेमें आह्लाद मिलता है।

सफलताकी प्रत्येक स्मृति आपकी अमूल्य निधि है। अपनी सफलताके जितने छोटे-बड़े अनुभवोंको आप एकत्रित कर सकते हैं, वास्तवमें आप उतने ही धनी हैं। आपका यह राज्य असीमित, यह सम्पत्ति प्रचुर होनी चाहिये।

प्रत्येक गलती आपके भावी जीवनको सुधारने तथा आगे आनेवाले जीवनको समुन्नत बनानेवाली होनी चाहिये। अपनी गलतियोंको भावी जीवनका पथ-प्रदर्शक, निर्माता और आकाश-दीप बनाइये।

रहन-सहनमें आत्मसंयम

आज आप एक व्यक्तिको अपनेसे सुन्दर वस्त्र पहने देखते हैं और लुभा जाते हैं। आप भी अपने वस्त्र त्यागकर वैसे ही वस्त्रोंकी ओर दौड़ते हैं। दूसरेको किसी नये ढंगका भोजन करते देख, स्वयं भी बिना उचित-अनुचित

विचारे, वैसा ही खानेका उद्योग करते हैं। दूसरोंकी टीपटाप देख स्वयं भी उनका अन्धानुकरण करते हैं। भोजन, शृंगार, रहन-सहन, आचरण-व्यवहार और रीति-रिवाजका अन्ध-अनुकरण करना विशृंखलित मनका प्रतीक है। यह छिछोरेपनकी निशानी है। अस्थिर एवं चंचल-वृत्तिके दास ही ऐसा अनुकरण करते हैं।

कहीं आप भी ऐसे थोथे, बनावटी दिखावेसे परिपूर्ण कृत्रिम जीवनमें तो नहीं फँस गये हैं? दूसरोंका अनुकरण आपकी अशान्त और अस्थिर चित्तवृत्तिका दुष्परिणाम है। उसमें अपनी कोई मौलिकता नहीं है।

कभी भोजन, आकर्षक वस्त्र, सिनेमाके दृश्य, वासनाजन्य आनन्द, तो कभी शृंगार, स्वार्थ, आर्थिक प्रलोभन आपके आत्मसंयमको निर्बल करते हैं। इन सब विघ्न-बाधाओंसे सदा सतर्क रहनेकी आवश्यकता है। जीवनमें सफलता प्राप्त करनी है तो मनको एक स्थानपर केन्द्रित करनेका अभ्यास कीजिये।

तन्द्रा एवं आलस्य

आलस्यमें पड़कर आपका मन कठिन और दुरूह कार्योंपर एकाग्र नहीं होता। जहाँ कुछ शुष्क, पर आवश्यक कार्य सम्मुख आया कि आप तन्द्रा एवं आलस्यमें डूब गये! यह स्थिति आलसी मनकी द्योतक है।

आत्मविश्लेषणद्वारा आपको अपने मनकी अनेक त्रुटियाँ प्रतीत होंगी। कभी कोई दुःख-कलह सम्मुख आयेगा तो कभी कठोर कर्तव्यपालनमें मन पिछड़ता हुआ अनुभव होगा। संयमी व्यक्ति दृढ़तासे मनको एक उद्देश्यपर एकाग्र करता है और उसे यत्र-तत्र भटकने नहीं देता।

जब कर्तव्यपालन अथवा शुभ कार्य—जैसे प्रातःकालीन टहलना, तड़के उठना, शौचादिसे निवृत्ति, पूजन, प्रार्थना अथवा दैनिक कार्यक्रम आदिमें आलस्यका भाव उपस्थित हो तो तुरंत उससे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो जाइये। तुरंत शय्या त्यागकर कर्मरत हो जाइये। निद्रा, मैथुन अथवा क्षुधामें आत्मसंयमका सर्वाधिक महत्त्व है; क्योंकि ये तीनों वृत्तियाँ जितनी बढ़ायी जायँ, उतनी ही बढ़ती जाती हैं। आप इनके वशमें न रहकर इनपर विवेकद्वारा शासन कीजिये।

व्यसन मनुष्यकी सबसे मीठी कमजोरी है। मीठी इसलिये कि मनुष्य

जानते-बूझते इनमें निमग्न हो अपना विनाश करता है। कौन नहीं जानता कि शराब पीना बुरा है? कौन तम्बाकू, पान-बीड़ी, सिगरेट इत्यादिके दूषित विषोंसे अपरिचित है? कौन नहीं जानता कि विषय-वासना मृत्युको आमन्त्रित करनेका एक ढंग है? लेकिन खेदका विषय है, अधिकांश व्यक्ति इनमें फँसते और अपना सर्वनाश करते हैं।

यहाँ आत्मसंयम जीवन-उद्धारक महौषध बन जाता है। यदि प्रारम्भसे ही हम अपनी मर्यादाओंका ध्यान रखें तो इन व्यसनोंसे अमूल्य जीवन-सम्पदाकी रक्षा कर सकते हैं।

भाग्यशाली आत्माओ! अपनी दुष्प्रवृत्तियोंको कुचलकर सत्पथपर चलिये और अपने जीवनमें ईश्वरत्व प्रकट कीजिये। क्षुद्र 'अहम्' को मारिये। वासनाओंको विवेकसे दग्ध कर डालिये। इनपर विजयी होनेमें धर्मभावना बड़े महत्त्वकी भावना है! इन्हें आप अधर्म समझकर छोड़िये। जहाँ पाप, मिथ्याचार और अमर्यादा है, वहाँ धर्म नहीं है। जहाँ विवेक है, सत्य है, वहीं धर्माचरण है।

आत्मसंयमीमें विवेकशक्ति (नीर-क्षीर पृथक् करनेकी शक्ति) जाग्रत् रहती है। वस्तुतः वह अच्छे-बुरेमें सूक्ष्म विवेक कर क्षणिक लाभमें निरत नहीं रहता। वह एक ओर उत्तेजनासे बचता है तो दूसरी ओर अति भावुकतासे सँभलता है। प्रलोभनों, व्यसनों और दुर्बलताओंसे विवेक सदैव उसकी रक्षा करता है।

विवेक हमें सदैव आत्मसंयमकी ओर जागरूक रखता है। विवेकके मूर्तिमान् प्रतीक भगवान् श्रीराम थे, जो राज्यका ऐश्वर्य त्यागकर वनमें असंख्य कष्टोंको सहते रहे और अपनी वासनाओं तथा मनोवृत्तियोंपर शासन करते रहे। उनकी समस्त इच्छाएँ केवल विवेक-शक्तिके अधीन थीं।

अपने जीवनमें आत्म-नियन्त्रणपर विशेष ध्यान दें। विलासिता, ऐय्याशी, फैशन-परस्ती, नशाखोरी, उच्छृंखलता आदि ऐसे विषैले आकर्षण हैं जो मनुष्यका नाश कर देते हैं। अतः आत्मनियन्त्रणद्वारा इन दुष्टोंसे बचे रहें और अपने शुभ संकल्पोंपर दृढ़ रहें।

आत्मसंयमसे मनुष्यकी बल-बुद्धिकी वृद्धि होती है। वह विपत्तियोंपर विजय प्राप्त करता है और आनन्द तथा कष्टोंमें सम-भाव धारण करता है। आत्मनियन्त्रणमें साधनाका प्रारम्भ एवं अन्त दोनों ही हैं।

जीवन एक खुली पुस्तक-जैसा होना चाहिये

जो-जो बातें हम दूसरोंकी दृष्टिसे बचाते हैं या जिन विचारोंका उच्चारण करते हुए हम शंकित—प्रकम्पित होते हैं, उसका कारण यह है कि स्वयं हमारा अन्त:करण उन्हें तुच्छ और घृणित समझता है और उनका तिरस्कार करता है। हम लोकनिन्दाके भयसे उन तुच्छ वासनाओं, गलत योजनाओं और पाशविक वृत्तियोंको दूसरोंके समक्ष प्रस्तुत करनेमें आत्म-ग्लानिका अनुभव करते हैं।

हमारे गुप्त मनमें ऐसी अनेक पाशविक दुष्प्रवृत्तियाँ छिपी रहती हैं, जो गंदा वातावरण पाकर एकाएक उत्तेजित हो उठती हैं और हमें आश्चर्य होता है कि हम कैसे इतने पतित हो गये कि इतने निम्नस्तरपर उतर आये।

आश्चर्य यह है कि हम कैसे उन निन्द्य वासनाओंके चंगुलमें फँस जाते हैं, जिन्हें हमारा अन्त:करण बुरा कहता है? हम इतने उच्च नैतिक सांस्कृतिक स्तरपर होते हुए भी वस्तुतः क्यों पशुत्वकी कोटिपर आ जाते हैं?

वास्तवमें प्रत्येक मनमें उच्चतम दैवी गुणों एवं निन्द्यतम दानवी पशुवत् वासनाओंके बीज पड़े रहते हैं। प्रकृति सभी प्रकारके गुण मानव-मनमें छोटे रूपमें यत्र-तत्र छिपाये रहती है। जैसा वातावरण मिलता है, समयानुसार वैसा ही गुण जाग्रत् और विकसित हो उठता है। यदि हम अपने सद्‌गुणोंको प्रोत्साहित करते रहें तो दुर्गुण स्वयं फीके पड़ जाते हैं। सतत सदुद्योगों, सद्‌विचारों और सद्‌भावनाओंमें निवास करनेसे कुवासनाएँ नष्ट हो जाती हैं।

आप यदि किसी विचार, कार्य या वचनको लज्जाजनक और घृणित मानते हैं तो उसका परित्याग क्यों नहीं कर देते? आपके मुँहमें दाँत खराब हो जाता है, कीड़ा उसे खोखला कर डालता है। जबतक आप उसे डॉक्टरसे निकलवा नहीं देते, तबतक चैन नहीं पाते। आपके बाल बढ़ जाते हैं, उन्हें जबतक नाई काट नहीं देता, आपका मन बेचैन रहता है। बदनमें जब गंदगी एकत्रित हो जाती है तो आप स्नानके बिना अशान्त रहते हैं। इसी प्रकार यदि आप किसी विचार, कार्य या वचनको तुच्छ, घृणित और गंदा समझते हैं, तो उसे क्यों नहीं बाहर फेंक देते? गंदा विचार किसी-न-किसी दिन आपका भयंकर पतन करनेवाला है। कूड़े-करकटकी तरह मनका झाड़ू लगाते समय इसे बाहर निकाल फेंकनेमें ही आपका मानसिक स्वास्थ्य सुरक्षित रह सकता है।

जो विचार बुरा है, उसका उच्चारण या कार्यरूपमें परिणत करना तो निन्द्य है ही, उसे मनमें रखना, किसी मस्तिष्क-रन्ध्रमें पनपने देना उससे भी अधिक लज्जाजनक है।

मनुष्यका अन्त:करण दैवी तत्त्वसे परिपूर्ण है। परमेश्वरकी सत्ता वहींसे हमें सत्पथपर अग्रसर किया करती है। आत्माकी आवाज हमें सदा विवेकमय पथपर चलानेवाली है। हमें इसी ध्वनिके अनुसार कार्य करना चाहिये। जो शक्ति आपको मनमें गंदा विचार न रखनेकी प्रेरणा देती है, वह यही अन्तरात्मा है।

आप अपने जीवनको दुराव-छिपावसे दूर रखिये। आपका जीवन एक ऐसी खुली पुस्तक होना चाहिये जिसका प्रत्येक पृष्ठ खुला हुआ हो, जिसकी प्रत्येक पंक्ति स्पष्ट पढ़ी जा सके। उसका एक-एक शब्द साफ-साफ हो। जिस व्यक्तिका जीवन स्पष्ट रूपसे पढ़ा, समझा और साफ-साफ देखा जा सके, जिसमें छिपानेयोग्य कुछ शेष ही न रह जाय, वही अनुकरणीय है।

जैसे ही आपका मन किसी बातको दूसरोंसे छिपानेको करे तो सावधान हो जाइये। जिसका तिरस्कार आपकी आत्मा करती है, वह त्याज्य है।

जिस दृष्टिकोण या विचारधाराको दूसरोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए आपको लज्जा या हिचक नहीं प्रतीत होती, उसे करनेमें कोई पाप नहीं। छिपानेकी प्रवृत्ति चोरीकी दुष्प्रवृत्ति है। इस गंदे मार्गसे सदैव जागरूक रहिये। वही कीजिये जिसे करनेमें आपको अपने अन्त:करणका हनन नहीं करना पड़ता।

जीवनका मितव्यय

यदि आप रात्रिमें दस बजे सोकर प्रातः सात बजे उठते हैं तो एक बार जरा पाँच बजे भी उठकर देखिये। अर्थात् व्यर्थकी निद्रा एवं आलस्यसे दो घंटे बचा लीजिये। चालीस वर्षकी आयुतक भी यदि आप सात बजेके स्थानपर पाँच बजे उठते रहें तो निश्चय जानिये दो घंटेके इस साधारण-से अन्तरसे आपकी आयुके दस वर्ष और जीनेके लिये मिल जायँगे।

नित्यप्रति हमारा कितना जीवन व्यर्थके कार्यों, गपशप, निद्रा तथा आलस्यमें अनजाने ही विनष्ट हो जाता है, हम कभी इसकी गिनती नहीं करते। आजकल आप जिससे कोई कार्य करनेको कहें, वही कहेगा, 'जी, अवकाश नहीं मिलता। कामका इतना आधिक्य है कि दम मारनेकी फुरसत नहीं है। प्रातःसे सायंतक गधेकी तरह जुते रहते हैं कि स्वाध्याय, भजन, कीर्तन, पूजन, सद्ग्रन्थावलोकन इत्यादिके लिये समय ही नहीं बचता।'

इन्हीं महोदयके जीवनके क्षणोंका यदि लेखा-जोखा तैयार किया जाय तो उसमें कई घंटे आत्मसुधार एवं व्यक्तित्वके विकासके हेतु निकल सकते हैं। आठ घंटे जीविकाके साधन जुटाने तथा सात घंटे निद्रा-आराम इत्यादिके निकाल देनेपर भी नौ घंटे शेष रहते हैं। इनमेंसे एक-दो घंटा मनोरंजन, व्यायाम, टहलने इत्यादिके लिये निकाल देनेपर छः घंटेका समय ऐसा शेष रहता है जिसमें मनुष्य परिश्रम कर पर्याप्त आत्म-विकास कर सकता है, कहीं-से-कहीं पहुँच सकता है।

यदि हम सतर्कतापूर्वक यह ध्यान रखें कि हमारा जीवन व्यर्थके कार्यों या आलस्यमें नष्ट हो रहा है और हम उसका उचित सदुपयोग कर सकते हैं तो निश्चय जानिये हमें अनेक उपयोगी कार्योंके लिये खुला समय प्राप्त हो सकता है।

आजके मनुष्यका एक प्रधान शत्रु आलस्य है। तनिक-सा कार्य करनेपर ही वह ऐसी मनोभावना बना लेता है कि 'अब मैं थक गया हूँ; मैंने बहुत काम कर लिया है। अब थोड़ी देर विश्राम या मनोरंजन कर लूँ।' ऐसी मानसिक निर्बलताका विचार मनमें आते ही वह शय्यापर लेट जाता है अथवा सिनेमामें जा पहुँचता है या सैरको निकल जाता है और मित्र-मण्डलीमें व्यर्थकी गपशप करता है।

यदि आधुनिक मानव अपनी कुशाग्रता, तीव्रता, कुशलता और विकासका घमंड करता है तो उसे यह भी स्मरण रखना चाहिये कि समयकी इतनी बरबादी पहले कभी नहीं की गयी। कठोर एकाग्रतावाले कार्योंसे वह दूर भागता है। विद्यार्थीसमुदाय कठिन और गम्भीर विषयोंसे भागते हैं। यह भी आलस्यजन्य विकारका एक रूप है। वे श्रम कम करते हैं, विश्राम और मनोरंजन अधिक चाहते हैं। स्कूल-कॉलेजमें पाँच घंटे रहेंगे तो उसकी चर्चा सर्वत्र करते फिरेंगे; किंतु उन्नीस घंटे जो समय नष्ट करेंगे, उसका कहीं जिक्रतक न करेंगे। यह जीवनका अपव्यय है।

व्यापारियोंको लीजिये। बड़े-बड़े शहरोंके उन दूकानदारोंको छोड़ दीजिये, जो वास्तवमें व्यस्त हैं। अधिकांश व्यापारी बैठे रहते हैं और चाहें तो सोकर समय नष्ट करनेके स्थानपर कोई पुस्तक पढ़ सकते हैं और ज्ञानवर्धन कर सकते हैं; रात्रि-स्कूलोंमें सम्मिलित हो सकते हैं; मन्दिरोंमें पूजन-भजनके लिये जा सकते हैं, सत्संग-स्वाध्याय कर सकते हैं। प्राइवेट परीक्षाओंमें बैठ सकते हैं। निरर्थक कार्यों—जैसे व्यर्थकी गपशप, मित्रोंके साथ इधर-उधर घूमना-फिरना, सिनेमा, अधिक सोना, देरसे जागना, हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना—से बच सकते हैं।

दिन-रातके चौबीस घंटे रोज बीतते हैं, आगे भी बीतते जायँगे। असंख्य व्यक्तियोंके जीवन बीतते जाते हैं। यदि हम मनमें दृढ़तापूर्वक यह ठान लें कि हमें अपने दिनसे सबसे अधिक लाभ उठाना है, प्रत्येक क्षणका सर्वाधिक सुन्दर तरीकेसे उपयोग करना है तो कई गुना लाभ उठा सकते हैं।

जो व्यक्ति अपनी आयका प्रारम्भिक बजट बनाकर खर्च करता है, वह प्रत्येक रुपये, इकन्नी और पैसेसे अधिकतम लाभ निकालता है। इसी प्रकार दैनिक कार्यक्रम बनाकर समयको व्यय करनेवाला जीवनके प्रत्येक क्षणका अधिकतम लाभ उठाता और आत्म-विकास करता है।

प्रत्येक क्षण जो हम व्यय करते हैं, अन्तिमरूपसे व्यय कर डालते हैं, वह वापस लौटकर आनेवाला नहीं है। जब मृत्यु समीप आती है तो हमें जीवनके दो-चार क्षणोंका ही बड़ा मूल्य लगता है। यदि हम विवेकपूर्ण रीतिसे अपने उत्तरदायित्व और जिम्मेदारियोंको धीरे-धीरे समाप्त करते चलें तो हम जीवनमें इतना कार्य कर सकते हैं कि हमें उसपर गर्व हो।

क्या आप जीन जेक रूसो नामक विद्वान्‌के जीवनके सदुपयोगकी कहानी

जानते हैं? वह कहारका कार्य करते-करते फालतू समयके परिश्रमसे विद्वान् बना था। दिनभर रोटीके लिये परिश्रम करता और रात्रिमें पढ़ता था। एक व्यक्तिने उससे पूछा—'आपने किस स्कूलमें शिक्षा पायी है?' रूसोने कहा—'मैंने विपत्तिकी पाठशालामें सब कुछ सीखा है।' यह कहार दिनभर सख्त मेहनतकी रोटी कमाता और बचे हुए समयमें पढ़कर धुरन्धर शास्त्रकार बन गया। हम भी यह कर सकते हैं।

समयके अपव्ययके पश्चात् हम भाव, विचार, वासना, उत्तेजना आदि अनेक रूपोंसे जीवनका अपव्यय किया करते हैं। दुर्भाव न केवल दूसरोंके लिये हानिकर हैं वरं स्वयं हमें बड़ी हानि पहुँचा जाते हैं। एक बारका किया हुआ क्रोध दूसरोंपर तो बादमें प्रभाव डालता है, पहले तो हमारे रक्तको विषैला और स्वभावको चिड़चिड़ा बना डालता है, पाचन-क्रियाको शिथिल कर डालता है, बहुत देरतक सम्पूर्ण शरीर थरथराता रहता है। यदि हम वासनाको नियन्त्रणमें रखकर वीर्यसंचय करें, तो जीवनमें जीवाणु-तत्त्व, पौरुष, बल, बुद्धिकी वृद्धि हो सकती है। व्यर्थ जो वीर्य नष्ट किया जाता है, वह जीवनका अपव्यय ही है।

घृणित विचार, क्षणिक उत्तेजना, आवेश हमारी जीवनी-शक्तिके अपव्ययके अनेक रूप हैं। जिस प्रकार काले धुएँसे मकान काला पड़ जाता है, उसी प्रकार स्वार्थ, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, मद, मत्सरके कुत्सित विचारोंसे मनोमन्दिर काला पड़ जाता है। हमें चाहिये कि इन घातक मनोविकारोंसे अपनेको सदा सुरक्षित रखें। गंदे, ओछे विचार रखनेवाले व्यक्तियोंसे बचते रहें। वासनाको उत्तेजित करनेवाले स्थानोंपर कदापि न जायँ, गंदा साहित्य कदापि न पढ़ें। अभक्ष्य पदार्थोंका उपयोग सर्वथा त्याग दें।

शान्त चित्तसे एकान्त स्थानपर बैठकर ब्रह्मचिन्तन, प्रार्थना, पूजा इत्यादि नियमपूर्वक किया करें। आत्माके गुणोंका विकास करें। सच्चे आध्यात्मिक व्यक्तिमें प्रेम, ईमानदारी, सत्यता, उदारता, दया, श्रद्धा, भक्ति और उत्साह आदि स्थायीरूपसे होने चाहिये। दीर्घकालीन अभ्यास तथा सतत शुभचिन्तन एवं सत्संगसे इन दिव्य गुणोंकी अभिवृद्धि होती है।

अपने जीवनका सदुपयोग कीजिये। स्वयं विकसित होइये तथा दूसरोंको अपनी सेवा, प्रेम, ज्ञानसे आत्म-पथपर अग्रसर कीजिये। दूसरोंको देनेसे आपके ज्ञानकी संचित पूँजीमें अभिवृद्धि होती है।

हमारे जीवनका उद्देश्य भगवत्प्राप्ति या मुक्ति-प्राप्ति है। परमेश्वर बीजरूपसे हमारे अन्तरात्मामें स्थित हैं। हृदयको राग-द्वेष आदि मानसिक शत्रुओं, सांसारिक प्रपंचों, व्यर्थके वितण्डावाद, उद्वेगकारक बातोंसे बचाकर ईश्वर-चिन्तनमें लगाना चाहिये। दैनिक जीवनको उत्तरदायित्व-पूर्ण करनेके उपरान्त भी हममेंसे प्रायः सभी ईश्वरको प्राप्तकर ब्रह्मानन्द लूट सकते हैं—

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्॥

मानवकी कुशलता, बुद्धिमत्ता सांसारिक क्षणिक नश्वर भोगोंके एकत्रित करनेमें न होकर अविनाशी और अमृतस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्तिमें है।

सब ओरसे समय बचाइये; व्यर्थके कार्योंमें जीवन-जैसी अमूल्य निधिको नष्ट न कीजिये, वरं उच्च चिन्तन, मनन, ईशपूजनमें लगाइये। सदैव परोपकारमें निरत रहिये। दूसरोंकी सेवा, सहायता एवं उपकारसे हम परमेश्वरको प्रसन्न करते हैं।

आत्मालोचन

हम प्राय: दूसरोंकी आलोचना करते हुए, उनकी गलतियाँ बताते हुए तथा भाँति-भाँतिकी टीका-टिप्पणियाँ करते नहीं थकते। कुछ व्यक्ति तो विशेषरूपसे परच्छिद्रान्वेषणद्वारा दूसरोंके प्रति अपनी ईर्ष्या प्रकट करते हैं। यह एक प्रकारका मानसिक रोग है।

आध्यात्मिक उन्नति, जगत्‌में प्रगति तथा उच्चपदकी प्राप्तिका मार्ग ही दूसरा है। वह मार्ग है—आत्मालोचनका; अर्थात् स्वयं अपनी आलोचना करना तथा अपने दुर्गुणोंको दूर करना। अमितगताचार्यने सैकड़ों वर्षों पूर्व एक बड़ी उपयोगी बात कही थी—

विनिन्दनालोचनगर्हणार्है
मनोवच:कायकषायनिर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदु:खकारणं
भिषग् विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम्॥

अर्थात् 'जिस प्रकार वैद्य मन्त्रके द्वारा विषको दूर करता है, उसी प्रकार मैं सांसारिक दु:खोंके उत्पन्न करनेवाले अपने पापोंका विनाश करता हूँ। उन पापोंका, जिनका निर्माण मेरे वचन, शरीर और हार्दिक मलोंद्वारा हुआ है। अपने उन दोषोंकी मैं बुराई करता हूँ, आलोचना करता हूँ और घोर निन्दा करता हूँ।'

यदि हम दूसरोंकी—समाज, संस्थाओं, परिस्थितियों, ऊपरी विषयों, निकटस्थ समाजके दैनिक जीवन-सम्बन्धी व्यर्थकी आलोचनाओंके स्थानपर स्वयं अपने चरित्रकी आलोचना करें तो उन्नतिका मार्ग खुल सकता है।

कौन ऐसा व्यक्ति है, जो हर दृष्टिसे पूर्ण है? किसमें पूर्ण परिपक्वता है? यदि आप गम्भीरता और सचाईसे देखें तो आपको विदित होगा कि आपके पास और कामोंसे भी महत्त्वपूर्ण कार्य करनेको शेष है। वह कार्य संसारके अन्य सब कामोंसे उच्च और पवित्र है। वह है—आत्मनिर्माण। आत्मनिर्माणकी पहली सीढ़ी यह है कि मनुष्य चुन-चुनकर अपने चरित्रकी निर्बलताओंको निकाल दे। अपनी कमजोरियोंके प्रति निरन्तर जागरूक बना रहे।

जिस किसानके खेतमें अनावश्यक घास-फूँस उत्पन्न हो जाता है, उसकी

खेती चौपट हो जाती है। जिस व्यक्तिकी साधारण-सी बीमारीकी चिकित्सा नहीं की जाती, वह अन्तमें मृत्युको प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने दोषों, कमजोरियों, स्वभावकी दुष्प्रवृत्तियोंका उन्मूलन कर उन्हें नष्ट नहीं करता, वह पतनके ढालू मार्गपर जा रहा है।

आपका घर जल रहा है तो क्या आप अपने घरकी अग्नि बुझानेके स्थानपर दूसरेके जलते घरको देखकर संतुष्ट होंगे। आपको स्वयं अपनी ही निर्बलतारूपी अग्नि दूर करनी है। जहाँ स्वयं अपनेमें कमजोरियाँ भरी हैं, वहाँ केवल दूसरेकी त्रुटियोंको देखकर अपने-आप निश्चेष्ट बने रहना कहाँकी बुद्धिमत्ता है?

जो व्यक्ति अपनी वृत्तियोंको अन्तर्मुखी कर अपनी सच्ची आलोचना करता और अपनी बुराइयोंको दूर करनेका सतत उद्योग करता है, वह महानताके मार्गपर आरूढ़ है। अपनी निर्बलताओंके प्रति जागरूक होना आधी विजय प्राप्त करना है। बुरे विचार, दूसरोंके प्रति ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोधके भाव अन्धकारकी वस्तु हैं। परच्छिद्रान्वेषण करनेसे हम धीरे-धीरे चिन्ता, व्यग्रता, निन्दा, अधैर्य, अविनय, चंचलता, असंतोष, उद्वेग, निराशा, हृदयक्षोभ, चिड़चिड़ापन इत्यादि मानसिक विकारोंके पंजेमें फँस जाते हैं। एक बार वैसा स्वभाव बन जानेपर हमारा आभ्यन्तरिक ईश्वरका अंश मलिन पड़ जाता है। अपने दोषोंको मनुष्य निष्पक्ष नेत्रोंसे तथा सावधानीसे बहुत कम देखता है। हमारे अंदर अपने 'अहम्' की भावना इतनी तीव्र होती है कि हम अपने बड़प्पनमें भूले रहते हैं। जो आत्मपरिष्कारकी इच्छा रखते हैं, उन्हें दोष भी यथार्थ दीखते हैं। अतएव निष्पक्षभावसे आत्मालोचन करनेसे ही यथार्थ उन्नति हो सकती है।

अपना शिवत्व जाग्रत् रखें!

वैज्ञानिक हमें सूचित करते हैं कि यदि सृष्टिके सूक्ष्म कणोंको परस्पर मिलाने, जोड़ने या संयुक्त करनेवाली शक्ति (Cohesive force) न होती तो हमारी सृष्टि विघटित होकर छोटे-छोटे टुकड़ोंमें विभक्त हो गयी होती। सृष्टिका अन्त आ गया होता। परमेश्वरने ऐसी शक्तिका निर्माण किया है जो सृष्टिको बीजरूपसे संयुक्त किये हुए है। जड पदार्थोंमें ही नहीं, परस्पर जोड़नेवाली इस शक्तिका अस्तित्व प्राणि-जगत्में भी है। प्राणि-जगत्को परस्पर एक सूत्रमें सम्बद्ध करनेवाली शक्ति एक प्रेम है। प्रेमके दैवी नियमके अनुसार भिन्न-भिन्न प्राणी परस्पर एक-दूसरेके संनिकट आते हैं; सामाजिक प्रेममय जीवन व्यतीत करते हैं और सुखी रहते हैं। प्रेमके पश्चात् दूसरी महान् शक्तिका नाम है शिवत्व अर्थात् कल्याणके उच्चस्तरपर उठना, परोपकार-रत रहना, दूसरोंको ऊँचा उठाना, सेवा-सहायता कर मानवताके स्तरको श्रेष्ठता एवं पूर्णताकी ओर ले जाना है। जहाँ शिवत्व है, वहीं उन्नतिकी ओर प्रगति है। जहाँ कुटिलता है, वहीं अवनति है। शिवत्व मानवमात्रको सज्जनता और भलाईसे परस्पर संयुक्त करनेवाली विवेकजनित शक्ति है।

मनुष्यने महाविध्वंसकारी एटम बम, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन बमोंका आविष्कार किया है, जिसके क्रूर प्रयोगके द्वारा सृष्टिके बृहत् भागका नाश हो सकता है, जीव-जन्तुके अतिरिक्त पर्वततक विलीन हो सकते हैं, पृथ्वीका विशाल भाग नष्ट किया जा सकता है, समुद्रका जल खौल सकता है और समस्त विश्व समाप्त किया जा सकता है; परंतु ऐसा नहीं हुआ, विश्व मौजूद है। इसका कारण यह है कि विध्वंसात्मक विरोधी शक्तियोंकी अपेक्षा दैवी सृजनात्मक शक्तियाँ अधिक हैं। दूसरे शब्दोंमें घृणा, हिंसा, द्वेष, स्वार्थ, वासनाकी अपेक्षा मनुष्यका प्रेम, सत्य, शिवत्व अधिक हैं। देवत्व अधिक है। वह असुरत्वको दबाता रहा है। आसुरी सम्पदा दैवी सम्पदासे सदा हारती रही है। मनुष्यमें बुराईकी अपेक्षा अच्छाई अधिक है।

मानव-भूमिपर शिवत्वकी जिस दिन कमी हो जायगी, उसी दिनसे विश्व क्षीण होना प्रारम्भ हो जायगा। सम्भव है, कुछ व्यक्तियोंमें असुरत्व उग्र हो उठा हो, किंतु शिवत्वका प्राधान्य रखनेवाले महापुरुषोंका आधिक्य है। शिवत्वके आधारपर मानव-जगत् आधारित है।

आजके स्वार्थ-ईर्ष्यामय संसारमें प्रत्येक मनुष्यका उत्तरदायित्व बढ़ गया है। यदि हम विश्वको सुखकर, शान्तिपूर्ण एवं आनन्दमय बनाना चाहते हैं तो हममेंसे प्रत्येकको अपने व्यक्तित्वके शिवत्व (पर-हित)-की वृद्धि करनी चाहिये। अर्थात् यथासम्भव अपने संकल्पों एवं कार्योंकी सुघड़ता, उच्चता एवं सदाशयतासे जगत्‌में शिवत्वका प्रसार करना चाहिये।

व्यक्तियोंसे समाज, समाजसे देश और देशसे विश्वभरमें शिवत्वका प्रसार हो सकता है। एक-एक व्यक्ति स्वयं अच्छे समुन्नत बननेका प्रयत्न करे तो उसके सम्पर्कमें आनेवाले अन्य व्यक्ति भी अनुकरणद्वारा सदाशयता ग्रहण कर सकते हैं। आप स्वयं अपने शिवत्वका विकास करनेको कटिबद्ध हो जायँ तो जगत्‌की वाटिकामें एक ऐसे वृक्षके समान उपयोगी हो सकते हैं, जिसकी शीतल छायामें अन्य व्यक्तियोंकी शुभ वृत्तियाँ विकसित और प्रेरित हों। संगका मनोवैज्ञानिक प्रभाव होता है। शुभ वृत्तियोंवाले व्यक्तिके सम्पर्कमें मनुष्यका देवत्व विकसित होता है। अत: स्वयं आप शिवत्वका व्रत ग्रहणकर न केवल अपना उद्धार करते हैं; वरं विश्वको मंगलमय बनानेमें भी प्रचुर सहायता प्रदान करते हैं।

शिवत्व धारण करनेवाला व्यक्ति तृष्णाजनित स्वार्थ, थोथे ममत्व एवं निकृष्ट वासनासे दूर रहता है। वह अपने लिये नहीं, दूसरोंकी भलाईके लिये जीवित रहता है। स्वयं उसका चरित्र एवं आत्मविकास दूसरोंके लिये अनुकरणीय होते हैं। उसके आत्म-भावका दायरा अति विस्तृत होता है और जाति, धर्म, सम्प्रदाय या सामाजिक स्थितिके बन्धन उसके लिये कोई अर्थ नहीं रखते।

आप शिवकी उपासना करते हैं। शिवलिंगपर पुष्प, बेलपत्र तथा नैवेद्य अर्पित करते हैं, पर क्या आप शिवजीके महत्त्वको समझते हैं? क्या आप शिवत्वको अपने जीवनमें उतारते हैं? क्या आपका जीवन उन सिद्धान्तोंपर चल रहा है जिसके शिव प्रवर्तक थे?

शिवजीका समग्र जीवन बुराईका नाश और भलाईकी स्थापनाके लिये है। उन्होंने मानवमात्रके कल्याणके लिये अपने कण्ठमें विष धारण किया और वे नीलकण्ठ कहलाये। दैत्य एवं राक्षसोंका दमन किया और शिवत्वकी स्थापना की। इसी प्रकार विश्वव्याप्त हिंसा, ईर्ष्या, स्वार्थ, ममत्व, वासना, तृष्णाके विषको निगलकर संसारके कल्याणके हेतु प्रेम, सौहार्द, सेवा,

सहानुभूति, दया, त्यागका प्रचार-प्रसार कर आप भी जीते-जागते शिव बन सकते हैं। सदाशयताकी मधुर मुसकान मुखपर धारण कर सकते हैं। दूसरोंका अन्धकारमय पथ अपने आत्मज्ञानसे आलोकित कर सकते हैं।

आत्माओ! संसारमें अपने देवत्वका प्रसार करो। सज्जनताका प्रकाश फैलाओ। भय और चिन्तासे प्रकम्पित विश्वमें विश्वास, पारस्परिक सौहार्द और बन्धुत्वकी शीतलता छिड़को। सर्वत्र आत्मभावकी रश्मियोंको बिखेरते रहो। तुम्हारा जीवन मानव ही नहीं, समस्त जीवमात्रके कल्याण, सेवा, सहायताके लिये ध्रुवतारा हो सकता है।

आपके मनमें शिवत्व हो अर्थात् आप स्वयं अपने तथा दूसरोंके लिये शुभ सात्त्विक मति धारण करें, सबका भला, सबकी उन्नति, स्वास्थ्य, कुशलता, मंगलमय भविष्यके शुभ विचारोंसे परिपूर्ण रहें। किसीके लिये भी अहितकर विचार मन:प्रदेशमें प्रविष्ट न होने दें। मनसे किसीका बुरा न चाहें। किसीके विरोधमें आया हुआ दुष्ट विचार न केवल दूसरोंके लिये, स्वयं आपके लिये भी विषैला है। दूसरेको हानि पहुँचानेसे पूर्व वह आपको घातक मानसिक विषसे भर देता है। आपका अणु-अणु घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, प्रतिशोधसे उद्विग्न हो उठता है। प्रतिक्षण एक अग्नि हृदयप्रदेशमें जलती रहती है। शिवत्व धारण करनेसे मन स्वस्थ और शीतल रहता है। विवेक संतुलित मानसिक अवस्थामें ही कार्य करता है।

अपने वचनमें शिवत्व प्रकाशित करें। मुखसे कोई ऐसा वाक्य या शब्द न उच्चारण करें जिससे अपना या दूसरेका अहित हो सकता हो। वचनका संयम प्रत्येक साधकके लिये महत्त्वपूर्ण है। आप जो कुछ उच्चारण करते हैं, उसका प्रभाव समस्त समाजपर पड़ता है। वचन आपको समाजसे संयुक्त करता है। बोले हुए शब्दकी तरंगें विश्वभरमें व्याप्त हो जाती हैं। उनसे अनेक मानवसमुदाय प्रभावित होते हैं। अत: अपशब्दका उच्चारण कर अपने-आपको कलंकित, लांछित न कीजिये। जो व्यक्ति दैनिक व्यवहारमें वासनासम्बन्धी अश्लील गालियोंका उच्चारण करते हैं, वे समाजका बड़ा अपकार करते हैं। एक तो वासनाके प्रति जीवका आकर्षण स्वयं ही होता है, दूसरे ये गंदी गालियाँ अपरिपक्व शिशुओंपर अपना गुप्त प्रभाव डालती हैं। उनके मन विषैले विचारोंसे भरकर पापकी ओर उन्मुख होते हैं। समाजमें जो अनाचार, अश्लीलता, गंदगी, वासनाका नग्न ताण्डव फैला हुआ है, उसका कारण

सिनेमाके गंदे गीत हैं, जो प्राय: रेडियो अथवा अविवेकी मूर्खोंद्वारा गा-गाकर प्रचलित हो रहे हैं। आप वाणीके इस पापसे बचें। जिह्वापर संयम रखकर शुभ भाव प्रकट करें; दूसरोंको अच्छे संकेत ही दें; उनकी उन्नतिके लिये सृजनात्मक आलोचना ही करें; आत्मभावके विकासमें सहायक हों। अपने वचनोंद्वारा दूसरोंका आदर, संतोष, महानता देनेसे आप स्वयं बदलेमें इन्हीं दैवी सम्पदाओंको प्राप्त करते हैं।

मनके संयमका तो आप स्वयं ही अनुभव करते हैं; किंतु वचनका संयम समाजका भला करनेवाला है। आप जो शब्द मुखसे निकालें, उनकी सत्यता, निर्मलता और उपादेयतापर विचार करके ही उच्चारण करें। आपके वचनोंसे कटु सत्य भी मधुर होकर निकले, जिससे दूसरा उसे ग्रहण कर ले और अपना भला कर सके। झूठी प्रशंसा, दिखावा, चुगली, असत्य भाषणसे सदा सावधान रहें। ये आपके शिवत्वका ह्रास करनेवाले शत्रु हैं।

तीसरी साधना कर्ममें शिवत्व है। आपके कार्य शिवतत्त्वसे परिपूर्ण हों। आपके हाथ-पाँवोंद्वारा किये गये कर्मोंसे समस्त मानवताका भला होता रहे। इस प्रकार मन, वचन, कर्मद्वारा अपने आचरणमें शिवत्वकी साधना करते चलें। अपना शिवत्व जाग्रत् रखें!

उपकार करनेकी शक्तिका प्रयोग करें

'हमारी योग्यता और हमारे हृदयसे यदि कोई अधिकारी पुरुष उचित माँग पेश करता है तो उसे देनेमें ही बुद्धिमानी है। निरन्तर देते रहो; क्योंकि पहले या पीछे तुम्हें अपना ऋण बराबर चुकाना पड़ेगा। थोड़े समयके लिये तुम्हारे न्यायपथके बीचमें मनुष्य या घटनाएँ भले ही बाधक सिद्ध हों, पर टालना थोड़े ही समयके लिये होगा। अन्तमें तुम्हें कर्ज बराबर चुकाना पड़ेगा। अगर तुम बुद्धिमान् हो तो तुम ऐसे वैभवसे डरोगे, जो तुम्हारे सिरपर और भी बोझस्वरूप बन जाय।

उपकार ही प्रकृतिका लक्ष्य है, पर जितने अधिक तुम उपकृत होते हो, उतना ही अधिक तुमपर टैक्स लगेगा। महापुरुष वही है, जो अधिक-से-अधिक दूसरोंका उपकार करे। वह नीच है—और संसारमें यही एक बड़ी नीचता है कि स्वयं उपकार ग्रहण करते रहना और किसीकी भलाई न करना। प्रकृतिका यह कुछ नियम-सा है कि जो लोग हमारे ऊपर उपकार करते हैं, उनके साथ उपकार करनेका मौका प्रायः हमें मिलता ही नहीं और मिलता भी है तो बहुत कम। लेकिन जो भी उपकार हमारे साथ किया जाय, जो भी लाभ हमें प्राप्त हो, उसे हमें ज्यों-का-त्यों पाई-पाई चुका देना चाहिये, अपने उपकारीको नहीं तो किसी दूसरेको ही।

'सावधान! कहीं तुम्हारे हाथमें उपकार करनेकी बहुत-सी शक्ति यों ही खाली न पड़ी रहे। यह शक्ति खाली पड़ी-पड़ी सड़ जायगी, इसमें कीड़े पड़ जायँगे। किसी-न-किसी ढंगसे इस शक्तिका सदुपयोग करो।'—एमर्सन

एमर्सनके इन शब्दोंमें गहरी सत्यता निहित है। निरन्तर देते रहनेसे मनुष्य न केवल दूसरेका उपकार करता है, प्रत्युत स्वयं अपना भी विकास करता है। मान लीजिये, कोई आपसे श्रमदानकी आकांक्षा करता है। कहता है, 'मुझे पढ़ा दीजिये, अमुक पुस्तक समझा दीजिये—मेरे लिये कुछ लिख दीजिये, मेरा पत्र लिख दीजिये'—तो इन कार्योंको कर देनेसे प्रार्थीका तो भला होता ही है, उसकी आत्मासे निकली हुई आशीर्वादकी वाणी तो आपको प्राप्त होती ही है, साथ ही इन कार्योंमें शक्तियोंका व्यय करनेसे वे स्वभावतः विकसित होती हैं। हम चाहे जान-बूझकर अथवा किसीसे प्रेरित होकर ज्यों ही कार्यमें संलग्न होते हैं, त्यों ही हम अपनी शारीरिक अथवा मानसिक शक्तियोंसे कार्य

लेने लगते हैं। इस अभ्याससे स्वयं हमारा शरीर विकसित होता है और मन प्रसन्न रहता है।

दूसरेके साथ किये गये उपकारसे उत्पन्न प्रसन्न मानसिक मुद्रा, आन्तरिक संतोष एवं आशावादिता ऐसी बहुमूल्य दैवी सम्पदा है, जिसका मूल्य कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। हमारे द्वारा किया हुआ उपकार हमें अमित मानसिक संतोष प्रदान करता है। आत्म-संतोषसे बढ़कर दूसरा आनन्द नहीं। आत्मानन्द ही आनन्दकी सर्वोच्च स्थिति है।

लोकोपकारके लिये किये गये कार्योंके करनेमें हमें दैवी सहायता मिलती है, सतत साथ रहनेवाली दैवी प्रेरणा हमारे साथ रहती है। उन कवियोंकी अमृत वाणीमें अवगाहन कीजिये जिन्होंने '**स्वान्तःसुखाय**' साहित्यमें रस-धारा प्रवाहित की है। तुलसीदासजीके मनमें न अर्थलाभ था, न यशाकांक्षा। भक्तप्रवर सूर काव्य-सृजनको जीविकोपार्जनका माध्यम नहीं बनाना चाहते थे। प्रेमविह्वल मीराबाईकी पीयूषवर्षिणी वाणी केवल आत्म-संतोषके लिये लिखी गयी थी। गुरु नानक, संत कबीर इत्यादि भक्त कवियोंकी कविताका ध्येय परोपकार-वृत्ति ही थी। इस वृत्तिके कारण ही उन्हें निरन्तर दैवी प्रेरणा प्राप्त होती रही, उनकी वाणीमें अपूर्व रस और हृदयको स्पर्श करनेकी शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ, दूर-दूरतक उसका प्रसार हुआ। असंख्य जनताने उसमें निमज्जनकर आत्म-संतोष प्राप्त किया। परोपकारी दृष्टिकोणकी यही विशेषता है कि यह मनुष्यमें गुप्त आत्मबल भर देता है। संसारसे कुछ न पाकर भी परोपकाररत व्यक्ति अपनी आत्मासे सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

परोपकारी वृत्ति जिस क्षेत्रमें प्रवेश करती है, उसीमें अपना चमत्कार प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर देती है। राजनीतिके क्षेत्रमें महात्मा गांधीजीकी ख्यातिके और बहुत-से कारणोंसे परोपकारवृत्तिकी ही प्रधानता है। स्वयं अपने स्वार्थके लिये उन्होंने कुछ नहीं किया, बड़े-बड़े महल, विशाल अट्टालिकाएँ, जमीन, जायदाद कुछ भी एकत्रित न कर वे स्वदेश-सेवा, सत्य-पालन, अहिंसाकी साधनामें संलग्न रहे। जीवनभर दूसरोंको देते रहे। उन्होंने अपना समय, धन, चिन्तन, श्रम, यहाँतक कि शरीरतक देशसेवाको दान दे डाला। इस आत्मसमर्पणका फल यह हुआ कि कुछ न होते हुए भी वे आजतक असंख्य भारतवासियोंके हृदय-सम्राट् बने हुए हैं। जिन व्यक्तियोंने अर्थ, यश या शक्तिकी कामनासे कार्य किये, हम उन्हें विस्मृत कर बैठे हैं।

आधुनिक युगमें विनोबा परोपकारवृत्तिकी एक सजीव प्रतिमा हैं। भू-दान-यज्ञके कार्यको वे परोपकारकी दृष्टिसे कर रहे हैं। स्वयं उनके पास कदाचित् निवासके लिये मकान भी न हो, किंतु अनेक निर्धन, बेघरबारके व्यक्तियोंके लिये उन्होंने भूमि एकत्रित कर दी है। ग्राम-ग्राम वे पैदल भागे फिरते हैं। उनका शरीर दुबला कृशकाय है, फिर भी उसमें दैवी शक्तिका निवास है।

परोपकारी वृत्तिके ऐसे कितने ही उदाहरण हमें इतिहासमें उपलब्ध हो सकते हैं। आज भी वे दैवी आलोकसे द्युतिमान् हैं। ईश्वरीय शक्तिका गुप्त प्रभाव आज भी उनके साथ है।

जो व्यक्ति अपनी परोपकार-वृत्तिका विकास करता है, वह अपने व्यक्तित्वमें दैवी आकर्षण उत्पन्न कर लेता है, जिसका अलक्षित प्रभाव जनतापर गहराईसे स्थायीरूपमें पड़ता है। इस वृत्तिका विकास समय मिलते ही अवश्य करें।

जीवनकी सार्थकताके चार नियम

जेन काऊल नामक विद्वान्‌ने मानव-जीवनकी सुख-समृद्धि एवं आन्तरिक शान्तिकी दृष्टिसे चार बड़े महत्त्वपूर्ण नियमोंका प्रतिपादन किया है। उनका विश्वास है कि इन नियमोंके आधारपर मनुष्य सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है।

उनका प्रथम नियम है 'स्मरण रखो कि आनेवाला कल आजकी अपेक्षा अत्यन्त उल्लासपूर्ण होगा। उसके पूरे-पूरे उपयोगपर आशा रखो।'

वास्तवमें आनेवाले 'कल' का महत्त्व अत्यधिक है। यदि हम अपने भावी जीवनके प्रति उल्लसित आशावादी दृष्टिकोण रखकर निज-जीवनमें पदार्पण करें और प्रत्येक परिस्थितिसे किसी-न-किसी प्रकार लाभ उठानेकी भावना मनमें रखें तो निश्चय ही हमारी कार्य-सम्पादिका शक्तियाँ तीव्रतासे अपना कार्य करनेको प्रस्तुत रहती हैं। आशा मनुष्यके जीवनका स्रोत है। हम किसी महान् उद्देश्यके लिये सतत प्रयत्नशील हैं तो आशाकी डोरी पकड़कर ही अग्रसर हो सकते हैं। वह हमें जीवन-रससे, नवीन उमंगसे परिपूर्ण कर देती है।

जिस व्यक्तिने उत्साह खो दिया है, वह सबसे बड़ा दिवालिया है। रुपयेका दिवाला तो आसानीसे पूरा हो [illegible] है। यदि आशा और उत्साहका दृढ़ सहारा प्राप्त है, तो लक्ष्मीका कृपापात्र [illegible] जा सकता है, चार-छः वर्षमें बहुत आर्थिक लाभ हो सकता है, मूर्ख भी विद्वान् हो सकता है; किंतु आनेवाले 'कल' पर भरोसा न रखनेवाला व्यक्ति तो आधारभूत जीवनतत्त्व—भविष्यके लिये आशाका दिवालिया है। ऐसा दिवालिया जीवनमें कुछ नहीं कर सकेगा, 'आज' का भरा-पूरा उपयोग कीजिये, किंतु 'कल' पर आजसे भी अधिक अच्छा कार्य करनेका दृढ़ संकल्प और आशा रखिये। एक-एक क्षण बहुमूल्य धन है। व्यर्थ नष्ट किया हुआ प्रत्येक [illegible] दुबारा वापस आनेवाला नहीं है। कलकी आशामें मनुष्य 'आज' का सही उपयोग करना सीखता है।

द्वितीय नियम है, 'कला-संगीत, पुस्तक और सामयिक घटनाओंके विषयमें ज्ञानवर्द्धन करो।' इसके अन्तर्गत काऊल महोदयने बड़ी गहरी बात कही है। यदि मनुष्य केवल अपने ही विषयमें सोचता-विचारता रहे, रुपया कमाकर अपने ही हितमें खर्च करे, केवल अपना ही लाभ दृष्टिमें रखे, तो

उसमें एक बड़ा दुर्गुण आ जाता है। उसकी ज्ञानपरिधि बहुत सीमित हो जाती है। वह स्व-केन्द्रित हो जाता है। स्वार्थमयी भावनाकी निरन्तर अभिवृद्धि होनेसे उसका आत्मविकास रुक जाता है।

कला, संगीत, पुस्तकावलोकन, अध्ययन, समाचारपत्रोंका अध्ययन हमारे ज्ञानका विस्तार कर हमें स्व-केन्द्रित होनेसे बचाता है। इससे हमारी रुचिका परिष्कार होता है और हम व्यक्तिगत राग-द्वेषसे मुक्त होकर अपनी वासनाका परिष्कार करते हैं।

वासना मनुष्यकी बड़ी भारी कमजोरी है। यह ऐसी घातक चीज है कि वीर-से-वीर और दृढ़-से-दृढ़ व्यक्तिको अनायास ही पछाड़ डालती है। वासनाके बहावको रोकना असम्भव है। कला, संगीत, अध्ययन, पूजन, संध्या, गायत्री इत्यादिका सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि ये मनुष्यकी वासनाके विकासको सांस्कृतिक प्रकाशमय मार्ग प्रदान करते हैं। हमारे क्रोध, घृणा और मदका नाश होता है। कलात्मक अभिरुचिसे व्यक्तिका पथ मंगलमय होता है। संगीत तथा भक्तिका समन्वय कल्याणकारी है।

तृतीय नियम स्मरण रखिये, 'सर्वशक्तिमान् प्रभुमें जब तुम्हारा विश्वास है, तब तुम्हारी यह निष्ठा सुरक्षाके लिये चट्टानका कार्य करेगी।'

ईश्वरमें निष्ठा रखनेवाले व्यक्तिको सत्य, न्याय, प्रेम, सहानुभूति एवं उदारताकी ऐसी आधारशिला प्राप्त हो जाती है, जिससे उसे लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति अपने-आपको ईश्वरसे संयुक्त देखता है। उसे प्रत्येक पुष्प एवं पत्तेमें ईश्वरीय सुरक्षाके दर्शन होते हैं।

ईश्वरीय विचारोंसे संचालित व्यक्ति अपने हृदयमें एक दिव्य आलोकका अनुभव करता है जिससे वह दैवी कार्यकी ओर अग्रसर होता है। वह प्रत्येक कार्यको ईश्वरीय समझकर एक पूजाके रूपमें करता है।

आध्यात्मिक जीवनके विकासकी आधारशिला परमेश्वरमें निष्ठा है। यह जड़मूलसे निकलकर मनुष्यकी आध्यात्मिकता, परिवार, मुहल्ला, शहर, देश और यहाँतक कि समग्र संसारको प्रभावित करती है। मनुष्य परमेश्वरकी सत्ता अपने अणु-अणुमें भरकर ही ऊँचा उठता है।

हमारी सबसे प्रभावशाली प्रार्थनाएँ वे हैं, जिनमें हम समय और संसारकी चेतनासे ऊँचे उठकर एक उच्चस्तरमें निवास करने लगते हैं। भक्त मीरा, प्रह्लाद, कबीर इत्यादि संसारमें रहते हुए भी इसी सत्तामें निवास करते रहे।

वे अपने-आपको परम प्रभुके हाथोंका एक ऐसा यन्त्र समझते थे, जिसका संचालन स्वयं प्रभु करते थे। इस रहस्यवादी सान्निध्यसे ही हम अपने जीवनमें सुख-शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। परमेश्वरकी शक्ति ही हममें प्रकट होती है।

चतुर्थ नियम है दूसरोंको आप अपने ज्ञानका दान कीजिये। जहाँ कहीं भी हों और जब कभी भी कर सकें, दूसरोंके साथ आत्मीयता और मैत्रीका व्यवहार कीजिये और यथासाध्य उनकी सहायता कीजिये।

दान चाहे जिस रूपमें, चाहे जिस वस्तु—श्रम, भूमि, रोटी, आटा किसीका हो, मनुष्यको त्याग एवं बलिदानकी शिक्षा देता है। दान संयमका प्रथम सोपान है। यथासम्भव हम सभी प्रकारके दान करते रहें, तो श्रेष्ठ है।

यदि आपके पास समुन्नत मस्तिष्क है, आप नवीन दृष्टिसे जीवनके कर्मोंको समझ सकते हैं तो अपने दृष्टिकोणोंको दूसरोंके समक्ष अवश्य रखिये। दूसरोंके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश डालिये। आपका व्यवहार आत्मीयता एवं मैत्रीसे परिपूर्ण होना चाहिये। मैत्री-भावकी वृद्धि करनेसे मनुष्यको अशान्त करनेवाला दुर्भाव, ईर्ष्या-द्वेष नष्ट हो जाता है। आत्मीयताका दायरा सदा बढ़ाते रहिये। आपके इस दायरेमें केवल घरके व्यक्ति या मित्र ही न हों, समग्र संसारके व्यक्ति और जीवमात्र हों। मैत्रीभावकी अभिवृद्धिसे आप सुख-दुःख, राग-द्वेष, मान-अपमानके ऊपर उठकर कल्याणकारी जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

वास्तवमें, उपर्युक्त चारों नियम अध्यात्म-मार्गपर अग्रसर होनेके लिये उपयोगी ज्ञानसे परिपूर्ण हैं। अधिक-से-अधिक लाभ तभी प्राप्त हो सकता है, जब आप दैनिक जीवनमें इनका प्रयोग दृढ़तासे करते चलेंगे।

मनका भार हलका कीजिये

क्या आप मन-ही-मन दु:खी रहते हैं? क्या अंदर-ही-अंदर घुने जा रहे हैं? कोई आन्तरिक दु:ख, पीड़ा या अन्तर्वेदना आपको व्यथित—पीड़ित कर रही है? कोई दुर्दमनीय विषम मानसिक व्यथा आपको व्यथित रखती है? यदि आप दु:खी हैं, पीड़ा, कसक, वेदना या आन्तरिक हाहाकारसे विह्वल रहते हैं तो आपको सावधान हो जाना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि आपपर कोई गम्भीर और स्थायी मानसिक कष्ट आनेवाला है। इस स्थितिसे जितनी शीघ्रतासे हो, छुटकारा प्राप्त कीजिये।

मानसिक दु:खका कारण गुप्त मनमें कटु स्मृतियों या भावी आशंकाओंको सहेजना और विपरीत विचार रखकर निरन्तर उन्हें पोसते जाना है। मानसिक कष्टोंसे आक्रान्त व्यक्ति अंदर-ही-अंदर घुने जाते हैं, ऊपरसे हँसते रहनेपर भी अंदरसे नैराश्यकी काली छाया उनपर पड़ती रहती है। जब वे एकान्तमें होते हैं, तब विक्षुब्ध होकर रोते हैं, अश्रुधारा बहाते हैं। संसार उन्हें अन्धकारमय और नैराश्यपूर्ण प्रतीत होता है।

आप मनमें कष्ट, पीड़ा लिये फिरते हैं तो मानो अपने साथ भयंकर अत्याचार कर रहे हैं, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और उल्लासपर पानी फेरकर जीवन उजाड़ रहे हैं। अपने मनका भार हलका कीजिये।

मनमें गुप्त इच्छाओं, दलित भावनाओंको रखना अनेक प्रकारके मनोवैज्ञानिक रोगोंकी सृष्टि करना है। गुप्त मनमें कष्ट रखना रूईमें अग्नि छिपाये रखनेके अनुरूप घातक है।

जैसे आप कूड़ा-करकट बाहर नालीमें फेंककर अपने घरको झाड़ते-बुहारते स्वच्छ करते हैं, वैसे ही अपने मनके रुके हुए इन दुष्ट विकारोंको फेंक दीजिये, बाहर निकाल दीजिये। निम्न उपायोंसे आप आन्तरिक गंदगीसे सहज ही मुक्ति पाकर गुप्त मनको स्वच्छ कर सकते हैं।

अपने इष्टमित्रोंकी संख्यामें वृद्धि कीजिये। आत्मभावका जितना व्यापक प्रसार होगा, उतना ही मनका भार हलका होगा। इनसे आप खुल-खुलकर बातें कीजिये। इनको अपने मनकी व्यथा तथा अपनी अनुभूतियाँ सुनाकर मनका भार हलका कर सकते हैं।

मनुष्य यह चाहता है कि कोई उसकी अन्त:कथाएँ सुने, उसके साथ

समवेदना प्रकट करे, उसे सच्ची सान्त्वना प्रदान करे और निरन्तर ऊँचा उठनेकी प्रेरणा प्रदान करे। आपका यह मित्र आपकी दु:खभरी कहानियाँ सुनकर मनकी व्यथाको हलका करेगा। सच मानिये, अपने मनकी बात किसी दूसरे सहानुभूति रखनेवालेसे कह देना मनके भारको हलका करनेका एक अमोघ साधन है।

क्या आपके गुप्त मनमें मिथ्या भय, शंकाएँ रहती हैं? यदि ऐसा है, तो इनका दूसरोंसे समाधानकर निकाल दीजिये, अन्यथा इसके फल भयंकर हो सकते हैं। मनोवैज्ञानिक सलाह पूछनेवाले एक पाठकका यह पत्र देखिये और फलकी भयंकरतापर विचार कीजिये—

'आपके सुन्दर तथा मनोवैज्ञानिक लेख पढ़कर मनको अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है और एक नया मार्ग दिखायी पड़ता है, परंतु क्या बताऊँ मेरे मनपर बोझा है, जिसे हटानेकी लाख कोशिश करनेपर भी वह हलका नहीं हो पाता और वह बोझा है शारीरिक जो कि समयके बहावके साथ मानसिक रूप धारण कर चुका है। दुर्भाग्यवश अपनी मन्दबुद्धिके कारण मेरा चेहरा अत्यन्त कुरूप बन गया है। मुहासों और काले दागोंने मेरे मुखके लावण्यको हटाकर विचित्र-सा बना दिया है। मन तो चाहता है कि चमड़ीको उधेड़ दूँ। उपचार भी करता हूँ तो बेफायदा। दूसरोंके सामने ऐसे भद्दे और कान्तिहीन मुखको ले जाते हुए लज्जा-सी अनुभव होती है। बचपनकी स्मृति याद आती है तो मन और भी दु:खित होता है। कभी-कभी नौबत यहाँतक पहुँचती है कि आत्महत्या करनेका मन होता है। मेरा मन अत्यन्त दु:खित और मलिन है, किसी काममें नहीं लगता। सब व्यर्थ-सा जान पड़ता है। मानसिक व्यथाके कारण मनमें कभी प्रसन्नता नहीं रहती। जीवन निराशापूर्ण और अन्धकारमय लगता है। इस चेहरेकी कुरूपताने मेरे मन और मस्तिष्कको घुनके समान चाट लिया है।'

इस पत्रमें अभिव्यक्त समस्त मानसिक कष्ट केवल आत्मग्लानि और हीनत्व भावनाकी ग्रन्थिके कारण हैं। मुहाँसा होना यौवनके आगमनका प्रतीक है। पेटमें कब्जके कारण या रक्तमें उष्णताके कारण भी मुहाँसे हो सकते हैं। प्राय: अनेक संवेदनशील व्यक्ति ऐसी या और छोटी-छोटी नगण्य बातोंको लेकर मानसिक वेदनासे व्यथित रहते हैं। अपना दु:ख कहें, तो दूसरे उसमें हिस्सा बटावें, कुछ कम करें। दु:ख बटे। अंदर-ही-अंदर मानसिक कष्टको

पोसते रहनेसे आत्महत्या-जैसी घृणित स्थितितक आ सकती है। अतः गुप-चुप कष्टको दूसरोंसे कहकर सलाह लीजिये, उसका हल ढूँढ़िये। अनेक व्यक्ति गुप्त घृणित रोगोंके शिकार होकर मन-ही-मन पश्चात्ताप किया करते हैं, झूठे वैद्यों या हकीमोंके चक्रमें पड़कर रुपया नष्ट करते हैं। यह भयंकर भूल है। जब आप अपनी समस्याको दूसरोंपर प्रकट करते हैं, कहते हैं या लिखते हैं, तब वह मनसे दूर हो जाती है। गुप्त भार हलका हो जाता है। किसी गुप-चुप पीड़ाके कारण आत्महत्या कर बैठना भयंकर पाप है।

कोई ऐसी समस्या नहीं, जिसका हल न हो; कोई ऐसी परिस्थिति नहीं, जिसे सुधारा न जा सके। संसारकी जटिल-से-जटिल मानसिक, सामाजिक समस्याका कोई हल हो [illegible] है, जिससे जीवन स्थिर रह सकता है और समस्याका निवारण भी हो सकता है।

क्या आप कुरूपतासे व्यग्र हैं? यह स्मरण रखिये कि पुरुषका सौन्दर्य उसके चेहरे या त्वचा, रूपकी बनावटमें न होकर उसके पुरुषत्वमें है। पुरुष होकर आप नारी-सुलभ लज्जा या कमनीयताकी आकांक्षा न कीजिये। अपनी शक्तिकी वृद्धि कीजिये। स्त्रियाँ प्रायः कुरूप, बेडौल, काले रंगके या वीर, साहसी, निर्भय, शक्तिशाली वीरोंको पसंद करती हैं। पुरुषका भूषण उसका पुरुषत्व, उसका साहस, ओज और वीरता है।

क्या आप किसी दिशाविशेषमें पायी जानेवाली अपनी न्यूनता या कमजोरीसे तो व्यथित हैं, किंतु [illegible] आपने अपने गुणों और विशेषताओंकी ओर भी ध्यान दिया है? यदि अपने गुण नहीं देखे हैं तो अपने साथ भारी अन्याय किया है।

आपमें कुछ गुण हैं, अवश्य हैं। बहुत बड़े पैमानेमें कुछ गुण हैं। कभी अपने गुणोंको खोज निकालने और सतत अभ्याससे उन्हें विकसित करनेकी चेष्टा की है? सम्भव है, आप कुशल वक्ता, व्यापारी, सेक्रेटरी या अध्यापक बन सकते हैं। संगीत, साहित्य, कला इत्यादिमें आपको प्रसिद्धि प्राप्त हो सके। सम्भव है नेतृत्व करनेके गुण आपमें भरे पड़े हों। दुनियामें हजारों एक-से-एक बड़े और महत्त्वपूर्ण कार्य आपके करनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि आप तन-मनसे उनमें लग जायँ तो निश्चय जानिये आपके मनका भार हलका हो सकता है। क्षतिपूर्तिका नियम आपके लिये कल्याणकारी है। विधिके विधानमें सर्वत्र न्याय है। परमेश्वरने एक बातकी एक स्थानपर कमी रखी

हैं तो दूसरी ओर उससे भी शक्तिशाली गुणोंका प्रादुर्भाव किया है। वह एक चीज छीनते हैं, तो दस देते भी हैं। उनके विधानमें कोई कमी नहीं है। सर्वत्र प्राचुर्य है। मुक्तहस्तसे इस अक्षय भंडारसे गुणोंका दान निरन्तर होता रहता है।

अपने व्यक्तित्वका विश्लेषण सहृदयतासे कीजिये। स्वयं न करें, तो किसी मनोविश्लेषणवाले विशेषज्ञसे कराइये। अपने गुणोंका विकास कर अपने क्षेत्रमें महान् बनिये। निश्चय जानिये, संसारमें आपके लिये कहीं-न-कहीं बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मानसिक भार हलका करनेके लिये संगीतसे उत्तम अमोघ ओषधि दूसरी नहीं है। सुमधुर स्वरमें गाना गानेसे मनकी दु:ख-पीड़ाको बाहर निकलनेके हेतु एक द्वार प्राप्त हो जाता है। संचित मानसिक भार बह जाता है। मन हलका हो जाता है। आदिकालसे वेदनाके निवारणार्थ भक्त, योगी तथा सांसारिक व्यक्ति संगीतका उपयोग करते रहे हैं।

यह न समझिये कि आप अच्छा गा नहीं सकते तो न गायें। यह कुछ नहीं। चाहे आप अच्छा गाना गाना जानते हों अथवा नहीं, अवश्य गाइये, अकेलेमें जाकर गाइये। भगवान्‌की मूर्तिके समक्ष अपने पाप, शंका, व्यथाओंको बहा दीजिये। पश्चात्तापमयी वाणीमें मनको हलका करनेकी अद्भुत शक्ति है। *'मो सम कौन कुटिल [illegible] कामी'*— कविके इस पश्चात्तापभरे गानसे उसे कितनी मानसिक शान्ति प्राप्त हुई होगी, वह एक संगीत-प्रेमी ही जान सकता है।

यदि कोई प्रेमी बन्धु, परिवारका सदस्य, हितैषी मित्र स्वर्गवासी हो गया है और आप दु:खका अनुभव कर रहे हैं, तो कृपया रो डालिये। फूट-फूटकर रो लीजिये। अश्रुधाराके साथ आपके मनका भार बह जायगा। आप हलके हो जायँगे। मनमें व्यथाको रखना घातक है। इस विषको आँसुओंसे धो डालना मानसिक स्वास्थ्यका सूचक है। रोना एक मनोवैज्ञानिक शान्ति-मार्ग है। रोकर हम मनका भार हलका करते हैं।

अपने व्यक्तित्वका अध्ययन कर उन रुचिकर कार्योंकी एक सूची बनाइये, जिसमें आप विशेष दिलचस्पी रखते हैं—बागवानी, साहित्य-कला, चित्रकारी, खेल-कूद इत्यादि। इनमें इस तल्लीनतासे संलग्न हो जाइये कि पुरानी व्यथाओंके बारेमें सोचने-विचारनेका अवकाश ही न प्राप्त हो। खाली

मन शैतानका घर कहा गया है। अतः यदि आप खाली हाथ रहेंगे तो पीड़ाका आक्रमण हो सकता है। व्यस्त जीवनसे मनको कुछ-न-कुछ करनेका आधार मिल जाता है और दुःखका बोझ घट जाता है।

मुसकरानेका स्वभाव बनाकर हर समय मन्द-मन्द मुसकरानेका नुसखा आजमाइये। हँसने और मुसकराते रहनेसे मानसिक [illegible] दूर होता है और मनमें ताजगीका संचार होता है। डॉक्टर पैस्किड, डॉ० पैवक इत्यादिने नवीन मनोवैज्ञानिक अनुसंधानसे यह प्रमाणित किया है कि हँसकर दुःखोंका निवारण करना कोरी भावुकतामात्र नहीं, प्रत्युत एक निगूढ़ मनोवैज्ञानिक तथ्य है।

डॉ० पैस्किडने लगभग १५० प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओंमें किये हैं। वे लिखते हैं कि हँसनेसे मनुष्यके थके हुए मज्जातन्तु सचेत एवं पुनः नवस्फूर्ति और ताजगीसे युक्त हो जाते हैं। मनका भार कम हो जाता है। इसके विपरीत क्रोध, आवेश और उत्तेजनाके खिंचावमें भरे रहनेसे मांसपेशियोंमें अनुचित दबाव आ जाता है। हँसनेसे रुका हुआ तनाव दूर होकर मनःशान्ति आती है। हँसकर हम कितने ही आन्तरिक अवयवों तथा निष्क्रिय मांसपेशियोंको व्यायाम देते हैं। चिन्ता, भय, क्रोध या चिड़चिड़ाना थकान उत्पन्न करते हैं। इनसे जीवनशक्तिका क्षय होता है।

प्रतिहिंसाकी अग्निको दमन करनेवाली दवा है—हँसना और मुसकराना। आप दूकानदार हैं, ग्राहक शिकायत करते हैं, आप क्लर्क हैं और मालिक झिड़कियाँ देते या जुरमाना कर देते हैं, घरवाली अपनी बड़ी-बड़ी फरमायशें पेश करती है तो इन सभी कुटिल मानसिक अवस्थाओंमें मुसकरानेके नुसखेसे काम निकालिये अर्थात् मनको उनके विपरीत संकेतोंसे प्रभावित मत होने दीजिये।

मृदु मुसकानके द्वारा उत्पन्न स्निग्ध वातावरणसे हम अंदर-ही-अंदर एक ऐसी शीतलताका अनुभव करते हैं जो हमें संसारके प्रकोपसे बाहरके दूषित वातावरणसे बचाता है।

एक स्थानपर लिखा है, मैं ऐसा प्रसन्नस्वभाव, जो सदैव प्रत्येक वस्तुका अच्छे दृष्टिकोणसे देखनेका आदी है, प्राप्त करना अधिक पसंद करूँगा, बनिस्बत इसके कि मैं दस हजार पौण्ड वार्षिक आयकी जायदादका स्वामी बन जाऊँ।

त्कोफेनरके अनुसार प्रसन्नता प्रत्यक्ष और शीघ्रतम लाभ है। वह अन्य

सिक्कोंकी तरह केवल बैंकका ही सिक्का नहीं, वरं प्रत्यक्ष सिक्का है। धन प्रसन्नताका सबसे छोटा साधन है और स्वास्थ्य सबसे अधिक।

ऊपर अपने पाश्चात्त्य चिकित्सकों तथा विद्वानोंके विचार देखे। भारतमें भी प्रफुल्लताकी शक्तिको स्वीकार किया गया है। भारतके एक चिकित्सकके मतानुसार मुसकराना हमारे स्वास्थ्यके लिये तो आवश्यक है ही, जीवनकी कठोरता एवं संघर्षको भी कम करता है। उनके विचार देखिये—

'क्रोध, आशंका, चिन्ता, डर आदि मानसिक रोग हैं। जिस प्रकार शारीरिक रोगोंका हमारे शरीरपर प्रभाव पड़ता है, उसी तरह हमारे चेहरेपर प्रभाव पड़ता है। इन रोगोंकी दवा है मुसकराना—प्रसन्नचित्त रहना, मुसकराना वह दवा है, जो इन रोगोंका निशान आपके चेहरेसे ही नहीं उड़ा देगी, वरं इन रोगोंकी जड़ भी आपके दिलसे निकाल देगी। यह हो नहीं सकता कि मुसकरानेवालेका दिल काला या भारी रहे।'

मुसकराहटकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया

जब आप मुसकराते हैं तो अपने आन्तरिक मनको एक स्वस्थ स्वसंकेत देते हैं। दर्पणमें अपना खिला हुआ मुख-कमल देखकर आपको आन्तरिक आह्लाद होता है। इसका विद्युत्-प्रभाव आपके सम्पूर्ण शरीरपर पड़ता है। मांसपेशियाँ स्फूर्तिसे उत्तेजित हो उठती हैं और काममें मन लगता है। मुसकरानेवाला व्यक्ति ही अपने अवयवोंको पूर्ण स्वस्थदशामें रख सकता है।

मुसकरानेका दूसरा अर्थ यह है कि आपका मन मधुर कल्पनाओं, शुभ भावनाओं तथा पवित्र विचारोंसे परिपूर्ण है। इन पवित्र संकल्पोंसे ऐसी किरणें निकलती हैं जो मानसिक स्वास्थ्यको उत्तम स्थितिमें रखती हैं। जब मुसकराहट स्थायीरूपसे आपके स्वास्थ्यका एक अंग बन जाती है, तब स्वभावमें एक महान् परिवर्तन हो जाता है। ऐसे मधुर स्वभावसे आपका सर्वत्र स्वागत किया जाता है।

हँसना एक बड़ी दवा है

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे दिल खोलकर हँसना, मुसकराते रहना और चित्त प्रफुल्ल रखना दवा है। —जे० गिलबर्ट ओकले

अगर तुम्हें दो बादल दिखायी पड़ें। एक काला और एक उजला तो

कालेसे निगाह हटाकर उजलेको देखते रहो और सदा मुसकराते रहो।

—जेम्स एल्बर्ट

सौ वर्ष जीनेके लिये अपने चारों ओर जवान और हँसमुख मित्रोंका गिरोह रखो। —श्रीमती एलिजाबेथ सैफोर्ड

उपर्युक्त सम्मतियोंसे हँसने-मुसकरानेकी शक्तिपर कुछ प्रकाश पड़ता है। सभ्यताके प्रारम्भसे चिकित्सकोंने हँसने तथा मुसकराते रहनेके मनोवैज्ञानिक प्रभावके सम्बन्धमें निर्देश किया है। शताब्दियों पूर्व बाइबिलमें कहा गया था, 'आह्लादित हृदयका मानव-स्वास्थ्यपर वही लाभ होता है, जो अनुकूल दवाइयोंका शरीरपर।' उस युगसे आजतक अनेक मनोवैज्ञानिक, चिकित्सक एवं विद्वान् मुसकराहटके स्वास्थ्यदायक प्रभावके बारेमें लिखते आये हैं! हँसना पहले एक कलामात्र समझा जाता था, [illegible] यह विज्ञान मान लिया गया है।

चिकित्सकोंके मत

हमारे चिकित्सक बहुत समय पहले ही यह जान गये थे कि हँसी-खुशीसे रहनेसे मनुष्यका हृदय-कमल सदा खिला रहता है, उसकी मुखाकृति आकर्षक प्रतीत होती है, उत्साह और स्वास्थ्य बना रहता है। डॉ० पैस्किड, डॉ० पैवल्व, डॉ० कैनन-जैसे डॉक्टरोंने अपने नवीन मनोवैज्ञानिक अनुसंधानोंसे प्रमाणित किया है कि हँसनेसे होनेवाले लाभ कवियोंकी कोरी भावुकतामात्र नहीं, प्रत्युत एक मजबूत मनोवैज्ञानिक सत्य है।

मुसकरानेकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया

जब आप मुसकराते हैं तो अपने आन्तरिक मनको एक स्वस्थ स्वसंकेत (Auto-suggestion) देते हैं। दर्पणमें अपना प्रफुल्ल मुख-कमल देखकर आपको आन्तरिक आह्लाद होता है। इसे देखनेका मतलब यह है कि इसके प्रभावको आप अपने शरीरमें ग्रहण करते हैं। मनोवैज्ञानिकोंका कथन है कि जैसा तुम बाहर प्रकट करोगे, वैसा ही धीरे-धीरे अंदर भी अनुभव करने लगोगे। मुसकरानेकी आदत पड़ जानेसे मनुष्यका आन्तरिक संस्थान प्रसन्न हो उठता है।

मुसकराते हुए कार्य करनेसे मनमें स्फूर्ति बनी रहती है; काममें मन लगता है। मुसकरानेवाला व्यक्ति अपने आन्तरिक एवं बाह्य अवयवोंको ठीक हालतमें

रख सकता है। मुसकराते रहनेसे मन मधुर कल्पनाओंसे परिपूर्ण रहता है। इन मधुर कल्पनाओंसे चेहरेका सौन्दर्य एवं शरीरका स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है। जब मुसकराहट स्थायीरूपसे हमारे स्वास्थ्यका एक अंग बन जाती है, तब स्वभाव प्रसन्न, उत्फुल्ल और प्रेममय बन जाता है। प्रसन्न मुखवाले व्यक्तिका सर्वत्र स्वागत किया जाता है।

जिस प्रकार वृक्षकी जड़में जल देनेसे पुष्प-पत्तियोंका कण-कण स्वस्थ और आकर्षक बन जाता है, उसी प्रकार मनकी प्रसन्नताका स्वस्थ प्रभाव हमारी पाँचों इन्द्रियोंपर पड़ता है। चेहरेके साथ शरीरके अणु-अणु स्वस्थ दशामें आ जाते हैं। सूँघनेकी शक्ति बढ़ जाती है, कान अपना कार्य सुचारुतासे करने लगते हैं और मन तन्मयतासे कार्यमें संलग्न हो जाता है। मुसकराहट स्वास्थ्य प्रदान करनेवाली महौषधि है।

उन्मुक्त हँसीसे तात्पर्य है कि आपके मुख-कमलकी प्रत्येक पंखुरी खिल उठे, रोम-रोममें नव स्फूर्ति दौड़ जाय।

डॉ० पैस्किड (Paskid)-ने लगभग १५० प्रयोग अपनी प्रयोगशालामें किये हैं। उनका निष्कर्ष है कि 'हँसनेसे मनुष्यके थके हुए मज्जा-तन्तुओंको स्फूर्ति और सजीवता प्राप्त होती है और मनकी थकान, चिन्ताका भार कम हो जाता है। इसके विपरीत क्रोध करनेसे या आवेशमें भरे रहनेसे मांसपेशियोंमें अनुचित तनाव आ जाता है। क्रोधसे सम्पूर्ण शरीरपर खिंचाव और दबाव बढ़ जाता है। हँसनेसे तनाव कम होता है। मुसकराते रहनेसे हम कितने ही आन्तरिक अवयवों तथा मांसपेशियोंको व्यायाम देते हैं। चिन्ता, भय, क्रोध और आवेश अनुचित तनाव उत्पन्न कर जीवनशक्तिका ह्रास करते हैं।

श्री एस० ए० सूमेकरने हँसनेको थकान दूर करनेकी रामबाण ओषधि माना है। ह्यूमने एक स्थानपर लिखा है कि हँसना सब जीवोंमें मनुष्य-जातिकी ही एक बड़ी विशेषता है। यह ईश्वरद्वारा मनुष्यको इसलिये दी गयी है कि वह क्षणभरमें अपने दुःख-दर्दसे मुक्ति पा सके।

मनकी प्रसन्नता तथा चेहरेकी मुसकानसे जीवन रस और नयी शक्तिसे ओत-प्रोत हो उठता है, मनकी दुर्बलता, क्लेश, चिन्ता और दुःखकी मलिनता या विकार धुल जाता है। मुसकराहट ज्ञान-तन्तुओंमें जो कुछ दुर्बलता अथवा चिन्ता होती है, उसे तत्काल दूर करती है। आनन्दका प्रभाव शरीर तथा मनके कण-कणमें होता है। जहाँ ओषधि लाभ नहीं पहुँचाती, इंजेक्शन, कुनैन या

अन्य कृत्रिम दवाइयाँ काम नहीं करतीं, हास्य-भाव अपना कार्य किया करता है। इससे मानसिक कष्ट तुरंत दूर हो जाते हैं।

यदि आप रोग और व्याधिसे मुक्त रहना चाहते हैं तो हलकी मुसकराहटको स्वभावका स्थायी अंग बना लीजिये। जो मुसकराते हुए जीवन व्यतीत करेगा, उसका जीवन उतना ही मधुरतासे परिपूर्ण होगा।

जब-जब आपपर भीषण परिस्थितियोंका आक्रमण हो, रुककर हँस दिया कीजिये। अच्छी हँसीसे आपका नैराश्य दूर हो जायगा।

एक अंग्रेज कवयित्रीने लिखा है, 'हँसो और सम्पूर्ण संसार तुम्हारे साथ हँसेगा। रोओ, किंतु तुम्हारे साथ रोनेवाला कोई न मिलेगा।' वास्तवमें संसार आपको तभी पसंद करता है, जब आप हँसते, मुसकराते रहें।

हँसना सीखिये, दूध पीनेवाला शिशु जैसी निर्दोष हँसी हँसता है, वैसी ही हँसी, मस्ती बिखेरनेवाली हँसी कष्टोंको विदा करनेकी अचूक दवा है। हास्य-सेवनका आनन्द लें। हँसनेवालोंका संग करें। आनन्दमय भविष्यको ही अपनी कल्पनाके नेत्रोंके सम्मुख रखें। हास्य और केवल निर्दोष हास्य-भाव ही आपके दुःख-दर्दकी एक श्रेष्ठ दवा है।

इन्द्रियभोगोंकी मर्यादा

मानवकी पाँच इन्द्रियाँ संसारके समस्त आकर्षण और रसका कारण हैं। जबतक हमारे नेत्र सुन्दर सांसारिक वस्तुओंका दृश्य देखते हैं, जिह्वा खाद्य पदार्थोंका रस लेती है, नासिका भिन्न-भिन्न गन्धोंका आनन्द उठाती है, कान श्रवणसुखद स्वरोंपर विमुग्ध होते हैं तथा त्वचासे तापक्रम इत्यादिका बोध होता है, तभीतक हमारे लिये संसारका क्रम है। तभीतक उसमें आकर्षण है।

इन्द्रियभोगोंसे मनुष्यको सांसारिक आनन्दकी प्राप्ति होती है। वह नाना रूपमें संसारकी विभिन्न वस्तुओंका रसपान करता है। इन्द्रियभोगोंके कारण उसकी शक्तियोंका विकास होता है। वह जीवनमें अधिक-से-अधिक आनन्द लूटना चाहता है।

अधिक-से-अधिक आनन्द लूटनेकी कामनासे वह अपनी पाँचों इन्द्रियोंसे अधिक-से-अधिक आनन्द प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है। अच्छे-से-अच्छे पदार्थ खाता है, उत्तमोत्तम सुगन्धित पदार्थ सूँघता है, नेत्रोंसे सुन्दरतम दृश्य देखता है, कानोंसे मधुरतम संगीत सुनता है और बढ़िया-से-बढ़िया वस्त्र पहनता है। इन सब वस्तुओंके प्राप्त हो जानेपर उसे ज्ञात होता है कि 'अभी कुछ और चाहिये।' वह और वेगसे इन्द्रियभोगोंकी ओर दौड़ता है। पर सब व्यर्थ! अतृप्ति और कुछ पानेकी इच्छा उसके मनमें निरन्तर बनी रहती है। इसका कारण यह है कि इन्द्रियभोगोंकी एक मर्यादा है। उस मर्यादासे बाहर वह कुछ आनन्द नहीं दे सकती।

जबतक मनुष्य इन्द्रियोंके मायाजालमें बँधा हुआ है, तबतक वह अँधेरेमें भटकता रहेगा। उसके पास सब कुछ सांसारिक पदार्थ होकर भी कुछ नहीं रहेगा। वह जितना इनसे सुख प्राप्त करनेकी कामना करेगा, उतना ही उसका सुख आगे बढ़ता जायगा। खेदका विषय है कि अधिकांश व्यक्ति जीवनके इसी पाशविक स्तरपर निवास करते हैं। वासनाके निम्न-स्तरसे न ऊँचा उठनेका प्रयत्न करते हैं, न इस अन्धकारकी चेतना ही उनके मनमें होती है। उनका परिवार बढ़ता जाता है, आवश्यकताएँ निरन्तर अभिवृद्धिको प्राप्त होती चलती हैं, दुःख भी बढ़ता रहता है।

कविवर रहीमने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण दोहा लिखा है—

बड़े पेटके भरन कौ, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथिहिं हहरि कै, दिये दाँत द्वै काढ़ि॥

अर्थात् बड़े पेटको भरनेमें बड़े कष्टोंका सामना करना पड़ता है, इसीसे बड़े पेटवाले हाथीने घबराकर दो दाँत बाहर निकाल दिये हैं।

वास्तवमें 'बड़े पेट' वालेकी बड़ी मुसीबत है। आधुनिक कालमें वही दुःखी और अतृप्त है जिसका बड़ा पेट है। अर्थात् जिसके अभाव तथा आवश्यकताएँ बढ़ी हुई हैं।

'बड़े पेट' का अर्थ अधिक व्यापक है। उसमें आपकी सभी प्रकारकी आवश्यकताओंका समावेश है। बड़े पेटसे तात्पर्य केवल उदरसम्बन्धी क्षुधा नहीं है। वरं उसका अर्थ मनुष्यकी सभी आवश्यकताएँ सामूहिक रूपसे है। जितनी अधिक आवश्यकताएँ, उतना ही कम सुख, शान्ति और समृद्धि। यही अध्यात्मका नियम है।

मान लीजिये, आप एक साधारण-से कच्चे मकानमें रहते हैं। आपके मनमें दर्प और अपने महत्त्वके प्रदर्शनकी भावना उद्दीप्त हुई और आपने कहा 'हमें बड़ा पक्का आलीशान मकान मिलना चाहिये, हम इससे ऊँची हैसियतके हैं, हमें समाजमें ऊँचा होकर रहना है।' आपके मनमें एक कृत्रिम आवश्यकताकी उत्पत्ति हो जाती है। आप उसकी पूर्तिके लिये योजनाएँ बनाते हैं। जमीन खरीदनेके लिये इधर-उधर भागे फिरते हैं, रुपया पासमें नहीं होता तो किसीसे उधार लेकर मकानके निर्माणमें लगाते हैं, जब वह बनता है तो सारे दिन धूप, बरसात, ठण्डमें खड़े होकर उसकी बनावटको देखते हैं। जब बन जाता है तो उसमें रहने लगते हैं। अब अच्छे मकानका-सा सामाजिक रहन-सहन, फर्नीचर-कपड़े, गाड़ी-मोटर और न जाने कितनी आवश्यकताओंके बोझ आपके मनोजगत्‌में उदित हो उठते हैं। कहाँ आप एककी पूर्ति करने निकले थे, कहाँ उसके स्थानपर दस-बीस नवीन कृत्रिम आवश्यकताएँ मुँह फैलाये आपके सम्मुख आ खड़ी होती हैं। फिर आप उनमेंसे प्रत्येककी पूर्तिके निमित्त निकलते हैं; नाना प्रकारके झूठ-फरेब, असत्यभाषण या अत्यधिक परिश्रमसे उन्हें पूर्ण करनेका प्रयत्न करते हैं।

शरीरकी आवश्यकताओंमें वासना सबसे अनर्थकारी आवश्यकता है। कामवासनाके आवेशमें मनुष्य हित-अहितका विवेक न रखकर अनियन्त्रित होता है। संतानवृद्धि होते ही उसकी परिवारवृद्धि होती है। आधुनिक युगमें

परिवारवृद्धि अनेक प्रकारकी चिन्ताओं तथा उत्तरदायित्वका कारण है। जिस व्यक्तिके सात-आठ संतानें हैं वह उन्हें खिलाने-पिलाने तथा अन्य आवश्यकताओंकी पूर्तिमें आत्म-सुधार या सुख-आनन्द विस्मृत कर बैठता है। उसे अपने तन-बदनकी सुधि नहीं रहती, उसके लिये तो कुटुम्बका पालन-पोषण ही एकमात्र जीवनका उद्देश्य रह जाता है। स्त्रियोंका जीवन प्रायः संतानके पालन-पोषणमें ही समाप्त हो जाता है। न केवल गरीबी बढ़ती है, प्रत्युत भुखमरी और आयु-नाश भी होता है। स्वास्थ्यहानिसे मनुष्यकी किसी प्रकारसे उन्नति नहीं हो पाती। वासनाका नियन्त्रण आवश्यक है। इसकी पूर्ति सम्भव नहीं है। अतः जब वासनाएँ प्रबल होती प्रतीत हों तो विवेकद्वारा इनका शमन करना चाहिये। मनको समझाइये और व्यर्थके मोहजालसे बचनेके लिये प्रेरित कीजिये। राजा ययाति बूढ़े हो गये थे। उन्होंने अपने पुत्रसे जवानी लेकर हजार वर्षोंतक विषयभोग किया; किंतु उन्हें इन्द्रियोंके भोगोंमें सुख प्राप्त न हुआ। अन्तमें अत्यन्त ग्लानिसे उन्होंने कहा—

'इन्द्रियके सुखोंके उपभोगमें उनकी शान्ति नहीं होती। यही नहीं, बल्कि भोगोंसे तो वासना और भी बढ़ती है। जैसे जलती हुई अग्निमें उसे शान्त करनेके लिये और घी डालें तो वह और बढ़ती है।'

सुस्वादु भोजन, मीठी गन्ध, वासनापूर्ति अथवा बहुत-से धनसे सुख प्राप्त नहीं होता। यह तो केवल सुखाभास है। जितनी ही सांसारिक सामग्री बढ़ती जाती है, उतना ही अभाव, लालच, वासना, इच्छाएँ और आवश्यकताएँ प्रदीप्त होती जाती हैं। संसारी वैभवोंसे आजतक कोई तृप्त नहीं हुआ है। महाराज ययातिने कहा है—

पृथ्वीपर जितना अन्न है, स्वर्ण आदि धातुएँ हैं, जितने पशु हैं, जितनी स्त्रियाँ हैं, ये सब भोग और वासना-पूर्तिके लिये दे दी जायँ तो भी तृप्त नहीं कर सकतीं। एक भी व्यक्तिको आन्तरिक शान्ति प्रदान नहीं कर सकतीं। अतः हमें इनका पीछा छोड़कर भगवत्-शरणमें जाना चाहिये।

महात्मा बुद्धने कहा है, 'जहाँपर वासना है, वहाँ सत्य, शान्ति एवं सुख नहीं रह सकता।' गेटे नामक महाकवि कहा करते थे, 'अगर अपने अंदर खोज करोगे तो तुम्हें सब चीजें वहाँ मिल जायँगी।' वास्तवमें मनके बाहरकी नाना वस्तुओंमें स्थायी सुख और आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती। सुख, तृप्ति, संतोषका एकमात्र केन्द्र मनुष्यका अन्तःकरण ही है। जो अपनी

वासनाओंके परिष्कारद्वारा उन्हें निम्न घृणित मार्गोंसे बचाकर उच्च पवित्र मार्गोंद्वारा प्रकाशित करता है, वही वास्तविक सुखका अनुभव करता है।

आवश्यकता इस बातकी है कि हम वासनाको कलात्मक रीतियोंमें, उच्च मार्गोंमें प्रकाशित करते रहें। भजन, कीर्तन, भगवन्नाम-उच्चारण, संगीत, साहित्य, कविता, चित्रकारी, वादन, नृत्य आदि अनेक सांस्कृतिक रूपोंमें मनुष्य अपनी वासनाओंको प्रकाशित कर सकता है। वासना-परिष्कारद्वारा मनुष्य परमेश्वरको प्राप्त कर सकता है। भगवत्-भक्ति, वह साधन है, जो सहज ही मुक्ति प्रदान कर देती है। कविने सत्य ही कहा है—

हरिका मनसे गुणगान करो,
तुम और गुमान करो, न करो।
स्वर गंगाका जल पान करो,
तुम अन्य विधान करो, न करो।
निसिवासर ईश्वर ध्यान करो,
तुम औरका ध्यान करो, न करो।
प्रिय नाहकी बाँहका ध्यान करो,
तुम और वितान करो, न करो॥

क्रोध एक विषधर सर्प है

क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधो मित्रमुखो रिपुः।
क्रोधो ह्यसिर्महातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽपकर्षति॥
तपते यजते चैव यच्च दानं प्रयच्छति।
क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विसर्जयेत्॥

(वाल्मीकीय रामायण उत्तर० प्र० स० २, २१-२२)

'क्रोध प्राण हरण करनेवाला शत्रु है, क्रोध मुँहपर मीठा बोलनेवाला वैरी है, क्रोध महातीक्ष्ण तलवार है, क्रोध सब प्रकारसे गिरानेवाला है, क्रोध तप, यज्ञ और दान— सभीका हरण कर लेता है। अतएव क्रोधको छोड़ देना चाहिये।'

क्रोधका मनके अन्य विकारोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्रोधके वशीभूत होकर हमें उचित-अनुचितका विवेक नहीं रहता और हम हाथापाई कर बैठते हैं। बातों-बातोंमें ही उखड़ जाना, लड़ाई-झगड़ा करना साधारण-सी बात है। यदि तुरंत क्रोधका निवारण हो जाय, तब तो मानसिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ठीक है, पर यदि वह अन्तःप्रदेशमें पहुँचकर एक भावना-ग्रन्थि बन जाय तब तो बड़ा ही दुःखदायी होता है। बहुत दिनोंतक टिका हुआ क्रोध वैर कहलाता है। वैर एक ऐसी मानसिक बीमारी है जिसका कुफल मनुष्यको दैनिक-जीवनमें भुगतना पड़ता है। वह अपने-आपको संतुलित नहीं रख पाता। जिससे उसका वैर है, उसके उत्तम गुण, भलाई, पुराना प्रेम, उच्च संस्कार इत्यादि सब वह विस्मृत कर बैठता है। स्थायीरूपसे एक भावना-ग्रन्थि बन जानेसे क्रोधका वेग तो धीमा पड़ जाता है, किंतु दूसरे व्यक्तिको सजा देने, नुकसान पहुँचाने या पीड़ित करनेकी कुत्सित भावना निरन्तर मनको दग्ध किया करती है।

वैर पुरानी जीर्ण मानसिक बीमारी है, क्रोध तत्कालीन और क्षणिक प्रमाद है। क्रोधमें पागल होकर मनुष्य सोचनेका समय नहीं देखता, वैर उसके लिये बहुत समय लेता है। क्रोधमें अस्थिरता, क्षणिकता, तत्कालीनता, बुद्धिका कुण्ठित हो जाना, उद्विग्नता, आत्मरक्षा, अहंकारकी पुष्टि, असहिष्णुता, दूसरेको दण्डित करनेकी भावनाएँ संयुक्त हैं। वैरमें सोचने-समझने, प्रतिशोध लेनेका समय होता है। हम अच्छी तरह सोचते हैं, कुछ समय लेते हैं और तब बदला लेते हैं। पं० श्रीरामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें, 'दुःख पहुँचनेके साथ ही दुःखदाताको पीड़ित करनेकी प्रेरणा करनेवाला मनोविकार क्रोध और कुछ

काल बीत जानेपर प्रेरणा करनेवाला भाव वैर है, किसीने आपको गाली दी, यदि आपने उसी समय उसे मार दिया तो आपने क्रोध किया। मान लीजिये कि वह गाली देकर भाग गया और दो महीने बाद आपको मिला। अब यदि आपने उससे बिना फिर गाली सुने, मिलनेके साथ ही उसे मार दिया तो यह आपका वैर निकालना हुआ।'

वैरमें धारणा-शक्ति अर्थात् भावोंको संचितकर मनमें रोक रखनेकी शक्तिकी आवश्यकता होती है। जिन प्राणियोंमें पुराने क्रोधको संचित रखनेकी शक्ति विद्यमान है, वे ही वैर कर सकते हैं। क्रोध तो पशु, पक्षी, मनुष्य अर्थात् सभी प्राणियोंको अस्थिर और पागल करनेमें पूर्ण समर्थ है; किंतु वैर यह कार्य नहीं कर सकता। वैरमें स्थायित्व है।

क्रोधकी मात्रा कम या अधिक, तेज या हलकी हो सकती है। चिड़चिड़ाहट क्रोधका हलका रूप है। साधारण भूलों या मामूली खराबियों, कमजोरियों या मामूली बुराइयों अथवा भद्दी बातोंपर हम उद्विग्न होते हैं। पर यह उग्रता उतनी तेज नहीं होती। थोड़ी देर रहकर शान्त हो जाती है। कभी अन्य किन्हीं कारणोंसे हम परेशान रहते हैं, कुछ अप्रिय हो जानेसे दुःखी होते हैं, ऐसी मनोदशामें साधारण-सी बात होते ही हम चिड़चिड़ा उठते हैं।

चिड़चिड़ाहटमें सामान्य कारण ही उद्विग्नता उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं। यह एक मानसिक दुर्बलता है जो अनेक कारणोंसे उत्पन्न हो सकती है। जिस व्यक्तिको पुनः-पुनः डराया, धमकाया जाय या जिससे अधिक कार्य लिया जाय, क्रोधके अधिक अवसर [illegible] हों और मन शान्त दशामें न आ सके तो क्रोध स्वभावका एक अंग बन जाता है। यह फिर जरा-सी असुविधा या कठिनाईमें हलके रूपमें प्रकाशित हुआ करता है।

चिड़चिड़ाहट प्रायः वृद्धोंमें अधिक देखनेमें आती है। रोगी अपनी दुर्बलताके कारण जरा-जरा-सी बातपर तिनक उठते हैं, औरतें कामसे परेशान होकर इतनी उद्विग्न रहती हैं कि मामूली-सी बातपर चिड़चिड़ा जाती हैं। अध्यापक विद्यार्थियोंकी काँव-काँव सुनते-सुनते इतने दुःखी-से हो उठते हैं कि तिनक उठते हैं। दूकानदार प्रायः ग्राहकोंसे जलभुनकर इस मानसिक दुर्बलताके शिकार बनते हैं। धार्मिक रूढ़िवादी दुनियाकी प्रगतिको देखकर जीवनभर बड़बड़ाया करते हैं।

क्रोध मनको एक उत्तेजित और खिंची हुई स्थितिमें रख देता है जिसके

परिणामस्वरूप मन दूषित विकारोंसे भर जाता है। क्रोधसे प्रथम तो उद्वेग उत्पन्न होता है। मन एक गुप्त किंतु तीव्र पीड़ासे दग्ध होने लगता है। रक्तमें गरमी आ जाती है और उसका प्रवाह बड़ा तेज हो जाता है। इस गरमीसे मनुष्यके शुभ भाव—दया, प्रेम, सत्य, न्याय, विवेक, बुद्धि आदि जल जाते हैं।

क्रोध एक प्रकारका भूत है जिसके सवार होते ही मनुष्य आपेमें नहीं रहता। उसपर किसी दूसरी सत्ताका प्रभाव हो जाता है। मनकी निन्द्य वृत्तियाँ उसपर अपनी राक्षसी माया चढ़ा देती हैं, वह बेचारा इतना हतबुद्धि हो जाता है कि उसे यह ज्ञान ही नहीं रहता कि वह क्या कर रहा है।

आधुनिक मनुष्यका आन्तरिक जीवन और मानसिक अवस्था अत्यन्त विक्षुब्ध है, दूसरोंमें वह अनिष्ट देखता है, उनसे हानि होनेकी कुकल्पनामें डूबा रहता है, जीवनपर्यन्त इधर-उधर लुढ़कता, ठुकराया जाता रहता है, शोक-दुःख, चिन्ता-अविश्वास, उद्वेग-व्याकुलता आदि विकारोंके वशीभूत होता रहता है। ये क्रोधजन्य मनोविकार अपना विष फैलाकर मनुष्यके जीवनको विषैला बना रहे हैं। उसकी आध्यात्मिक शक्तियोंका शोषण कर रहे हैं। साधनाका सबसे बड़ा विघ्न क्रोध नामका राक्षस ही है।

क्रोध शान्ति-भंग करनेवाला मनोविकार है। एक बार क्रोध आते ही मनकी अवस्था विचलित हो उठती है, श्वासोच्छ्वास तीव्र हो उठता है, हृदय विक्षुब्ध हो उठता है। यह अवस्था आत्मिक विकासके विपरीत है। आत्मिक उन्नतिके लिये शान्ति, प्रसन्नता, प्रेम और सद्भाव चाहिये।

जो व्यक्ति क्रोधके वशमें है, वह एक ऐसे दैत्यके वशमें है, जो न जाने कब मनुष्यको पतनके मार्गमें ढकेल दे। क्रोध तथा आवेशके विचार आत्मबलका ह्रास करते हैं!

क्रोधका स्वास्थ्यपर प्रभाव

स्वास्थ्यका मनसे अकाट्य सम्बन्ध है। उत्तम स्वास्थ्यका मनकी शान्ति, उत्साहपूर्ण, आशावादी, सचेष्ट सत्-प्रेरणा तथा शुद्ध मनःस्थितिसे सम्बन्ध होता है। हमारी आन्तरिक प्रेरणाएँ, भाव, स्वयंभू वृत्तियाँ और इच्छाएँ गुप्त मनद्वारा संचालित होती हैं। मनके अंदर ही पोषक तथा संजीवनी क्रियाओंकी उत्पत्ति होती है। गुप्त मनके संस्कार और अन्तःप्रेरणा शरीरमें पोषण-क्रिया रखती हैं। अन्तरके आदेश ही हमारी पाचनशक्तिको ठीक रखते, गुर्देको क्रियाशील

बनाते, यकृतका महत्त्वपूर्ण कार्य कराते हैं। मनको ठीक स्थितिमें रखने तथा उससे पूरा-पूरा काम लेनेकी शक्ति होनेके कारण ही मनुष्यका स्थान सब प्राणियोंसे ऊँचा है।

प्रकृतिका नियम यह है कि यदि भोजन शान्त अवस्थामें किया जाय तो उसका प्रभाव कल्याणकारी होगा, पर यदि वही भोजन करते समय आप खिंचे हुए हों तो इष्टका प्रभाव भी अनिष्ट हो जायगा, पेटभर भोजन न किया जा सकेगा। कमजोरी आयेगी, रक्त दूषित होगा, पाचनशक्तिमें निर्बलता आ जायगी। खाद्य पदार्थोंपर क्रोधके कारण दूषित प्रभाव पड़ता है।

कुदरत चाहती है कि हम शान्त रहें, प्रसन्न रहें और आशावादी बने रहें, मस्त और उन्मुक्त बने रहें—ऐसी निर्लिप्त अवस्थामें ही दूध, फल, तरकारी, अन्न इत्यादि अपना शुभ प्रभाव दिखाते हैं। मानसिक तनाव या उद्विग्न अवस्थामें अंदरके अंग-प्रत्यंग अपना कार्य उचित रीतिसे नहीं कर पाते। सद्विचारोंसे ज्ञान-तन्तु पुष्ट होते हैं, मनोविकारोंसे उनकी स्वाभाविक शक्ति ठंडी पड़ती है, प्राण-शक्तिका क्षय होता है, शरीर-यन्त्र गतिहीन हो जाता है, मनुष्य पशुतुल्य बन जाता है। भोजनके द्वारा स्वास्थ्य एवं जीवाणु-तत्त्व प्राप्त करनेके हेतु मनको उत्पादक स्थितिमें रखना बड़ा कल्याणकारी है।

उस व्यक्तिके स्वास्थ्यकी कल्पना कर सकना सरल है जो भोजन करते समय कुढ़ता रहता है। जिसके मुखसे कुत्सित शब्दोंका उच्चारण होता रहता है और जो नाक-भौं सिकोड़े मानसिक तनावकी अवस्थामें जल्दी-जल्दी भोजन ठूँस लेता है। उसे भोजनमें क्या स्वाद आयेगा? उससे कैसे पौष्टिक तत्त्व होंगे? भोजन अपना नैसर्गिक कार्य न कर सकेगा। ईर्ष्या और क्रोध दोनों दाहक हैं। देह और मनको जलाते हैं। मनुष्यको पनपनेका अवसर नहीं देते। क्रोधसे बनी विचार-मूर्तियाँ नीचे-ऊपर, मानस-पटलके प्रत्येक कोनेपर छा जाती हैं और उसे मोहाच्छन्न कर देती हैं। इन विचार-मूर्तियोंमें एक प्रकारका कम्पन होता रहता है तथा ये जैसी हैं वैसी ही किरणें निकलती रहती हैं। साथ ही जैसे ये विचार-मूर्तियाँ हमारे मानसिक जगत्में बनी हैं, वैसी ही, उसी क्षण जिसके निमित्त ये बनी हैं, उसकी ओर दौड़ जाती हैं।

क्रोधके समय आपका मुखमण्डल कैसा रहता है, जरा शीशेमें देखिये। कैसा मुख लाल हो जाता है, कटु शब्दोंका उच्चारण करनेसे शरीर काँपने लगता है, भुजाएँ फड़कने लगती हैं, भृकुटी चढ़ जाती है, नेत्र लाल हो जाते

हैं, होंठ चलने लगते हैं। मनमें उद्वेग, विकलता, गर्व, उग्रता, अमर्ष इत्यादि अनुभव उदय होते हैं। प्रत्येक मानसिक व्यापार या क्रियाका सम्बन्ध चेहरेके सौन्दर्यसे है। मनके विकारका प्रभाव शरीरके अवयवोंपर लक्षित होता है। जिस प्रकार समुद्रके धरातलपर आनेवाली सूक्ष्म तरंगोंका प्रभाव समूचे समुद्रपर पड़ता है, उसी प्रकार साधारणसे लेकर उन्नत एवं परिपुष्टतम विचार हमारी सूक्ष्म पेशियोंको प्रभावित किया करते हैं। मनके आदेशसे अनेक अहेतुक क्रियाएँ हम किया करते हैं।

क्रोध सौन्दर्यका शत्रु है। सौन्दर्यमें मनका शील, मधुरता, उत्तम स्वभाव, शुभ्र भावनाएँ आध्यात्मिक सजीवनता सम्मिलित हैं। सौन्दर्य एक आत्मिक गुण है। यदि हम आनन्दमयी वृत्तिमें रहेंगे, मनको शुभ कल्पनाओं, पूर्ण निर्दोष स्वास्थ्यमय शुभेच्छाओंसे भरा रखेंगे तो हमारे अन्तर्मनमें ये प्रविष्ट हो जायँगे। पुनः-पुनः इन्हीं शुभ भावनाओंका अभ्यास करनेसे ये हमारे मुखमण्डलपर प्रकट हो जायँगे। इसके विपरीत यदि हम क्रोधाग्निमें जलते रहेंगे तो अपकारक विकारों या गर्व, उग्रता, अमर्ष इत्यादि मानसिक विषोंसे भरे रहेंगे तो मुख भी विवर्ण हो जायगा, चेहरा रौद्र रूप धारण कर लेगा। ऐसी भयानक सूरत दिखाकर हम यह प्रकट करते हैं कि हमारे शरीरमें मानसिक उद्वेग हो रहा है।

क्रोधरहित होना उच्च जीवन, विचारशीलता और शुभ्र दैवी अन्तर्वृत्तिका परिचायक है। क्रोध कुत्सित है, अस्वाभाविक और पापयुक्त है। यह छल, कपट, नीचता, हिंसा, अधमता, लज्जा, अनीतिका जन्मदाता है, तमोगुणका आवरण उत्पन्न कर मनुष्यका दैविक और आध्यात्मिक अहित करनेवाला दुष्ट शत्रु है। यह वह विष है जो शरीरके अंगोंको बिगाड़ता, तेज, स्वास्थ्य, कान्ति, बल और आयुको क्षीण करता है। क्रोधमें अविवेक उत्पन्न होता है।

क्रोधके विषयमें श्री डॉ० बनारसीदास जैनके विचार यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। आप लिखते हैं कि—'क्रोध प्रबल हो जानेपर खूनमें एक प्रकारका विष पैदा हो जाता है जिससे क्रोधी मनुष्यको बहुत हानि होती है। यही कारण है कि क्रोधी प्रायः दुर्बल रहते हैं। क्रोधी मनुष्यका खून इतना जहरीला हो जाता है कि उसके खूनकी एक बूँद खरगोश आदि जीवोंके शरीरमें पिचकारीद्वारा डालनेसे उनकी दशा बड़ी खराब हो जाती है। जिस खरगोशके शरीरमें उसका प्रयोग किया जाता है वह दूसरे खरगोशको फाड़ खाता है और कभी-कभी मरतक जाता है। इसीसे क्रोध आत्मघातके तुल्य है। क्रोधमें

आकर मनुष्य ऐसे-ऐसे काम कर डालता है कि जिससे उसे बादमें पछताना पड़ता है तथा संताप सहना पड़ता है।

क्रोधी मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं रह सकता। उसका चेहरा पीला पड़ जाता है। शरीर सूखकर काँटा हो जाता है। पाचन-शक्ति तो बिलकुल ही बिगड़ जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर रोगोंका घर बन जाता है। क्रोधी मनुष्यकी नाड़ीकी गति तेज हो जाती है। रगें ऊपरकी ओर खड़ी हुई दिखायी देती हैं। क्रोधावेशमें वह दाँत पीसने लगता है, उसकी साँस जल्दी-जल्दी चलने लगती है, भौंहें और हाथ सिकुड़ने लगते हैं। उसका शरीर रोमांचित हो जाता है, वाणी बदल जाती है, चेहरा लाल हो जाता है, जबान खुश्क हो जाती है और खूनमें गरमी पैदा हो जाती है। हारवर्ड मेडिकल कॉलेजके प्रोफेसर डॉ० वाल्टर केनिन लिखते हैं कि—'मनुष्यके दोनों गुर्दोंके ऊपर चनेके बराबर दो छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमेंसे एक प्रकारका पदार्थ निकलता है जिसे एड्रेनलिन कहते हैं। यह पदार्थ जब खूनमें मिलकर जिगरमें पहुँचता है तो वहाँ जमे हुए ग्लाईकोजनको शक्करमें बदल देता है। यह शक्कर खूनमें मिलकर नाड़ियोंद्वारा शरीरके तमाम हिस्सोंमें पहुँच जाती है जो रग और पुट्ठोंमें बहुत खिंचावट पैदा करती है।'

क्रोधसे बचनेके उपाय

क्रोधसे बचनेका स्थायी और वास्तविक उपाय तो यही है कि हम क्रोधके कारणको मालूम करनेकी कोशिश करें। क्रोधका आरम्भ या तो मूर्खतासे या दुर्बलतासे अथवा मानव-स्वभावसे अनभिज्ञताके कारण होता है। जब कोई व्यक्ति हमारा कहना नहीं मानता या हमारी इच्छाके विरुद्ध काम करता है तो हम आपेसे बाहर हो जाते हैं और उसपर बेतहाशा बरस पड़ते हैं। हम यह समझनेकी तकलीफ ही नहीं करते कि हमें दूसरोंको अपने इच्छानुसार चलानेका क्या अधिकार है। हम अपने प्रतिदिनके अनुभवसे भली प्रकार जान सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्यकी वृत्ति दूसरे मनुष्यसे भिन्न होती है। ऐसी हालतमें सभी मनुष्य एक ही लाठीसे कैसे हाँके जा सकते हैं। मनोविज्ञानके इस अटल सिद्धान्तको समझ लें तो हम बहुत हदतक क्रोधके चंगुलसे बच सकते हैं और आनन्दसे जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

आत्मप्रेरणा तथा महत्त्वाकांक्षाओंके चित्र

'मैं कुछ वर्षसे आपके आत्मप्रेरक लेख पत्र-पत्रिकाओंमें पढ़ रहा हूँ पर फिर भी मुझे क्षणिक साहस और धैर्यके पश्चात् निराशा और उदासीके दौरे-से पड़ते रहते हैं। उन्नीस वर्षका होकर भी मैं गुपचुप मनमें कुछ हीनता और कमजोरीकी भावनाका अनुभव करता हूँ। मैं नये मित्र नहीं बना पाता, सदा उदास रहता हूँ और चिन्ता मुझे व्यग्र रखती है। मेरी कोई महत्त्वाकांक्षा पूर्ण नहीं होती दीखती। बतलाइये मैं क्या करूँ?'

हमारे एक पाठकका पत्र आपके समक्ष है। अधिकांश व्यक्तियोंको कभी-न-कभी इसी प्रकारकी क्षणिक दुर्बलता, उदासी और निराशाका अनुभव हुआ करता है। यदि हम यह जान लें कि ऐसी मनोदशा केवल हमारी ही नहीं, अन्य व्यक्तियोंकी भी है तो हम इस साधारणीकरणद्वारा अपनी मनोव्यथा बहुत कुछ हलकी कर सकते हैं। यदि हम यह समझते रहें कि केवल हमपर ही दुःखका यह पर्वत फट पड़ा है, तो निश्चय ही हम रोते रहेंगे; हीनत्वकी भावना अधिकाधिक हमारे पल्ले पड़ेगी। प्रायः सभीपर ऐसी दुःखद अवस्था आती है, यह विचार हमारे दुःखभारको हलका करनेवाला है। इससे वेदनाकी पीड़ा कुछ कम होती है।

हम चिन्ता और उदासीको इसलिये नापसंद करते हैं, क्योंकि ये नकारात्मक रीति (Negative way)-से हमें सोचने-विचारने, अतीतकी शूलमयी स्मृतियोंमें उलझनेमें मदद करते हैं। उस व्यक्तिके ऊपर हमें तरस आनी चाहिये जो अपने अनिष्टकी कल्पनाओंके नरकमें निवास करता है। यह भ्रान्ति तब उपस्थित होती है, जब मनुष्य अपने उच्च आदर्शों और महत्त्वाकांक्षाओंको मानस नेत्रोंसे दूर कर देता है। यदि आत्मप्रेरक विचारों, उपयोगी सुझावों तथा जीवनमें करनेयोग्य महत्त्वपूर्ण कार्योंका एक चित्र, चार्ट या नक्शा (Treasure Map) तैयार किया जाय और सदा हमारे नेत्र चलते-फिरते, उठते-बैठते उसपर पड़ते रहें तो ये प्रेरक विचार हमारे गुप्त मनमें दृढ़तापूर्वक स्थायीरूपसे जम जाते हैं। नकारात्मक संकेतोंका दूषित प्रभाव उनपर नहीं पड़ता। जिस प्रकार आपको शारीरिक रोग दूर करनेके हेतु औषधालयकी दवा कई दिन बादतक चालू रखनी पड़ती है कि शरीरके विषैले कीटाणु मर जायँ, उसी प्रकार हमें नक्शे, चार्ट या चित्रके रूपमें प्रेरक

विचार घरमें यत्र-तत्र (पूजागृहमें विशेषरूपसे) रखने चाहिये जिससे वातावरण प्रेरक, महत्त्वाकांक्षी, शक्तिपूर्ण और उत्साहवर्द्धक रहे। जैसे ही जिधरको नेत्र फिरें, हमारी दृष्टि आत्मप्रेरक चार्ट अथवा चित्रपर पड़े। ये भव्य विचार हमारे शरीरके कण-कणमें विद्युत्की भाँति समा जायँ। हम ऐसा अनुभव करें, मानो परमात्माका दिव्य अंश हमारे रोम-रोममें प्रविष्ट हो रहा है; श्वास-श्वासमें रमकर रक्तमें प्रवाहित हो गया है।

एक आत्मवादीका आत्मप्रेरक चार्ट इस प्रकार है—

'मैं अभय हूँ, मैं बलवान् हूँ, मैं साहसी हूँ, मैं आरोग्य हूँ, मैं आनन्दमय हूँ, मैं ज्ञान हूँ, मैं विजय हूँ, मैं सफलता हूँ, मैं प्रेम हूँ, मैं सच्चिदानन्दरूप हूँ और नित्य मुक्त स्वभाववाला हूँ। ऋद्धि, सिद्धि, विजय, लक्ष्मी मेरी दासी हैं। मैं सर्वशक्तिसम्पन्न हूँ।'

यह चित्र आपने दीवालपर लगा रखा है। अब जब आप घरमें प्रविष्ट होंगे, तुरंत आपका सम्बन्ध इन शब्दोंके पीछे रहनेवाले दिव्य साहसी भावोंसे हो जायगा। ये शब्द आपके गुप्त मनमें पैठकर साहसी स्वभावकी सृष्टि करेंगे। इन शब्दोंको तो बार-बार दृढ़तासे उच्चारण करना ही चाहिये, साथ ही मनमें भावके साथ अपनी तद्विषयक कल्पनाके चित्र भी खींचने चाहिये। जब आप कहें—'मैं अभय हूँ' तो मनमें अपनेको एक परम साहसी, बली, शक्तिमान्, बलवान् व्यक्तिके रूपमें देखिये। जब 'आनन्दमय' कहें तो मनमें एक शान्तिपूर्ण मुखमुद्रासे हँसते हुए, मीठी मुसकान बिखेरते हुए व्यक्तिका मानस चित्र लाइये। जब आप 'सफलता' का विचार लायें तो अपनेको उसी अवस्थामें देखनेका भी अभ्यास करते चलें। मनकी भावना वैसे ही चित्रके रूपमें आनेसे अधिकाधिक दृढ़ होती है और हम साहसपूर्ण आत्मप्रेरक विचारोंको विस्मृत नहीं कर पाते। इन आत्मप्रेरणाओंमें रमण करते समय अपने प्रति अविश्वासके भाव मनमें प्रविष्ट न होने दें। हठपूर्वक दिव्य प्रेरणाओंमें निवास करें।

कुछ आत्मप्रेमीगण गायत्री, आरती, राम-राम या ॐके चित्र खरीदकर घरकी शोभावृद्धि किया करते हैं। यह उत्तम वातावरण निर्माण करनेका एक अच्छा उपाय है। इनपर दृष्टि पड़नेसे उत्तम भावनाएँ स्वयं दृढ़ होती हैं। संकल्प शुद्ध और बुद्धि निर्लिप्त होती है।

पाश्चात्त्य देशोंमें इसे 'ट्रेजर मैप' कहकर पुकारते हैं। प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी एक कागजपर भिन्न-भिन्न शब्द काटकर चिपकाता जाता है।

तसवीरें चिपका लेता है और इस नक्शेको उस स्थानपर टाँगता है जहाँ उसकी दृष्टि उसतक पहुँचती और गुप्तरूपसे उन शब्दोंके पीछे रहनेवाले विचारोंको ताजा बनाये रखती है। वहाँ शीशेके एक कोनेपर इन प्रेरक संकल्पोंको चिपकानेकी भी प्रथा है। उनके 'ट्रेजर मैप' बड़े सुन्दर होते हैं। ये हमारी महत्त्वाकांक्षाओंको सदा चेतनाकी सतहपर रखते और उन्नत जीवनके लिये प्रेरित किया करते हैं। नेत्रोंके सम्मुख पुनः-पुनः आनेसे वे ही दिव्य विचार सांसारिक व्यापारोंसे मनको हटाकर साहस और सामर्थ्यकी वृद्धि करते और आध्यात्मिक व्यक्तित्वकी भावनाको दृढ़ करते हैं। जब सदा-सर्वदा शुभ, सत्य और सुन्दर विचार मानसमें बसते हैं, तब वैसा ही मानसिक संस्थान बन जाता है; वही भाव सर्वत्र—भीतर-बाहर झलकता है। घातक विचारोंकी धाराएँ फीकी पड़ जाती हैं और साहस, निर्भयता, प्रेम, दया, मैत्रीभावनाकी दिव्य धाराएँ समस्त मानसिक केन्द्रोंसे प्रवाहित होने लगती हैं।

प्रेम, दया, मैत्री, साहस, निर्भयता, मधुरता, प्रसन्नता आदि रचनात्मक या निर्माणकारी धाराएँ हैं। इसके विपरीत क्रोध, लोभ, कायरता, भय, घृणा, द्वेष, विषाद, ध्वंसात्मक या विनष्टकारी विषैली धाराएँ हैं। 'ट्रेजर मैप' सामने रहनेसे हमारी सर्जनात्मक धारा सशक्त रहती है और भव्य विचारकी सूक्ष्म विचारतरंगें उन्नत वातावरणकी सृष्टि करती हैं। हम स्पष्ट मानसिक चित्र बनाकर अपनी परिस्थितियोंमें आश्चर्यजनक वृद्धि कर लेते हैं।

मूर्तरूपमें आत्मप्रेरणाएँ अपने चर्म-चक्षुओंके समक्ष रखनेसे हम अपने दिव्य और साहसी स्वरूपको सदा चेतनाकी सतहपर रख पाते हैं। अतः दीवारोंपर, शीशेपर अथवा चित्रोंके रूपमें यत्र-तत्र प्रेरक आत्म-प्रेरणाएँ लिखकर सदा उनमें रमण करते रहना आत्मोन्नतिका एक साधन है। गायत्री-मन्त्र तथा भगवान्‌की आरतीके चित्र नेत्रोंके सम्मुख रहनेसे दिव्य भावोंकी तरंगें मनमें फैलती रहती हैं।

मौन—वाणी और मनका संयम

हिंदू-शास्त्रोंमें इन्द्रिय-व्यापारोंको संतुलितकर काम, राग, द्वेष आदि विकारोंसे मुक्तिके हेतु मौनका विशेष महत्त्व है। जिस प्रकार उपवासद्वारा शरीरकी शुद्धिका विधान है, उसी प्रकार मौन रखकर वाणीकी शुद्धिका विधान रखा गया है। हमारी जिह्वा रात-दिन कैंचीकी तरह चलती है; हम निरन्तर अच्छा-बुरा, सच-झूठ उच्चारण करते रहते हैं। दूकानदार, वक्ता, अध्यापक, उपदेशक, वकील जिसे देखिये मतलब-बेमतलब बातें उच्चारण करता है। स्त्रियाँ तो शोर मचाने और व्यर्थकी बकवाद करनेके लिये बदनाम हैं। उनकी बोलनेकी इन्द्रिय कभी विश्राम नहीं करती। परस्पर एक दूसरेकी आलोचना, पर-छिद्रान्वेषण, चुगली, असंयत उक्तियाँ निरन्तर उनके मुखसे झड़ती रहती हैं। आजका मानव निष्प्रयोजन बातचीतमें बहुत-सा समय यों ही नष्ट कर रहा है। व्यर्थका बकवास शक्तिका अपव्यय है। अतः जीवनमें मौन-धारणका महत्त्व अत्यधिक है।

'मौन' की गणना मनके पाँच तपोंमें की गयी है—

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

अर्थात् मनकी प्रसन्नता, सौम्य-स्वभाव, मौन, मनोनिग्रह और शुद्ध विचार—ये मनके तप हैं। इनमें मौनका स्थान मध्यमें है। मनके परिष्कार तथा संयमके लिये पहले मनकी प्रसन्नता धारण की जाय, सौम्यता धारण की जाय, तत्पश्चात् मौनका प्रयोग किया जाय। इसके प्रयोगसे मनोनिग्रह और शुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं। मनका परिष्कार होता है। इन्द्रिय तथा मनकी शुद्धिमें मौन एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इससे इन्द्रियोंकी भागदौड़, मनकी चंचलता और व्यर्थ चिन्तनसे मुक्ति प्राप्त होती है।

मनोविज्ञानका नियम है कि हम जो अच्छा या बुरा उच्चारण करते हैं, वैसा ही पहले मनमें सोचते हैं। वह पहले विचाररूपमें हमारे मनमें उदित होता है। अतः व्यर्थकी बकवाद करते रहनेसे मन अनेक निष्प्रयोजन विचारोंसे परिपूर्ण हो उठता है। अपने मानसिक जीवनपर दृष्टि डालिये, देखिये—कितने व्यर्थके विचार, शंकाएँ, थोथी चिन्ताएँ उदित होती हैं। ये क्षणिक और काल्पनिक विचार वाचालता उत्पन्न कर देते हैं। वाचाल समय-कुसमयका विचार न कर हर समय कुछ-न-कुछ व्यर्थ बोलता रहता है। मौनसे वाणी

और मन दोनोंको शान्ति प्राप्त होती है। वाक्-इन्द्रियका संयम करनेसे मनको भी शान्ति प्राप्त होती है, आत्मा विश्राम प्राप्त करती है।

जो व्यक्ति जितना अधिक बोलता है, उसमें तथ्यकी बात भूसेमें गेहूँके एक दानेके समान होती है। बकवादोंमें गम्भीर दृष्टिका अभाव होता है; क्योंकि उसका मन, मस्तिष्क और जिह्वा थक जाती है। वह पापपूर्ण और व्यर्थकी बातोंमें अटक जाता है। इससे शक्तिका अपव्यय होता है और बेहूदा मनोरंजनको आश्रय मिलता है।

मौनके दो प्रकार हैं। एक तो जिह्वासे कुछ भी न उच्चारण करना, दूसरे मनकी गतिको भी रोक देना। वाणीसे कम बोलनेका अभ्यास धीरे-धीरे करना पड़ता है। जो अधिक बोलते हैं, वे धीरे-धीरे कम करें; सारयुक्त बातें उच्चारण करें तथा आवश्यकताके समय ही चुने हुए शब्दोंमें बोलनेका अभ्यास करें। पहले मनमें वृथा बोलनेका प्रलोभन होगा, दूसरोंकी बातोंमें हस्तक्षेप करनेकी इच्छा होगी; किंतु धीरे-धीरे जरूरतके अनुसार बोलनेका अभ्यास होता जायगा। केवल आवश्यकताके समय ही चुने हुए सारयुक्त शब्दोंका प्रयोग करनेवाला साधक भी वाणीको वशमें रखनेवाला कहा जायगा। वह अपनी बहुत-सी शक्तिको अपव्यय होनेसे बचा सकेगा।

किंतु केवल वाणीसे शब्दोंका उच्चारण मात्र न करना मौन नहीं है। यह तो एक अधूरी-सी बात है। यदि मनकी चंचलता दूर न की जाय, उसे शान्त स्थिर संतुलित गम्भीर न बनाया जाय तो मौनव्रत पूर्ण नहीं होता। अतः पूर्ण मौनमें वाणीके साथ-साथ मनकी स्थिरता, मनमें व्यर्थ चिन्तनका अभाव, आत्म-तत्त्वपर एकाग्रता, अन्तर्मुखी होना भी अनिवार्य है। मनको विवेकके अनुशासनमें करना अनिवार्य है।

यथासम्भव चुप रहकर मौनका अभ्यास करें। धीरे-धीरे बकवास करनेकी आदतसे मुक्त हो सकते हैं। सतत अभ्यास और मनकी एकाग्रता अपने उद्देश्यके प्रति सचाई और सतत उसीका ध्यान मौनके सहायक हैं। व्यर्थके विचार मनसे निकालकर आनन्दकन्द प्रभुका ध्यान करना चाहिये।

मौनावस्थामें आत्मसंकेतका प्रयोग

मौन धारण करना है तो कठिन, किंतु है बड़ा लाभप्रद। मौनमें संकेतका स्थान भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मौनमें ऐसी क्रिया होती है, जो सूक्ष्म होनेके

कारण देखनेमें तो नहीं आती पर हृदय एवं मनका कार्य होनेसे अत्यन्त महत्त्वकी होती है। मौनमें साधक सच्चिदानन्द परमात्माके चिन्तनमें तल्लीन हो जाता है, जिससे उसके हृदयमें परमात्माके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और श्रद्धासे जिज्ञासाका जन्म होता है।

जिज्ञासा आलस्य नहीं है, प्रत्युत वह हृदयकी महत्त्वाकांक्षा है और मनका प्रबल उद्वेग है। जिज्ञासु परमात्माको जानना चाहता है, अपनी आत्माके वास्तविक स्वरूपसे परिचित होना चाहता है। संकेत वह साधन है जिससे वह अपने कार्यमें सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इसीसे मौनमें संकेतका स्थान है।

संकेतोंका स्थूलरूप चिह्न है और सूक्ष्मरूप विचार है, जिनसे किसी सत्यका निरूपण किया गया है। हमें अपने दैनिक जीवनमें नित्य इसके प्रभावोंका अनुभव हुआ करता है। हम हँसमुख सूरतको देखकर हँस पड़ते हैं और रोनी सूरतको देखकर रो देते हैं। ऐसे ही हर्षके विचारोंसे हर्षित होते हैं और दु:खके विचारोंसे दु:खित होते हैं। हम संकेतोंका प्रयोग भी करते हैं, परंतु हमारे प्रयोग वैज्ञानिक नहीं होते और इसलिये उनसे हमको इतना लाभ नहीं होता जितना कि होना चाहिये। फ्रांसके प्रसिद्ध डॉक्टर क्यू (Cue)-ने उनको वैज्ञानिक रूप प्रदान किया है जिससे रोगियोंको विशेष लाभ पहुँच रहा है। आध्यात्मिक उन्नतिमें भी इन संकेतोंसे बहुत सहायता प्राप्त हो सकती है।

मौनमें जिन संकेतोंका प्रयोग किया जाता है उनका रूप सूक्ष्म होता है। वे विचारात्मक होते हैं। इन संकेतोंकी प्राप्ति हमें तीन प्रकारसे होती है—

१-दूसरोंके कथित अथवा लिखित विचारोंसे।

२-अपने विचारोंसे, जिनमें किसी विशेष इष्ट-सिद्धिके लिये मानसिक कल्पनाद्वारा किसी विशेष सत्यका निरूपण किया गया है।

३-अन्तरात्माकी प्रेरणासे।

इनमें अन्तिम प्रकारके संकेत सबसे बलिष्ठ और शीघ्र फलप्रद होते हैं। औरोंके विचारोंसे जो संकेत हमें प्राप्त होते हैं, वे तबतक फलित नहीं होते जबतक कि हम उनके अर्थोंको भली प्रकार न समझ लें। जब हम उनके अर्थोंको भलीभाँति समझ लेते हैं, तब वे उपयुक्त फल प्रदान करते हैं। यदि वे विचार किसी आप्त पुरुषके हैं, जिसके ऊपर हमारा विश्वास है तो हमारा हृदय उन विचारोंको तुरंत ग्रहण कर लेता है। अत: फलकी प्राप्ति भी तुरंत हो जाती है। उपर्युक्त संकेतोंसे जो संकेत हम अपने विचारोंसे उपस्थित करते हैं उनको हमारी आत्मा अधिक शीघ्र ग्रहण करती है। कारण हम उनको अपना

मानते हैं जिससे न हमको उनके अर्थोंके समझनेकी आवश्यकता होती है और न विश्वास करनेका कोई प्रयोजन होता है। परंतु यदि यह 'अपना मानना' केवल हमारी मानसिक कहानीका परिणाम है तो इससे कोई काम न चलेगा। हमें अपने अभीष्टके अर्थोंको समझना पड़ेगा और बुद्धिसे उनका निश्चय करना होगा। तब हमारे विचार युक्तियुक्त और स्वाभाविक बन पड़ेंगे। जिनको हमारी आत्मा स्वीकार कर सकेगी और हमारा काम बन पड़ेगा।

परंतु तर्कसिद्ध विचार अभीष्ट-सिद्धिके लिये गारंटी नहीं है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि सफलता सत्यपर निर्भर रहती है। हमारे संकेत जितने ही सत्यके अनुकूल होंगे, उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त करना हमारे लिये सम्भव होगा।

परमात्मा सर्वव्यापक हैं और सर्वशक्तिमान् हैं। उनकी सत्तासे हमारी सत्ता है और उनकी शक्तिसे हमारी शक्ति है। वह एक हैं अतः हम सब भी एक हैं। यदि हममें विचार इस महासत्यके अनुकूल हैं तो उनका फलीभूत होना निश्चित है और तदनुकूल इष्टसिद्धि अवश्यमेव होगी। कारण यह है कि उस समय परमात्माकी अनन्त शक्ति हमारी सहायता करेगी और सत्य स्वयं बिना प्रकट हुए रहेगा नहीं, चाहे बाह्य परिस्थितियाँ प्रतिकूल ही क्यों न हों। अतएव ऐसे सत्यको हमें अपने विचारोंका आधार बनाना पड़ेगा।

इन विचारोंसे जो संकेत प्राप्त होंगे वे सत्यप्राप्तिके साधन होंगे। सम्भव है कि इन प्रयोगोंको करते समय हम श्रमसे क्लान्त हो जायँ। उस समय हमें धैर्य और विश्वाससे काम लेना पड़ेगा। धैर्यपूर्वक प्रयोगोंके क्रमको जारी रखना होगा और विश्वाससे यह निश्चय करना होगा कि हमारा कार्य परमात्माका दिव्य कार्य है तथा सत्यके नियमोंके अनुसार है, इसलिये उसकी सिद्धि अवश्य होगी।

ऐसा करनेसे हममें नवीन शक्ति और नवजीवनका संचार होगा। हमें नूतन प्रेरणा मिलेगी। हमारे प्रयोग अधिक सजीव, सबल होंगे। मौन पूर्णरूपसे आशामय बन जायगा। हम अपने-आपको परमात्माके निकट पहुँचता हुआ प्रतीत करेंगे। उसके निकट सामीप्यको प्राप्त करते जायँगे; यहाँतक कि हममें और उनमें कोई भेद-भाव न रहेगा और सम्पूर्ण जगत्में परमात्माका—हमारी आत्माका प्रकाश पूर्णरूपसे दिखायी देगा। तब संकेतोंके सदुपयोगकी पराकाष्ठा होगी और उनका कार्य पूर्ण होगा।

आप निराश न हों

आनन्दकन्द परमेश्वरकी यह विशाल सृष्टि आनन्दमूलक है। सच्चिदानन्द भगवान् ही सर्वत्र प्रकट हो रहे हैं। उन आनन्दघनका आनन्दमय ज्ञान प्रत्येक वस्तुसे विकसित हो रहा है। भगवान् अपने आनन्दमय स्वरूपका सर्वत्र प्रसार कर रहे हैं। जब इस जगत्के निर्माण-कर्ताका प्रधान गुण आनन्दका प्रसार करना है, तब संसारमें आनन्दके अतिरिक्त अन्य क्या हो सकता है। प्रातःकाल हँसता हुआ सूर्य उदित होकर संसारको स्वर्ण-रश्मियोंसे स्नान करा देता है, शीतल-सुगन्धित वायु मस्ती बिखेरती फिरती है, पक्षीवृन्द आनन्दसे सने गीत गा-गाकर सृष्टिकर्ताकी उत्कृष्ट कलाका प्रकटीकरण करते हैं। विशाल नदियाँ कल-कल शब्द कर आनन्द बढ़ाती हैं। पुष्पोंपर गुंजारते हुए मदमाते भ्रमर आनन्दके गीत सुनाकर हृदय शान्त करते हैं। पृथ्वीका अणु-अणु सुख, ऐक्य, समृद्धि और प्रेमकी शक्तिको प्रवाहित कर रहा है। प्रत्येक वस्तु जीवनको स्थायी सफलता और पूर्ण विजयसे विभूषित करनेको प्रस्तुत है। ऐसी सुन्दर सृष्टिमें जन्म पा लेना सचमुच बड़े भाग्यकी [illegible] है। सतत तप, पुण्य इत्यादिके उपहारस्वरूप यह दुर्लभ मानव-जीवन इसलिये प्राप्त होता है कि हम इससे पूर्ण आनन्दका उपभोग कर जन्म-जन्मकी साध पूरी कर सकें, फिर बतलाइये आप निराश क्यों हैं?

निराशावाद उस महाभयंकर राक्षसके समान है जो मुँह फाड़े हमारे इस परम आनन्द जीवनके सर्वनाशकी ताकमें रहता है, जो हमारी समस्त शक्तियोंका ह्रास किया करता है, जो हमें आध्यात्मिक पथपर अग्रसर नहीं होने देता और जीवनके अन्धकारमय अंश हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया करता है। हमें पग-पगपर असफलता-ही-असफलता दिखाता है और विजयद्वारमें प्रविष्ट नहीं होने देता।

इस बीमारीसे ग्रस्त लोग उदास-खिन्न मुद्रा लिये घरोंके कोनेमें पड़े दिन-रात मक्खियाँ मारा करते हैं। ये व्यक्ति ऐसे चुम्बक हैं जो उदासीके विचारोंको निरन्तर अपनी ओर आकर्षित किया करते हैं और दुर्भाग्यकी कुत्सित डरपोक विचारधारामें निमग्न रहा करते हैं। उन्हें चारों ओर कष्ट-ही-कष्ट दीखते हैं। कभी यह, कभी वह, एक-से-एक भयंकर विपत्ति आती हुई दृष्टिगोचर होती है। वे जब बातें करते हैं तो अपनी यन्त्रणाओं और विपत्तियोंका क्लेशपूर्ण

अभद्र प्रसंग छेड़ा करते हैं। हर व्यक्तिसे वे यही कहा करते हैं कि 'भाई, हम क्या करें, हम कमनसीब हैं, हमारा भाग्य फूटा हुआ है, दैव हमारे विपरीत है, हमारी किस्मतमें विधिने ठोकरोंका ही विधान रखा है तभी तो हमें थोड़ी-थोड़ी दूरपर लज्जित और परेशान होना, अशान्त, क्षुब्ध और विक्षिप्त होना पड़ता है।' उनकी चिन्तित मुख-मुद्रा देखनेसे यही विदित होता है मानो उन्होंने उस पदार्थसे गहरा सम्बन्ध स्थिर कर लिया हो जो जीवनकी सब मधुरता नष्ट कर रहा हो, उनके सोने-जैसे जीवनका समस्त आनन्द छीन रहा हो, उन्नतिके मार्गको कण्टकाकीर्ण कर रहा हो। मानो समस्त संसारकी दुःख-विपत्ति उन्हींके सिरपर आ पड़ी हो और उदासीकी अन्धकारमयी छायाने उनके हृदय-पटलको काला बना दिया हो।

इसके विपरीत आशावाद मनुष्यके लिये अमृत-तुल्य है। जैसे तृषितको शीतल जलसे, रोगीको ओषधिसे, अन्धकारको प्रकाशसे, वनस्पतिको सूर्यसे लाभ होता है, उसी भाँति आशावादकी संजीवनी बूटीसे मृतप्राय मनुष्यमें जीवन-शक्तिका प्रादुर्भाव होता है। आशावाद वह दिव्य प्रकाश है जो हमारे जीवनको उत्तरोत्तर परिपुष्ट, समृद्धिशाली और प्रगतिशील बनाता है। सुख, सौन्दर्य एवं सफलताकी अलौकिक छटासे उसे विभूषित कर उसका पूर्ण विकास करता है। उसमें माधुर्यका संचार कर विघ्नबाधा, दुःख, क्लेश और कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त करानेवाली गुप्त मनःशक्ति जाग्रत् करता है। आत्माकी शक्तिसे देदीप्यमान आशावादी आशाका पल्ला पकड़े प्रलोभनोंको रौंदता हुआ अग्रसर होता है। वह पथ-पथपर विचलित नहीं होता, उसे कोई बात असम्भव प्रतीत नहीं होती, उसे कोई कार्य असम्भव नहीं जान पड़ता, उसे कोई पराजित नहीं कर सकता, संसारकी कोई शक्ति उसे नहीं दबा सकती; क्योंकि सब शक्तियोंका विकास करनेवाली 'आशा' की शक्ति सदैव उसकी आत्माको तेजोमय करती रहती है।

संसारके कितने ही व्यक्ति अपने जीवनको उचित, श्रेष्ठ और श्रेयके मार्गपर नहीं लगाते। वे किसी एक उद्देश्यको स्थिर नहीं करते, न वे अपने मानसिक संकल्पको इतना दृढ़ ही बनाते हैं कि अपने प्रयत्नोंमें सफल हो सकें। सोचते कुछ हैं, करते कुछ और हैं। काम किसी एक पदार्थके लिये करते हैं, आशा किसी दूसरेकी ही करते हैं। करीलके वृक्ष बोकर आम खानेकी अभिलाषा रखते हैं। हाथमें लिये हुए कार्यके विपरीत मानसिक भाव

रखनेसे हमें अपनी निर्दिष्ट वस्तु कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। बल्कि हम इच्छित वस्तुसे और भी दूर जा पड़ते हैं। तभी तो हमें असफलता, लाचारी, तंगी, क्षुद्रता प्राप्त होती है। अपनेको भाग्यहीन समझ लेना, बेबसीकी बातोंको लेकर झींकना और दूसरोंकी इष्ट-सिद्धिपर कुढ़ना हमें सफलतासे दूर ले जाता है, विरोधीभाव रखनेसे मनुष्य उन्नत अवस्थामें कदापि नहीं पहुँच सकता। संसारके साथ अविरोधी रहिये, क्योंकि विरोध संसारकी सबसे उत्कृष्ट वस्तुओंको अपने निकट नहीं आने देता और अविरोध उत्कृष्ट वस्तुओंका एक आकर्षक बिन्दु है।

तुम्हारे भाग्यमें आशावादका स्वर्ग आया है न कि निराशावादका नरक। तुम अपनी जीवन-यात्रामें मन्दगतिसे घिसटते हुए पशुवत् पड़े रहनेके लिये जगत्‌में प्रविष्ट नहीं हुए हो। अपनेको अशक्त—असमर्थ माननेवाले डरपोक व्यक्तियोंकी श्रेणीमें तुम नहीं हो। तुम दुर्बल अन्त:करणवाले निराशावादियोंकी तरह नि:सार वस्तुओंके कुत्सित चिन्तनमें निष्प्रयोजन अपनी शक्तियोंका अपव्यय नहीं करते। संसारमें तुम उस महान् पदपर आसीन होगे जिसपर संसारके अन्य प्रतापी पुरुष होते आये हैं। अभी तुम इस स्थितिमें पड़े हो तो क्या, शीघ्र ही उच्चतम विकासके दिव्य प्रदेशमें तुम प्रविष्ट होनेवाले हो। तुम सर्वेश्वरके पवित्र अंश हो और तुम्हें प्रकृतिने अपनी इष्ट-सिद्धिके लिये पर्याप्त साधन और सामर्थ्य प्रदान किये हैं। तुम एक बार प्रयत्न तो करो।

मनुष्यका स्वभाव ज्यों-ज्यों आत्मिकभाव और आत्मिक जीवनकी अभिवृद्धि करता है, त्यों-त्यों उसमें सामर्थ्य भी बढ़ते जाते हैं। जैसे-जैसे आप अपने शरीरके अंग-प्रत्यंगोंमें छिपे सामर्थ्योंको प्रकट करेंगे—आविष्कार करेंगे—वैसे-वैसे विशेषरूपसे महान् बनते जायँगे। उच्च विचारोंद्वारा जितने अंशोंमें आप अपने जीवनका विकास कर सकेंगे, उतने ही अंशोंमें उसका यथार्थ उपभोग भी कर सकेंगे।

कहते हैं एक बार एक बड़े भारी व्यापारीकी पत्नी तार लिये दौड़ी हुई उसके कमरेमें, जहाँ वह बैठा व्यापारकी कुछ नवीन योजनाएँ सोच रहा था, आयी और हाँफते बोली— 'प्यारे! हमने सब कुछ खो दिया है। हमारे जहाज माल-असबाब इत्यादि डूब गये हैं, सारी उम्रके किये-करायेपर पानी फिर गया है, हमारी सब बहुमूल्य वस्तुएँ जा चुकी हैं। उफ, अब क्या होगा? हाय! हाय! हमें कौन पूछेगा?'

पतिने धैर्य दिखाते हुए कहा—'क्या तुम्हें भी मुझसे छीन लिया गया है?'

वह बोली—'पागलोंकी-सी बातें क्यों करते हो, मैं तो सदैव तुम्हारे पास हूँ।'

—और हमारी आदतें तो कहीं नहीं चली गयी हैं?

—नहीं! आदतें भला कहाँ जायँगी?

'तब तो निराश होनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। हमने अपनी आदतोंकी कमाई ही खो दी है। संसारकी सर्वश्रेष्ठ विभूतियाँ (आशावादिता, स्वास्थ्य, उत्साह, अध्यवसाय, परिश्रम और प्रेम) अब भी हमारे पास हैं। हम शीघ्र ही सब कुछ पुनः प्राप्त कर लेंगे, तुम धैर्य रखो।' कहते हैं कि कुछ ही वर्षों बाद उनका गृह पुनः धनधान्यसे पूर्ववत् पूरित हो गया। जब उनसे सफलताका रहस्य पूछा गया तो उन्होंने कहा, 'मैं कभी आशा नहीं छोड़ता, विपत्तिके काले बादलोंसे चिन्तित नहीं होता, वरं हँसते-हँसते उनका सामना करता हूँ। कठिनाई आनेसे निराशाका चिह्न मुखमण्डलपर दिखाना अच्छे-से-अच्छे मनुष्यको विफल बना सकता है।'

अनेक व्यक्ति थोड़ी-सी कठिनाई आनेपर अत्यन्त अस्त-व्यस्त हो जाते हैं, घबराने लगते हैं और ठोकर-पर-ठोकर खाते हैं। निराशा उनके जीवनको भार बना देती है। हमारी असफलताएँ अधिकांशमें निराशाके अभद्र विचारोंसे ही प्राप्त होती हैं और वे अयोग्य मन्त्रणाओं, भयपूर्ण कल्पनाओंके ही फल हैं। यदि हम पूर्णरूपसे कल्पनाको उत्तम वस्तुओंकी ओर चलाया करें और चिन्ता, दुर्बलता, शंका, निराशाके विचारोंसे हटाकर आशा और हिम्मतके उत्पादक वातावरणमें रखना सीख लें तो हमारे जीवनका स्रोत एक आनन्दमय जगत्में प्रवाहित होने लगे। निराशा एक भयंकर मानसिक रोग है। इससे मुक्ति पानेके लिये विचारोंका रुख बदलनेकी परम आवश्यकता है। धीरे-धीरे अपने हृदयमें नाउम्मीदी, कमजोरी और निराशाके भावोंके स्थानपर इनके प्रतिपक्षी—साहस, हिम्मत, सफलता और आशाके उत्साहवर्द्धक भावोंको जमाना चाहिये। उन्हें अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित करनेके लिये अपनी सत्-इच्छाओंका अभिनय-पार्ट अवश्य करना चाहिये। हम जिस कार्य, उद्देश्य या मनोरथमें सफलता लाभ करनेकी चेष्टा कर रहे हैं, उसका अभिनय भलीभाँति करें। यदि हम एक विद्वान् बननेकी चेष्टा कर रहे हों तो अपने-आपको एक विद्वान्‌की ही भाँति रखें, वैसा ही वातावरण एकत्रित करें, निराशा निकालकर

यह उम्मीद रखें कि मूर्ख कालिदासकी भाँति हम भी महान् बनेंगे। निराशा निकालकर हम इस अभिनयको पूर्ण करनेकी चेष्टा करें। हम अनुभव करें कि मैं विद्वान् हूँ, सोचें कि मैं अधिकाधिक विद्वान् बन रहा हूँ, मेरी विद्वत्ताकी निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है। हमारे व्यवहारसे लोगोंको यह ज्ञात होना चाहिये कि हम सचमुच विद्वान् हैं। हमारा आचरण भी पूर्ण विश्वासयुक्त हो। शंका, संदेह या निराशाका नाम-निशान भी न हो। अपने इस विश्वासपर हमें पूरी दृढ़ताका प्रदर्शन करना उचित है। यह अभिनय करते-करते एक दिन हम स्वयमेव अपने कार्यको पूर्ण करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेंगे।

जिस वस्तुको हमें प्राप्त करना है उसके लिये जितनी मानसिक क्रिया होगी, जितना उसकी प्राप्तिका विचार किया जायगा, उतनी ही शीघ्रतासे वह वस्तु हमारी ओर आकर्षित होगी। प्रत्येक वस्तु पहले मनमें उत्पन्न की जाती है, फिर वस्तु-जगत्‌में उसकी प्राप्ति होती है। हम अपने विषयमें अयोग्यताकी भावना रखते हैं, अतः उसी प्रकारकी हमारे अन्तःकरणकी सृष्टि होती जाती है। हमारी भयकी डरपोक कल्पनाएँ ही हमारे मनमें निराशाके काले बादलोंकी सृष्टि कर रही हैं। मनःस्थितिके ही अनुसार अन्य व्यक्ति हमसे द्वेष अथवा प्रेम करते हैं और संसारकी समस्त वस्तुएँ हमारे पास आकर्षित होकर आती या मुड़कर दूर भागती हैं।

तनिक विचार करें, एकलव्य यदि गुरु द्रोणके यहाँसे निराश होकर धनुर्विद्याका अभ्यास छोड़ देता और भ्रान्तिके विचारोंके सम्पर्कमें आकर क्षुब्ध हो जाता तो क्या वह सफलताको प्राप्त करानेवाली वांछनीय मनःस्थिति स्थिर रख सकता था। उसने निराशासूचक उनके शब्दोंको अपने अन्तःकरणकी स्थायी वृत्ति नहीं बनाया। उसके बलवान् मनपर भ्रान्तिका कोई विचार या संस्कार अपना प्रभाव न डाल [illegible]। दुर्बल व्यक्तिके चित्तपर ही प्रतिकूल प्रसंगका कुप्रभाव पड़ता है। संसारके मनुष्य, चारों ओरसे निकम्मे संदेहात्मक दरिद्र विचार लाकर उसके अन्तःकरणमें डालते हैं और उसकी सफलता, प्रसन्नता और उत्साहको छिन्न-भिन्न कर देते हैं। यदि हम दूसरोंकी निराशोत्पादक बातोंपर ध्यान न दें और उधरसे हमेशाके लिये मुख मोड़ लें, आशाके प्रकाशकी ओर रुख कर लें तो अल्पकालमें ही विकसित पुष्पकी भाँति आनन्दित हो सकते हैं।

जब हम निश्चय कर लेंगे कि 'मेरा निराशासे यावज्जीवन कोई सम्बन्ध

नहीं होगा, मुझे नाउम्मीदीसे कोई सरोकार नहीं है, मैं अबसे वस्त्र-भूषापर, शरीरपर, व्यवहारमें, अपने कार्योंमें निराशाका कोई चिह्न भी न रहने दूँगा, मैं पूर्ण शक्ति और मनोरथ-सिद्धिमें प्रवृत्त रहूँगा, निराशापूर्ण वातावरणसे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। मैंने तो अपनी मूल प्रवृत्ति ही उत्तम पदार्थोंकी ओर कर दी है। सफलता और मनोरथ-सिद्धि मेरे बायें हाथका खेल है, मुझे संसारकी कठिनाई अपने श्रेयके मार्गसे विचलित नहीं कर सकती।' तब याद रखें हमारे हृदयमें एक दिव्य शक्ति-शासनकर्ता शक्ति उत्पन्न होगी। आत्मश्रद्धा और स्वाभिमान प्रबल होने लगेंगे और हम आश्चर्यपूर्वक कहेंगे कि यह परिवर्तन न जाने क्योंकर हो गया? तब हम भी यही कहेंगे हि मनको आशापूर्ण, प्रकाशित, उत्साहित और प्रसन्न रखनेसे सफलता प्राप्त होती है, आशावाद ही सफलता प्राप्त कराता है।

'हमारे किये कुछ न होगा' ऐसा निराशावादी विचार सफलताका विघातक शत्रु होता है। आशावाद बहुत बड़ी उत्पादक शक्ति है, जीवनकी जड़ है। इसके अंदर प्रत्येक वस्तु निवास करती है। यह मानसिक क्षेत्रमें प्रविष्ट करते ही बड़ा लाभ पहुँचाती है। अत: जिसे नाउम्मेदीसे छुटकारा पानेकी आकांक्षा हो, उसे उचित है कि अपने मनकी स्थितिको उत्पादक, उत्साहपूर्ण, उदार, प्रवर्द्धक और उदात्त रखें।

तुम निराश इसलिये हो कि भयने और संदेहने तुम्हारे अन्त:करणपर अधिकार कर लिया है। तुम्हें अपनी योग्यताके प्रति अविश्वास हो गया है, तुम्हें सफलता और दुर्भाग्यकी मानसिक प्रवृत्तियोंने परास्त कर दिया है और हीनत्वकी भावनाने तुम्हारे मानसिक जगत्में तूफान लाकर तुम्हें अस्त-व्यस्त कर डाला है। विचारोंकी यह परवशता ही तुम्हें डुबो रही है। याद रखो—जबतक तुम किसी कार्यमें हाथ नहीं डालोगे, तबतक अपनी शक्तिका अनुमान कदापि न कर पाओगे। मनुष्य जबतक अपने-आपको यह न समझ ले कि वह कार्य करनेकी क्षमता रखता है, तबतक वह पंगु ही बना रहेगा। तुम्हें जो कुछ करना श्रेष्ठ जँचता है, जो कुछ तुम्हारी अन्तरात्मा कहती है, उसे दृढ़ संकल्पपूर्वक अवश्यमेव प्रारम्भ करो। डरो नहीं। शंका, संदेह या अविश्वासकी कोई बात न सोचो, बल्कि कार्य शुरू कर ही डालो। प्रत्येक मनुष्य कुछ-न-कुछ जरूर कर सकता है और करेगा यदि अकृतकार्य होकर हिम्मत न हारे। हिम्मत हमेशा बाजी मारती है। तुम अपने सामर्थ्य और निश्चय

बलोंकी अभिवृद्धि करते रहो। संसारमें जो करोड़ों मनुष्य निराश हो रहे हैं, उसका प्रधान कारण आत्मविश्वासकी कमी है। श्रद्धा खो बैठे हैं और दूषित निष्प्रयोजन कल्पनाओंके ग्रास बने हैं। तुम इनसे सदैव बचे रहो। सदा-सर्वदा आन्तरिक मनकी उन्नत भावनाओंके प्रति लक्ष्य किये रहो और अपनी समस्त शक्तियोंमें अखण्ड श्रद्धा और पूर्ण विश्वास रखो। किसी विशेष मर्यादातक केवल ऊपरी विश्वास ही मत रखो, परंतु भीतरी तहमें भी दृढ़तासे विश्वासकी अमिट छाप जमा दो। फिर विश्वासके सुमधुर फल देखो। तुम्हारी सब निराशा रफूचक्कर हो जायगी और अभ्यन्तर प्रदेशसे अनन्त शक्तिका आविर्भाव होगा।

आजसे तुम अपनी क्षुद्रताका चिन्तन छोड़ो। जब कभी विश्वकी विशालतापर विचार करने बैठो तो अपने मन, शरीर, आत्माकी महान् शक्तियोंपर चित्त एकाग्र करो। शक्तिके इस केन्द्रपर मन स्थित रखनेसे कोई दुर्बलता तुम्हारे अन्तःकरणमें प्रवेश नहीं कर सकती। जब तुम शक्तिके विशाल बिन्दुपर समस्त शक्तियाँ केन्द्रित करोगे तो तुम्हें प्रतीत होगा कि पाषाणमें, धातुमें, वनस्पतिमें, प्रकृतिमें, पशुमें और जिस किसी वस्तुमें भी विशालता है, उस सबसे तुम्हारी विशालता कहीं अधिक है। इन सबकी विशालताकी एक सीमा निश्चित है, किंतु तुम्हारी शक्तियोंकी सीमा अपार है।

जीवनको एक दीप समझें। उसकी शिखामें सजीवता तभी आयेगी, किरणें तभी जगमगायेंगी जब आशा उसे सदा अपने तेलसे परिपूर्ण रखेगी। आशाके तेलके समाप्त होते ही या तो दुःख-दर्दके समुद्रमें विलीन हो जाना होगा या फिर मृत्युकी शीतल-सी गोदमें हमेशाके लिये समा जाना होगा।

प्रतिशोधमें प्रेमका सम्मिश्रण

मानवीय मानसिक दुर्बलताओंके अन्तर्गत प्रतिशोधकी भावना बड़ी विषैली है। प्रतिशोधकी अग्नि ज्यों ही आन्तरिक प्रदेशमें प्रज्वलित होती है, त्यों ही समग्र अन्त:करणमें एक अस्तव्यस्तता उत्पन्न हो जाती है। जिस प्रकार प्रशान्त तालाबमें एक पत्थर फेंकनेसे जलकी ऊपरी सतहपर गोलाकार तरंगें उत्पन्न होकर सतहकी शान्तिको भंग कर देती हैं, उसी प्रकार दूसरेसे प्रतिशोध लेनेकी भावना मनमें उत्पन्न होते ही मनुष्य विचलित—विशृंखलित हो उठता है।

प्रतिशोधकी वासनाका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करें तो हमें विदित होता है कि इसमें तीन विकार काम करते हैं—

१-अपने प्रति किये गये अन्याय, अत्याचार-अनाचारका मानसिक आघात। प्रतिशोध लेनेवाला व्यक्ति एक भावुक, दुर्बल इच्छा और संकल्पवाला व्यक्ति होता है, जो दूसरेके विपरीत संकेतोंको सँभाल नहीं पाता। उसका मन घोर मानसिक व्यथाका अनुभव करता है।

२-भय और ईर्ष्याका संघर्ष। वह चुपचाप अपने प्रतिद्वन्द्वीसे भयभीत रहता है और खुलकर उससे सामना नहीं कर पाता। ईर्ष्याके वशमें होकर वह ऐसे मार्ग ढूँढ़ता रहता है जिसके द्वारा अपने विरोधी पक्षको शारीरिक, आर्थिक या कोई सामाजिक हानि पहुँचा सके। एक ओर प्रतिद्वन्द्वीकी शक्तियोंसे भय, दूसरी ओर ईर्ष्याकी प्रचण्डता उसे व्यथित किये रहती है। वह उचित-अनुचित मार्गोंसे वैरीकी क्षतिमें ही निरत रहता है।

३-तृतीय भावना क्रोधका आवेश है। प्रतिशोध क्रोधकी ही संतान है। यह क्रोध या तो क्षणिक उत्तेजनामें दूसरेकी शारीरिक क्षतिसे शान्त होता है; अन्यथा धीरे-धीरे सुलगनेवाली गीली लकड़ीके धुएँकी भाँति वैर बन जाता है। वैरमें मनुष्य ऐसे अनुचित साधनोंकी तलाशमें रहता है, जिनसे वह गुप्तरूपसे प्रतिद्वन्द्वीको क्षति पहुँचा सके। क्रोधकी उत्तेजित दशामें उसे औचित्यका जरा भी ध्यान नहीं रहता है। प्राय: देखा जाता है कि वह प्रतिशोध लेनेके लिये उस व्यक्तिसे सम्बन्धित अन्य अबोध बच्चों, असहाय स्त्रियोंको हानि पहुँचाकर मनका आवेश शान्त करता है।

प्रतिशोधकी भावना मनुष्यकी विवेक-बुद्धिको पंगु कर देती है। अस्थिर मनके व्यक्तिको जब बदला लेना होता है तो वह यह नहीं देखता कि उसका

कार्य वास्तवमें बदला हुआ अथवा नहीं। बैजू बावरेके पिताका वध तानसेनके संगीत-दर्पके कारण हुआ था। मृत्युसे पूर्व बैजूके पिताका आदेश था—'पुत्र! यदि तू वास्तवमें मेरी संतान है तो तानसेनसे प्रतिशोध लेना। उसे नीचा दिखाना। उसका दर्प चूर्ण कर देना।' बैजू अबोध था। वह क्रोधके आवेशमें तलवार लेकर अपने पिताकी मृत्युका प्रतिशोध लेने चला। बादमें सत्-ज्ञानके सम्पर्कमें जब उसकी विवेक-बुद्धि विकसित हुई तो उसे ज्ञान हुआ कि उसे स्वयं तानसेनसे भी ऊँचा संगीतज्ञ बनकर तानसेनका दर्प चूर्ण कर उसे नीचा दिखाना चाहिये। उसे अपने आवेशपर बड़ा क्षोभ हुआ। उस दिनसे वह स्वयं एक महान् संगीतज्ञ बननेमें संलग्न हो गया और अन्ततः अपनी संगीतविद्यासे तानसेनको परास्तकर प्रतिशोध लिया। तानसेनको पराजित करनेकी भावनाने उसे महान् संगीतज्ञ बना दिया।

अनेक व्यक्ति प्रतिशोधकी उत्तेजनामें दूसरेको कत्ल करते देखे जाते हैं। कुछ व्यक्ति एक गालीका उत्तर दस गंदी बातें उच्चारणकर करते हैं। खेलमें असावधानीसे डंडा लग जानेका बदला मार-कूटकर लिया जाता है। कोर्टमें आनेवाले अनेक मुकदमोंमें पचास प्रतिशत प्रतिशोधकी भावनाके कुफल हैं।

प्रतिशोध एक विष है, जो मनुष्यके अन्तःकरणको विक्षुब्ध करता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य आध्यात्मिक जगत्में ऊँचा उठता है, त्यों-त्यों वह प्रतिशोधकी मूर्खताको समझता है। उच्च आध्यात्मिक प्रदेशमें पहुँचकर मनुष्य प्रेमकी अतुलनीय शक्तिका अनुभव करता है। वह क्षमाका महत्त्व जान जाता है। विवेकपूर्ण क्षमा आवेशमय हिंसक प्रतिशोधसे उच्चतर आध्यात्मिक प्रक्रिया है।

प्रतिशोधके स्थानपर प्रेम प्रदर्शन करनेसे स्वतः पापीमें पश्चात्ताप उदित होता है। जैसे ठंडे जलसे अग्नि शान्त होती है, वैसे ही क्रोधका आवेश आपके प्रेम तथा सौहार्दके भावनाओंसे शान्त हो जाता है। प्रेमद्वारा आप प्रतिशोध लें तो स्वयं आप आध्यात्मिक जगत्में ऊँचे उठते हैं; साथ ही पापीका भी सुधार होता है। आप अन्य शक्तियोंका विकास करें, शक्तिशाली बनें जिससे आप इतने ऊँचे उठ जायँ कि किसीको आपके प्रति अत्याचार करनेका प्रलोभन ही न हो। यदि कभी आवश्यकता हो तो प्रेम, सहानुभूति एवं क्षमा-जैसे दिव्य आध्यात्मिक शस्त्रोंका चमत्कार देखें।

ईश्वर-प्रार्थनासे आत्मोन्नति

बाइबिलमें एक स्थानपर प्रार्थनाके विषयमें कहा गया है कि प्रार्थना श्रद्धावान् भक्तके हाथमें स्वर्गके दिव्य भण्डारोंको खोलनेकी कुंजी है। (Prayer is the key in the hand of faith to unlock Heaven's Store house.) प्रार्थनाद्वारा मानव निज हृदयको परमेश्वरके सम्मुख खोलकर रख देता है। आप यह न समझें कि परमेश्वर इसके इच्छुक हैं या वे चाहते हैं कि हम प्रार्थनाद्वारा उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टाएँ करते रहें। हृदय अर्पण करनेसे हमारा तात्पर्य यह होता है कि हम ईश्वरको उसमें प्रविष्ट होनेके लिये आमन्त्रित करते हैं। चन्द्रमाकी रश्मियोंको लेकर हम अपने नेत्र शीतल करते हैं। ईश्वरीय प्रकाशकी दिव्य किरणोंको हृदयमें प्रविष्ट कराकर हम समस्त कालिमा, वासना, विकास, ईर्ष्या, द्वेष, मद, मत्सरसे मुक्त होते हैं। प्रार्थना वह सर्वसुलभ मानवीय साधन है, जिसके द्वारा हमारा सहज सीधा परमेश्वरसे सान्निध्य हो जाता है।

प्रार्थना करनेका दूसरा अर्थ है, परमात्मासे सीधा बातचीत करना, दैवी तत्त्वसे निकट सम्बन्ध स्थापित करना; अपने-आपको नीची पाशविक स्थितिसे उठाकर उच्च आध्यात्मिक स्थितिमें रखना। सच्ची प्रार्थनासे मनुष्यकी पाशविक वासनाएँ, दुष्प्रवृत्तियाँ फीकी पड़ जाती हैं। हम अपने अंदर दैवी शक्तिका अनुभव करते हैं। गुप्त दैवी तेजोमण्डलसे हमारे अंदर सात्त्विक शक्तिका विकास होता है। श्रद्धासे की गयी प्रार्थनाका प्रभाव बिजली-जैसा होता देखा गया है। मनुष्यकी अन्तर्दृष्टि विकसित करने, अन्तरात्माको सशक्त करने, बुद्धिको कुशाग्र करने और चित्तको एकाग्र करनेका सहज साधन सच्ची प्रार्थना है।

आपकी आत्म-प्रार्थनाके आध्यात्मिक माध्यमद्वारा आप सृष्टि-जगत् तथा जीवमात्रके आदि केन्द्र परमात्मातक चढ़ जाते हैं। परमेश्वरसे आपका निकट साहचर्य इसी दिव्यसाधनके द्वारा होता है। कोई धर्म, कोई सम्प्रदाय, कोई मत उठा लीजिये; संसारके किसी कोनेपर देख लीजिये, सर्वत्र प्रार्थनाकी प्रभावोत्पादकता एवं उपयोगिताको समझा और प्रयोगमें लाया गया है। युग-युगसे जीव इसी साधनद्वारा अपने मनके मैलको धोकर शुचिता और पवित्रता प्राप्त करते रहे हैं। कवियोंने अपनी कविताओंमें जिन प्रार्थनाओंकी

अभिव्यक्ति की है, वे न केवल उन्हें प्रत्युत, निरन्तर आनेवाली अनेक पीढ़ियोंको प्रेरणा और आन्तरिक शान्ति देती रही हैं। भक्तप्रवर तुलसी, प्रेमविह्वल सूरदासजी, भक्तिविह्वला मीराँ, नानक, कबीर आदि असंख्य प्रेमी भक्तोंने विविध भजनोंके रूपमें जो आर्त पुकार की है, परमेश्वरके दरबारमें उनकी निश्चित पहुँच हुई है।

प्रार्थनाका अर्थ है—शक्तिके अनन्त भण्डारसे शक्ति प्राप्त करना, प्रेरणा लेना। ईश्वर शक्तिका भण्डार है। उसमें हर तरहकी सहायता करनेकी क्षमता है। वहाँसे सदैव आशा रखी जा सकती है, सब दशाओंमें निर्भर रहा जा सकता है, अन्तःप्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। अतः जब आप प्रार्थनाद्वारा परमेश्वरके साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं, तब दैवी शक्ति, सहायता, प्रेरणा, अदृष्ट-बल और नवजीवन प्राप्त करते हैं। ईश्वरके गुप्त भण्डारमें किसी प्रकारकी कमी नहीं है। आप चाहे जिस स्थितिमें हों, चाहे जिस अवस्थाके हों, चाहे जैसे स्वास्थ्यमें हों, चाहे जिस देशमें हों, ईश-प्रार्थनासे जीवनका यथार्थ मार्ग अवश्य प्राप्त कर सकते हैं। संसारमें अनेक दवाएँ हैं; लेकिन प्रार्थनारूपी महौषधसे त्रितापोंका सहज ही निवारण होता आया है। सर्वश्रेष्ठ विचारकोंके जीवन-मन्थनका यही निष्कर्ष है।

महात्मा गाँधीजीने समग्र जीवनमें प्रार्थनाद्वारा शान्ति, उत्साह, प्रेरणा और नवशक्ति प्राप्त की थी। वे प्रार्थनाकी महत्ताके विषयमें लिखते हैं—

'प्रार्थना मेरे जीवनका ध्रुवतारा है। एक बार मैं भोजन करना छोड़ सकता हूँ, किंतु प्रार्थना करना नहीं। आत्माको परमात्मामें लीन करनेका एकमात्र साधन प्रार्थना ही है।'

गाँधीजीने प्रार्थनाको एक विज्ञानका स्वरूप दिया और स्वयं अपने कल्याणके साथ दूसरोंको शान्ति, मरणासन्न रोगियोंको नवजीवन तथा अदृष्ट सहायताके लिये निरन्तर इसी दिव्य माध्यमका प्रयोग किया। सामूहिक प्रार्थनाद्वारा गुप्त आध्यात्मिक लहरें फैलाकर उन्होंने जनतामें प्रार्थना-विज्ञानका प्रचार किया।

प्रार्थनाद्वारा जब भक्त प्रभुको आत्मसमर्पण कर देता है और ईश्वरको ही एकमात्र शक्तिका आधार मानता है, तब उसमें आध्यात्मिक बलका प्रादुर्भाव होता है। महाकवि सूरदासने आत्मसमर्पणकी इस दैवी सहायताका मार्मिक चित्रण बड़े सुन्दर रूपमें किया है—

सुने री मैंने निरबलके बल राम।
पिछली साख भरूँ संतनकी,
अड़े सँवारे काम॥
जब लगि गज बल अपनो बरत्यो,
नेक सरयो नहिं काम।
निरबल ह्वै बल राम पुकारयो,
आये आधे नाम॥
द्रुपद सुता निरबल भइ ता दिन,
तजि आये निज धाम।
दुस्सासनकी भुजा थकित भई,
बसन रूप भये स्याम॥
अप-बल, तप-बल और बाहु-बल,
चौथो है [illegible] दाम।
सूर किसोर-कृपातें सब बल,
हारेको हरिनाम॥

संकट और विपद्में प्रार्थनाद्वारा अदृष्ट सहायता अवश्य प्राप्त करें। जब आप विनम्र भावसे गद्‌गद हो प्रभुको आत्मसमर्पण करते हैं, तब गुप्तरूपसे आप दैवी तत्त्वोंसे अपना निकट सम्पर्क स्थापितकर आत्मिक उन्नति करते हैं।

दिनका प्रारम्भ प्रार्थनासे करें और दिनका अन्त प्रार्थनासे करें। प्रात:काल प्रभुके स्मरणसे सारा दिन सात्त्विक विचारोंमें लगता है; मन, वचन, कर्मसे गंदगी दूर रहती है; रात्रिमें प्रार्थना करनेसे सुख-शान्तिमय निद्रा आती है। वह व्यक्ति धन्य है जो सदा ईश्वरमय रहता है।

पापी-से-पापीके लिये भी प्रार्थनाद्वारा अदृष्ट सहायताका अतुल भण्डार खुला पड़ा है। आवश्यकता इस बातकी है कि मनुष्य सच्चे मनसे उसका समुचित उपयोग करता रहे। यदि आप चारों ओरसे निराश हो चुके हैं तो प्रार्थनाकी शक्तिसे अवश्य ही लाभ उठा सकते हैं।

प्रार्थनाका मार्ग सबके लिये खुला हुआ है।

मेरा कुछ नहीं ?

मेरे पास एक मकान है, जिसे मैंने खरीदा है और इधर-उधरसे सुधारकर खूबसूरत शिष्ट व्यक्तियोंके रहनेयोग्य बना लिया है। मैं इसपर प्रतिवर्ष पुताई और रोगन-सफाई तथा चित्रोंमें खूब व्यय करता हूँ।

पर क्या यह वास्तवमें मेरा है? नहीं, कदापि नहीं। मेरे इसमें आनेसे पूर्व न जाने वह जमीन, जिसपर यह खड़ा है, कितने व्यक्तियोंके अधिकारमें आकर निकली होगी। इस घरमें कितने ही व्यक्ति आते-जाते रहे होंगे, कोई मरकर, कोई गरीबीके कारण, कोई प्रकृतिके किसी आक्रमणद्वारा बिखर गये होंगे और तब मेरे पास आया होगा, यह मकान। मेरे जन्मसे पूर्व यह मकान किसी औरका था, मेरी मृत्युके पश्चात् न जाने इसका वासी कौन होगा?

पर यह निश्चय है, यह मेरा नहीं है। मैं जबतक जिंदा हूँ इसमें आश्रय भर लेता हूँ, बस! केवल मेरा इससे इतना ही सरोकार है।

कृषकका खेत उसका सर्वस्व है। वह उसे रखनेके लिये असंख्य विपत्तियाँ मोल लेता है। सम्पूर्ण आयुपर्यन्त उसे अच्छा बनानेमें, उपजकी वृद्धिमें प्रयत्नशील रहता है; पर वह यह नहीं सोचता कि उसका वास्तवमें कुछ नहीं! न जाने वह खेत कितने व्यक्तियोंके पाससे गुजर चुका है। भविष्यमें न जाने कितने उसके मालिक बनेंगे!

मेरे हाथमें एक रुपया आ जाता है। मैं उसे अपना कहता हूँ, प्यार करता हूँ। प्यारसे बटुवेमें छिपाकर रखता हूँ। थोड़ी देरके लिये मैं भूल जाता हूँ कि यह रुपया आवारा है। एक जगह नहीं टिकता। इसकी गति बड़ी तीव्र है। एकसे दूसरे, दूसरेसे तीसरे, तीसरेसे चौथे, पाँचवें, पचासों-हजारों हाथोंमें वह चलता-फिरता रहता है। किसी एकका नहीं बनता। किसी एकका होकर नहीं रहता। फिर, मैं भी कैसा मूर्ख हूँ जो उसे अपना-अपना कहकर घमंडमें फूल उठता हूँ। मैं क्यों यह ध्रुव सत्य विस्मृत कर बैठता हूँ कि इससे मेरा क्षणिक सम्बन्ध है। न जाने कल यह किसके पास होगा! इसका भावी कार्यक्रम, गतिविधि क्या है?

मेरे पास असंख्य पुस्तकें हैं, घरकी सैकड़ों छोटी-बड़ी वस्तुएँ हैं; गाय और भैंसें हैं; साइकिल-मोटर है; अच्छे वस्त्र हैं; लेकिन क्या ये वास्तवमें मेरे हैं? क्या इनसे मेरा सच्चा सम्बन्ध है, क्या ये सदा मेरी होकर रहनेवाली वस्तु हैं?

मैं फिर भूलता हूँ। क्षुद्र सांसारिक वस्तुओंके लोभमें उन्हें 'अपना'

कहनेकी मूर्खता करता हूँ। मैं प्रमाद एवं अज्ञानवश यह समझने लगता हूँ कि ये मेरे व्यक्तित्व, मेरी आत्माके अंग हैं। यही मेरी बड़ी गलती है। ये विविध वस्तुएँ भला क्योंकर मेरी हो सकती हैं। न जाने किस-किसका इनपर कब-कब अधिकार रहा होगा। थोड़ी देरके लिये ये मेरे पास एकत्रित हो गयी हैं। फिर न जाने कौन कहाँ बिखर जायगी।

मैं बाल-बच्चोंका पिता हूँ। मेरी पत्नी बच्चोंसे अपनेको पृथक् नहीं कर पाती। 'हमारे बच्चे बड़े होंगे; हमें न जाने किस-किस प्रकारसे सहायता प्रदान करेंगे, हमारे दुःख दूर करेंगे।' मैं भी कभी-कभी यही समझनेकी मूर्खता कर बैठता हूँ। पर क्या वास्तवमें ये बच्चे हमारे हैं? क्या हमीं इनके सब कुछ हैं? क्या इनका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व, आशा, अभिलाषा, इच्छाएँ नहीं हैं? नहीं, ये हमारे नहीं हैं। हमारा इनसे क्षणिक सम्बन्ध है। जिस प्रकार पक्षियोंके बच्चे समर्थ हो जानेपर उड़ जाते हैं, लौटकर फिर माँ-बापके पास आकर नहीं रहते; उसी प्रकार ये मानव-परिन्दे भी न जाने कब, कहाँ, किस ओर किस अभिप्रायसे उड़ जानेवाले हैं। फिर मैं इन्हें क्योंकर अपना कह सकता हूँ?

मैं अपने शरीरको 'अपना', 'अपना' कहता हूँ। साज-शृंगारमें यथेष्ट समय व्यय करता हूँ। शीशेमें चेहरा देखकर फूला नहीं समाता। अपने नेत्र, कपोल, नासिका, मुखमुद्राको सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ। अपने शरीरके प्रत्येक अवयवपर मुझे गर्व है। पर क्या वास्तवमें यह शरीर मेरा है?

शरीर मेरा नहीं। वह तो हाड़, मांस, रक्त, मज्जा-तन्तु, वीर्य इत्यादिका पुतलामात्र है। क्या मैं हाथ हूँ? क्या मैं उदर, मुख, पाँव, सिर इत्यादि हूँ? क्या मैं रक्त हूँ, मांस हूँ? अस्थियोंका पिंजर हूँ? क्या मैं श्वास हूँ, वाणी हूँ? क्या हूँ?

वास्तवमें, उपर्युक्त वस्तुओंमेंसे मेरा कुछ भी नहीं है। इन सब सांसारिक पदार्थोंसे मेरा सम्बन्ध क्षणिक, अस्थायी और झूठा है। अज्ञान-तिमिरमें मुझे इन वस्तुओंसे अपना साहचर्य प्रतीत होता है। मैं तो आत्मा हूँ। इस शरीररूपी पिंजरेमें अल्पकालके लिये आ बँधा हूँ। मैं ईश्वरका दिव्य अंश हूँ। संसारसे निर्लिप्त हूँ। सांसारिक वस्तुओंसे मेरा सम्बन्ध क्षणिक है। यदि मैं अल्प लोभके वश स्वार्थ और तृष्णामें लिप्त होता हूँ तो यह मेरा अज्ञान है, मूढ़ता है।

सुखी रहनेका सर्वोत्तम साधन

जो व्यक्ति यह समझता है कि मुझे सदा ही इस संसारमें निवास करना है, वह अनेक प्रकारके अनावश्यक प्रपंचों, कृत्रिम आवश्यकताओं और व्यर्थके ऋणोंके भारसे आक्रान्त रहता है। स्थायित्वके साथ मनुष्यकी नीची वासनाएँ दूसरेपर छा जाना चाहती हैं। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, शासक, अमीर, रईस, पूँजीपति सदा यह समझते रहते हैं कि उन्हें स्थायीरूपसे संसारमें निवास करना है। वे बड़े-बड़े आलीशान महल, अट्टालिकाएँ, आमोद-प्रमोदकी वस्तुएँ, मनोरंजनके साधन एकत्रित करते हैं; अधिक धन-संग्रह करनेके हेतु वे प्रजापर अनावश्यक बोझ डालते हैं, जमींदार कृषकोंका शोषण करते हैं, व्यापारी ग्राहककी जेब काटनेको प्रस्तुत रहते हैं। वास्तवमें, जगत्में सदा-सर्वदा स्थायीरूपसे रहनेकी भावना अनाचार और अत्याचारकी मूल है। जो अपनेको जितना स्थायी समझता है, वह उतना ही अधिक आनन्द, मस्ती, शोषण कर लेना चाहता है। कितने ही व्यक्ति अनावश्यकरूपमें अपना अभाव बढ़ाते जाते हैं; क्योंकि उन्हें अपने उत्तरदायित्वका बोध नहीं होता।

हमें स्मरण रखना चाहिये कि जीवमात्रके लिये मृत्यु एक सहज सत्य है। प्रत्येक जन्मके साथ मृत्युका क्रम है। जो जन्मा है उसका मृत्युको प्राप्त होना अवश्यम्भावी है। जन्मके दिनसे ही हम धीरे-धीरे मृत्युकी ओर खिंचते चले जाते हैं। प्रत्येक क्षण हमें मृत्युके समीप लाता है।

और यह मालूम नहीं कि किस दिन मृत्युकी कुटिल काली मूर्ति प्रकट हो जाय। किस क्षण संसारसे चलनेकी तैयारी हो जाय। छोटे-छोटे बच्चोंसे लेकर भरे यौवनमें हँसते-खेलते जवान क्षणभरमें मृत्युके ग्रास हो जाते हैं। तनिक-से कारणसे मृत्यु हो सकती है; दुर्घटनाएँ वृद्धिपर हैं, नयी-नयी बीमारियाँ देखनेमें आ रही हैं। कलकी खैर नहीं, परसोंकी कौन कहे। वास्तवमें मानव-जीवन एक बुलबुलेके समान है, जो क्षणभरमें नष्ट हो सकता है।

सबसे अच्छी मनःस्थिति उस व्यक्तिकी होती है जो मृत्युके लिये अर्थात् संसारसे बिना रंजोगम, बिना मोहचक्र या अनावश्यक क्षोभके जानेको तैयार रहता है। जिसे जितना अधिक माया-मोह संसारके कृत्रिम वस्तुओंपर रहता है, वह उतना ही अधिक दुःखी, अतृप्त रहता है। प्रत्येक मोह या लगाव एक जंजीर है, जो आपको संसारसे जकड़े हुए है। यदि आप संसारके पदार्थोंको

काममें लेते हुए भी तटस्थ रहें, जब समय आये, उनका परित्याग करनेको प्रस्तुत रहें तो आप सुखी-संतुष्ट रहेंगे। मोहका लगाव आपको विक्षुब्ध न कर सकेगा।

मेरी रायमें मृत्युके लिये सदैव तैयार रहना अर्थात् जगत्‌के झूठे लगाव और मोहके बन्धनसे मुक्त रहना, आनन्दित रहनेका सर्वोत्तम साधन है।

जब आप यात्रा करते हैं तो आपसे कहा जाता है कि कम सामान लेकर यात्रा कीजिये (Travel light)। जिस यात्रीके पास अधिक सामान रहता है, वह अपनी छोटी-बड़ी पोटलियों, संदूक, बिस्तर और थैलोंको सँभालनेमें सदैव चिन्तित रहता है। उसके पास जितने बंडल होते हैं, उसे उतना ही बन्धन होता है, वह उतना ही चिन्तित, व्यग्र और क्षुब्ध रहता है। कहीं कोई गठरी छूट न जाय? कहीं कोई व्यक्ति चुरा न ले? कहीं कोई ताला न टूट जाय? ऐसी असंख्य छोटी-बड़ी दुश्चिन्ताएँ मनमें अशान्ति बनाये रखती हैं। इसके विपरीत जो कम-से-कम सामान लेकर यात्रा करता है, वह सहज रूपमें अपने सामानकी देख-रेख कर लेता है। उसे अपेक्षाकृत चिन्ता भी कम होती है। कठिन अवसरोंपर वह सरलतासे सँभाल लेता है और मौका पड़नेपर उसे हाथमें स्वयं उठा लेता है। चूँकि उसके पास भार कम है, उसे यात्रामें अनावश्यक बोझ प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार जीवनयात्रामें उठानेयोग्य थोड़ा-सा सामान साथ लेकर चलनेवाला यात्री सुखी रहता है। जो अनावश्यक आवश्यकताएँ, व्यर्थका दिखावा, फैशनपरस्ती, वासनाके मोहजाल या ममत्वके बड़े परिवारमें लिप्त रहता है, सांसारिक वस्तुओंके निरन्तर संग्रहसे अपना भार बढ़ा लेता है, वह दु:खी और अतृप्त बना रहता है।

स्मरण रखिये—मृत्यु आपके सिरपर खड़ी है। अनावश्यक मोह-बन्धन आखिरी घड़ीमें मानसिक कष्ट प्रदान करनेवाले हैं। अपने ऊपर परिवारका अधिक बोझ मत लीजिये। यदि सम्भव हो तो अपने परिवारके एक सदस्यको ऐसा अवश्य रखिये जो आपकी अनुपस्थितिमें घर-परिवारका भार सहज ही सँभाल ले। और कोई न हो, तो पत्नीमें ही इस भारको वहन करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न कीजिये। आपकी स्थिति ऐसी हो कि मौतका बुलावा आते ही आप बिना किसी रुकावट, मोह, उत्तरदायित्वके तुरंत प्रस्थान कर सकें।

मृत्युके लिये सदैव तैयार रहना ही निर्बाध सुखी रहनेका साधन है।

राम-नाम दवा है

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

(धन्वन्तरि)

परमेश्वरका कोई नाम श्रद्धा और निष्ठापूर्वक पुनः-पुनः उच्चारण करनेसे समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, यह उक्ति मैंने कई बार सुनी थी, पर विश्वास नहीं किया था, एक घटनाने मुझे इसकी सत्यताका ज्ञान करा दिया।

मेरे एक पचास वर्षीय प्रोफेसर मित्र हैं। नाम लिखनेसे कोई लाभ नहीं है। आमदनी अच्छी होनेके कारण वे मद्यपानकी ओर प्रवृत्त हो गये और अपव्ययी जीवन व्यतीत करने लगे। सारे दिन सिगरेट न छूटती थी। शराब एवं सिगरेटके आधिक्यसे दस वर्षमें ही स्वास्थ्य जर्जरित हो गया। सूखकर अस्थियोंका ढाँचामात्र रह गया। पेटमें मामूली दर्द रहने लगा। क्रमशः वह बढ़ा, अस्पतालमें डेढ़-दो वर्षतक चिकित्सा हुई, किंतु रोग असाध्य प्रतीत हुआ। रोगीकी पाचन-शक्ति इतनी निर्बल हो चुकी थी कि कुछ पचता ही न था। घरमें बाल-बच्चे, पत्नी सब विक्षुब्ध थे। करें तो क्या करें? डॉक्टरोंने अपनी-सी कर देखी। ऑपरेशनसे भी कुछ लाभ न हुआ।

भाग्यकी महिमा, एक महात्मा एक दिन आ निकले। घरके ऊपर आयी हुई भयंकर आपत्तिका वृत्तान्त सुनकर उन्होंने इस लेखके ऊपर दिया हुआ श्लोक पढ़ा, उसकी विस्तृत व्याख्या की और उपदेश दिया। कुछ भभूत घोलकर पिलायी। रोगीको पूर्ण विश्वास दिलाया कि परमेश्वरका कोई नाम श्रद्धा और निष्ठापूर्वक पुनः-पुनः दवाके रूपमें उच्चारण करने और प्रतिदिन दो घंटे प्रातः, दो घंटे सायंकाल भजन-पूजन, प्रार्थना करनेसे बीमारी दूर हो जायगी। और कोई मार्ग न देखकर रोगीने यह प्रयोग प्रारम्भ किया। एक सप्ताहमें ही थोड़ा-सा लाभ दीखा। पेटका दर्द कम हुआ। मामूली भूख लगी। रोगीने प्रण किया कि चाहे कुछ भी हो वे भविष्यमें शराब और सिगरेट स्पर्श न करेंगे। राम-नामकी चिकित्सा छः महीने चलती रही। सबको यह देखकर अतीव आश्चर्य हुआ कि रोगीकी दशा सुधरती चली गयी। अब उन्हें अंदर-ही-अंदर यह प्रतीत होने लगा कि मनुष्यका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य आत्मभावोंपर निर्भर रहता है। मनुष्यके प्रत्येक विचारके पीछे आत्म-निर्णयकी शक्ति निहित रहती है, यदि वे आत्म-ध्वनि (अन्तरात्मा)-के

अनुकूल चलते रहें। आत्मशक्तिकी पुकार स्वयं हमें सन्मार्गपर ले जाती है। सद्भावना ईश्वरीय शक्ति है। भजन-पूजन-प्रार्थनाका प्रत्यक्ष यह लाभ होता है कि इनसे हमारी आत्मशक्तिमें अभिवृद्धि होती है; शुभ परिणाम एक साथ संयुक्त होकर समग्र रूपसे आगे बढ़ते हैं; मस्तिष्कको शान्ति मिलती है।

अभी एक वर्ष हुआ, जब मैं उन रोगी प्रोफेसर महोदयके पास गया तो देखा, वे बिलकुल स्वस्थ हो गये हैं। खाना भी पूरा खा लेते हैं, मुखपर प्रसन्नता रहती है। उनकी दिनचर्या सुनी तो उनके स्वास्थ्यका रहस्य स्पष्ट हो गया। वे कहने लगे—

'प्रातः शौचादिसे निवृत्तिके उपरान्त स्नानकर पूजामें बैठ जाता हूँ। सामने स्वामीजी (जो अब उनके गुरु हैं)-का चित्र रहता है। मनमें श्रीकृष्णभगवान्‌की मूर्तिका ध्यान कर 'हरे कृष्ण' का जाप करता हूँ। फिर भगवद्भजन-कीर्तनमें डेढ़ घंटा व्यतीत करता हूँ। मनमें ईश्वरप्रदत्त स्वास्थ्य-भावनाका विचार करता रहता हूँ। दिनमें जल या भोजन जो भी ग्रहण करता हूँ, परमात्माका प्रसाद मानकर लेता हूँ। जब मैं भोजनमें आत्मशक्तिका प्रादुर्भाव कर लेता हूँ, तब वही मुझे हितकर, कल्याणकर और लाभदायक हो जाता है। सायंकाल छ:से आठतक पुन: प्रार्थना, पूजा और सद्विचारका यह क्रम चलता है। दवा कोई नहीं, परमेश्वरका नाम ही मेरी एकमात्र ओषधि है। अब मेरे आत्मभावोंकी शक्ति क्रमशः बढ़ती जा रही है। अभक्ष्य पदार्थोंकी ओरसे रुचि स्वतः हट गयी है। मानसिक द्वन्द्व दूर हो गये हैं, शान्तिका मधुर फल [illegible] रहता हूँ। मेरा तो यह विचार हो चला है कि किसी भी दुर्बल हृदयको अच्छे कार्यों और शुभ भावनाओंमें लगानेसे मनोबलकी वृद्धि होती है। मनके दुःख-दैन्य नष्ट हो जाते हैं।

राम-नाम दवा क्यों बन जाता है?

क्या आपने कभी सोचा है कि परमेश्वरका नाम दवा क्योंकर बन जाता है? क्या कारण है कि जहाँ कोई दवा काम नहीं करती, भगवन्नाम चमत्कार उत्पन्न करता है?

मनुष्य केवल शरीर ही नहीं, आत्मा है। जहाँ शारीरिक शक्ति और मानसिक शक्ति काम नहीं करती, वहाँ मनुष्यकी आत्मशक्ति अपना चमत्कार दिखाती है। हमारा स्वास्थ्य और सुख केवल उस भोजन या व्यायामपर स्थिर नहीं जो हम लेते हैं। यह हमारे आत्मभावोंपर निर्भर रहता है। जिस कार्यके करनेमें हमारे आत्म-भावोंकी शक्ति प्रबलतासे लगती है, जो शुभ हैं, उन सुकार्योंमें मन लगानेसे हमारे मनोभाव समुन्नत होते हैं और आत्मशक्तिमें अभिवृद्धि होती है। अच्छाई ऐसा चमत्कारमय भाव है कि उसके मनमें आते

ही सद्वृत्तियाँ सुशृंखलित होकर नैतिक सामर्थ्यकी वृद्धि करती हैं। सत्कार्यका पुरस्कार मनोबलकी शक्तिवृद्धि है।

जो व्यक्ति अनुचित अनैतिक कार्योंमें प्रवृत्त हो जाते हैं, उनकी नैतिक शक्ति या आत्मबल क्षीण हो जाता है। पापमय होनेके कारण वे अंदर-ही-अंदर इस कलुषके द्वन्द्वका अनुभव किया करते हैं। मस्तिष्कको शान्ति नहीं मिलती। नैतिक दृष्टिसे अपराधी व्यक्ति अपने पापों और बुरे कार्योंसे अपने मस्तिष्कको कमजोर कर डालता है। प्रत्येक पाप-भावना विनाशकारी है। असत्-विचार, पापमय कार्य, बेईमानीका मार्ग, मदिरापान, वेश्यागमन आदि कुमार्ग मनुष्यको आत्म-वंचना प्रदान करते हैं। पापीका मन उसे चुभता रहता है; उसमें गुप्त भय, चिन्ता, निराशा, ईर्ष्या-जैसे महाभयंकर विकारोंका ताण्डव होने लगता है। इस आन्तरिक बीमारीसे बाहरी बीमारी प्रारम्भ हो जाती है। कुविचार बीमारीका कारण है तो सद्विचार आत्मचिन्तन, पूजा-भजन इत्यादि उसका इलाज।

पूजा, भजन, प्रार्थना, आत्मचिन्तन वे उपाय हैं, जिनसे मानवको उच्चतम आध्यात्मिक एवं मानसिक शक्तियाँ एक केन्द्रबिन्दुपर एकाग्र होकर आन्तरिक गुप्त सामर्थ्यकी वृद्धि करती हैं। यह आन्तरिक सामर्थ्य मनुष्यको निम्न कोटिकी विचार-धाराओं और कुत्सित भावनाओंसे रक्षा करता है। ये वे साधन हैं जिनसे दिव्य शक्तिका चमत्कार मनुष्यमें प्रकट होता है और उसे ऊँचा उठाता है। अनादि-कालसे मानव इन दिव्य साधनोंद्वारा अपने दिव्य सामर्थ्यको प्रकट करता रहा है।

रोगविनाशकारी भावना

प्रतिदिन प्रात:-सायं १५ मिनिटके लिये शान्तचित्त निर्विकार निश्चिन्त होकर बैठ जाइये और आरोग्य, आनन्द, सुख, शान्ति प्रदान करनेवाली विचार-धारामें रमण कीजिये। बीमारीके विचार हटाकर निम्न भावनापर मनको दृढ़तासे एकाग्र कीजिये—

'मेरे भीतर आरोग्य एवं आनन्दका अजस्र स्रोत प्रवाहित हो रहा है। मेरे अन्तरालमें दिव्यामृतका महासागर है। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि सारा सुख, आरोग्य, स्वास्थ्य और शक्ति मेरे भीतर है। मेरे मनमें अनन्त शक्ति, सामर्थ्य है। मैं स्वस्थ हूँ। पूर्ण प्रसन्न हूँ। आनन्दित हूँ। परमात्माका दिव्य प्रकाश मेरे भीतर-बाहर सर्वत्र फैला हुआ है।

मैं विक्षेपरहित हूँ, द्वन्द्वसे मुक्त हूँ, आनन्दमय हूँ। स्वर्गसुख मेरे भीतर है। मेरा हृदय परमात्माका गुप्त प्रदेश है। जहाँ परमात्माका निवास है, वहाँ रोग-शोक क्योंकर ठहर सकते हैं? मैं दैवी ओजके मण्डलमें प्रविष्ट हो गया

हूँ। यह परमात्माका गुप्त प्रदेश मेरे आरोग्य और स्वास्थ्यका प्रदेश है।

मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। तेजसे परिपूर्ण हूँ। शक्तिका पुंज हूँ। परम सामर्थ्यवान् हूँ। मेरे अंग-अंगमें शान्तिका निवास है। मैं मनकी चंचलता, बीमारीकी कल्पनासे सर्वथा मुक्त हूँ।

स्मरण रखिये—स्वास्थ्य, सुख, आनन्द, शान्ति सब आपके अन्तःकरणमें ईश्वरीय वरदानके रूपमें विद्यमान हैं। अपने अन्तःकरणकी ध्वनि सुनकर निःशंक जीवन व्यतीत कीजिये। अपने अंदर जो कल्पित रोगके विचार हैं, उन्हें निकाल दीजिये। अपने प्रत्येक विचार, भाव, शब्द और कार्यको ईश्वरीय शक्तिसे परिपूर्ण रखिये। आरोग्य लाभ करनेका इससे उत्तम दूसरा मार्ग नहीं है।

स्वास्थ्यको दृष्टिमें रखकर जब आप आरोग्यविषयक साधना एवं प्रार्थना करते हैं, तब परमेश्वरकी उस दिव्य शक्तिसे अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं, जो सर्वथा विकारशून्य, अकलुष और कल्याणकारिणी है। स्वास्थ्यकारी प्रार्थनाका सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वह मनुष्यके मनको जहाँ एक ओर पवित्र और विशुद्ध बनाती है, वहीं दूसरी ओर सबल और दृढ़ कर देती है।

ईश्वर-चिन्तन हमारी समस्त भव-बाधा, चिन्ता एवं अनिष्टोंको दूर करनेवाली महौषधि है। आन्तरिक प्रफुल्लताके लिये सद्विचारोंका प्रवाह इसी केन्द्रबिन्दुसे प्राप्त हो सकता है। योगी, महात्मा तथा समुन्नत आत्माएँ आरोग्यके आदि-स्रोत परमेश्वरसे ही आनन्द, आरोग्य एवं प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। सच्चा बल परमेश्वरका बल है।

एक ब्रह्मवादीने सत्य लिखा है—हे दुःखी आत्मा! यदि तू संसारसे सब प्रकारसे निराश हो चुका है, सब ओरसे क्लेशोंसे घिरा हुआ है और तुझे संसारमें विश्रामका कहीं स्थान नहीं मिल रहा है तो उठ, जाग्रत् हो और दृढ़ होकर ईश्वरीय मार्गपर आरूढ़ हो। प्रातःकाल सूर्योदयके पूर्व जाग्रत् होकर परम पिता परमात्मा—तेरे हृदयस्थ आत्माका नियमितरूपसे नियत समयपर एकान्तमें अति आनन्ददायक सर्वोपरि कर्तव्य समझकर स्तुति, प्रार्थना-उपासना और ध्यान कर। अपनी चिन्ताओं, क्लेशों, दुःखों और अपने-आपको सर्वथा भूल जा। ध्यानावस्थित होकर परमात्मामें लीन हो जा। हृदय-मन्दिरमें प्रवेश कर परम पिता परमात्मासे साक्षात्कार कर। यह प्रवाह तेरे रोम-रोमको पवित्रता और शान्तिसे भर देगा। जीवन, बल, बुद्धि, सुख, आनन्द प्रदान करेगा।

आप कितने भाग्यशाली हैं

आप चाहे जैसी स्थितिमें क्यों न हों, आपको ऐसी अनेक वस्तुएँ या गुण अपने अंदर मिल जायँगे, जो दूसरोंके पास नहीं हैं। आपकी ये चीजें आपको दूसरेकी अपेक्षा उन्नत, भाग्यशाली और उच्च बनाती हैं। एक उदाहरण लीजिये—

एक बार हैराल्ड एबोट नामक एक व्यक्तिकी अपने सम्पूर्ण जीवनकी कमाई नष्ट हो गयी; ऋण चढ़ गया, जिसे साफ करनेमें उन्हें सात वर्षोंकी आवश्यकता थी। वे नयी दुकान खोलनेके लिये और रुपया कर्ज लेने जा रहे थे। मन आर्थिक चिन्ताओंसे भरा हुआ था। किस प्रकार ऋण उतरे? गृहस्थीका कार्य कैसे चले? सामाजिक प्रतिष्ठा कैसे कायम रहे? वे एक पराजित व्यक्तिके समान दु:खी हुए भारी मनसे सड़कपर चले जा रहे थे कि उन्हें सड़कके किनारे बैठा हुआ एक व्यक्ति मिला, जिसके टाँगें नहीं थीं। कट गयी थीं। वह हाथोंके सहारे चलता था। उसने हँसते हुए हैराल्ड साहबका स्वागत किया। उसने हृदयका उत्साह और प्रसन्नता उँडेलते हुए कहा—'प्रणाम! क्या सुहावना प्रभात है। कहिये, अच्छे तो हैं?' इस व्यक्तिके प्रसन्न जीवनने, भीषण कठिनाई तथा अंग-भंगमें भी उल्लास और हर्षसे परिपूर्ण जीवनने उनका जीवन बदल दिया। उन्हें अपनी चिन्तापर आत्मग्लानि प्रतीत हुई। उन्हें प्रतीत हुआ कि उनकी टाँगें परमेश्वरका कितना बड़ा वरदान थीं। उन्हें अपनी निराशा और चिन्तापर हार्दिक क्षोभ हुआ। उन्होंने सोचा कि जब वह कटी हुई टाँगोंवाला गरीब व्यक्ति प्रसन्न, उल्लसित हो सकता है और जीवनका रस लूट सकता है तो वे तो उससे भी अधिक अंशोंमें मजा ले सकते हैं। इस भावने उनकी चिन्ताको उल्लासमें बदल दिया और वे उन सम्पदाओंको देखने लगे, जो अब भी उनके पास परमेश्वरकी देनके रूपमें सुरक्षित थीं।

आप स्वयं देखिये—क्या आपका स्वास्थ्य वह चीज नहीं है कि आप उसके ऊपर गर्व कर सकें? आपका घर, खेत, वस्त्र इत्यादि यदि कीमती नहीं हैं, तो न सही, क्या परवा है? आपकी आय यदि थोड़ी है तो कोई हर्ज नहीं। उन करोड़ों गरीबोंको देखिये जो रोज मजदूरीसे पेट पालते हैं। रुपया जोड़कर क्या कीजियेगा? आगे आपके बाल-बच्चे आपकी सहायता करेंगे। फिर क्यों चिन्ता करते हैं?

हमारे जीवनमें नब्बे प्रतिशत बातें ठीक हमारे स्वभावके, हमारे पक्षके, हमारी सुख-सुविधा, प्रसन्नता-लाभके लिये होती हैं। केवल दस प्रतिशत ऐसी होती हैं, जिनके विषयमें हमें कुछ सोचनेकी आवश्यकता है, चिन्ताकी नहीं। हमें प्रसन्न होनेके लिये इस बातकी जरूरत है कि हम अपने पक्षकी इन नब्बे प्रतिशत भाग्यशाली चीजोंको देखें और उनपर चित्तको एकाग्र करें और दस प्रतिशत विपक्षकी वस्तुओंको त्याग दें। उनके बारेमें न सोचें।

अपने अभावका, अपनी कमजोरियोंका, अपने पास जो-जो वस्तुएँ नहीं हैं, उनका चिन्तन करना, अपनी उत्पादक और सृजनात्मक शक्तियोंका क्षय करना है।

बिगड़ी बात बनायी जाय

जो-जो हानियाँ, दुःख, तकलीफें आप जीवनमें उठा चुके हैं, उन्हें लेकर झींकने, कलपने या आँसू बहानेसे कोई लाभ नहीं है। हानिपर दुःख और निराशा तो हरेक व्यक्ति प्रकट कर सकता है। रोना, चीखना और कायरता दिखाना तो मामूली-सी बात है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हानिसे अधिकतम लाभ उठाया जाय; बिगड़ी बातको बनाया जाय; टूटेको दुरुस्त किया जाय; रूठेको मनाया जाय और अणु-अणु एकत्रित कर विशृंखलित चीजको सम्पूर्ण बनाया जाय। बिगड़ीको बनानेके लिये बुद्धि और चातुर्यकी आवश्यकता है। हानिपर रोनेके लिये आलस्य, कायरता और मूर्खताकी जरूरत है। फिर क्यों मूर्ख बनें? क्यों न अपनी चिन्ताके कारणको दूर कर उसे आशा, उत्साह और प्रेरणामें परिवर्तित कर लें।

सूर और मिलटन अन्धे हो गये थे, किंतु उन्होंने अपने अन्धेपनका सदुपयोग किया और अन्तश्चक्षु खोल लिये। बड़े भारी कवि बने। भीष्म और ईसामें वंशकी कमी थी; अष्टावक्र, चाणक्य और सुकरातमें शारीरिक सौन्दर्यकी कमी थी; नेपोलियन और हिटलरके धन और पारिवारिक प्रतिष्ठाकी कमी थी; ध्रुव, बुद्धको सम्बन्धियोंके प्रेमकी कमी थी, लेकिन ये महापुरुष इन कमजोरियों और सामाजिक त्रुटियोंके बावजूद कभी चिन्तित नहीं हुए। इन्हें कितनी कठिनाइयाँ और प्रतिद्वन्द्व मिले, कितने कष्ट मिले, लेकिन अपनी दृढ़ता, आत्मशक्ति एवं सतत उद्योगके द्वारा इन्होंने चिन्ता और नैराश्य-भावनाको समीप न आने दिया। ये कष्टदायक परिस्थितियोंमें भी महान् बने।

फिर आप क्यों अपनी मामूली-सी बातोंके लिये चिन्तित हैं? क्यों आप तिलका ताड़ बनाते हैं? ऊपर लिखे व्यक्तियोंके मुकाबलेमें आपकी चिन्ताका कारण कुछ भी तो नहीं है। व्यर्थकी चिन्ता त्याग दीजिये।

दूसरोंको प्रसन्न करनेका उद्योग करें

चिन्तासे मुक्तिका एक उपाय यह है कि आप अपने-आपको दूसरोंकी प्रसन्नता, सेवा, सुख पहुँचानेमें लगाकर अपने दुःख-कष्टोंको विस्मृत कर दें। आप अपने मित्रोंकी संख्या निरन्तर बढ़ायें और उनमें, उनके हास्य-रुदन और जीवनके सब प्रसंगोंमें तन्मय हो जायँ।

सेवाका मार्ग ढूँढ़ निकालें। संसारमें पीड़ित, रोगी, निरालम्बोंकी कमी नहीं है, जो आपकी सहायताके लिये खड़े हैं। उन्हें प्रोत्साहन देनेवाले पत्र लिखिये, मुसकराकर बातें कीजिये, उनके काममें दिलचस्पी दिखाइये। अपनी रुचि तथा दिलचस्पीको दूसरोंमें जोड़ लेनेसे मनुष्य अपनी चिन्ताएँ भूल जाता है। आप अपने कुटुम्बके बच्चोंकी शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजनमें दिलचस्पी ले सकते हैं, अपनी पत्नीके आत्मविकास, शिक्षा, कारीगरी, कढ़ाई-बुनाई या भोजनके प्रति प्रोत्साहन देकर उन्हें आगे बढ़ा सकते हैं। मनुष्यको इस पृथ्वीपर कुटुम्बसे जो सहानुभूति, समवेदना, मधुरता और प्रेमका प्रतिदान प्राप्त हो सकता है, वह चिन्ताके बोझको हलका कर देता है। अतः प्रतिदिन आप एक ऐसा भला कार्य किया करें, जिससे किसी दूसरे व्यक्तिके मुखपर प्रसन्नता आये और उसे आन्तरिक सुख उत्पन्न हो। दूसरोंमें दिलचस्पी लेकर अपनी चिन्ता दूर करें।

मनकी शान्ति

जिसकी आज सबसे अधिक आवश्यकता है

संसारमें अनेक प्रकारके धन हैं, नाना प्रकारकी शक्तियाँ तथा चेतनाएँ हैं; किंतु सबसे बड़ी विभूति है—मनकी शान्ति। जो भीतरसे शान्ति-जैसी अमृतदायिनी शक्तिका रसास्वादन करता है और भौतिक जगत्‌में व्याप्त क्षण-क्षणमें परिवर्तित होनेवाले कोलाहलसे विचलित नहीं होता, वही मानव स्थितप्रज्ञ है। मनकी शान्ति मिल जानेसे क्रोध, बेचैनी, चिन्ता, उद्वेगके विषैले तन्तु उत्पन्न नहीं होते। इसको पा लेनेसे घबराहट, उत्तेजना और व्यर्थकी शीघ्रता उत्पन्न नहीं होती; अपचन, मन्दाग्नि, सिरदर्द आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

आन्तरिक शान्तिका तात्पर्य यह है कि आपकी शरीररूपी मशीनको अपना कार्य स्वाभाविक रूपमें करनेका अवसर प्राप्त हो रहा है, उसमें कोई अप्राकृतिक या अनुचित दबाव या खिंचाव नहीं है। कोई भी विकार—भय, चिन्ता, वासना, उत्तेजना, घृणा, ईर्ष्या—जब मनमें जटिलतासे प्रविष्ट हो जाता है, तब वही स्थिति होती है, जो मशीनमें मैल, कंकड़, पत्थर या लोहेका कोई टुकड़ा यकायक अटक जानेसे हो जाती है। जैसे मशीनका सुचारुरूपमें कार्य करना अवरुद्ध हो जाता है, वैसे ही किसी भी विकारके मनमें प्रविष्ट होते ही एक अजीब थरथराहट, कम्पन, द्रुतगति, उसकी स्वाभाविक गतिको अस्त-व्यस्त और पंगु कर देती है। घबराहटसे मनकी शान्ति भंग हो जाती है तथा मनुष्यका विवेक भयके आतंकसे दब जाता है। चिन्ताका भार मनुष्यको निराशासे भर देता है। क्रोधकी उत्तेजनामें वह आग-बबूला होकर कर्तव्य, मान-मर्यादा विस्मृत कर बैठता है। कामोत्तेजनाकी मलिनता सर्वत्र छा जाती है। इस अस्थिर मनःस्थितिपर काबू पाना मनःस्थिरताका द्वार खोलना है। प्रायः देखा जाता है मनकी अस्थिर अवस्थामें हम ऐसे गर्हित, निन्द्य, अशोभनीय कार्य कर बैठते हैं, जिनपर हमें बहुत पछताना पड़ता है। जितनी देर मनका विक्षोभ हमारे ऊपर सवार रहता है, उतनी देरतक हम क्या-से-क्या हो जाते हैं? मनोवैज्ञानिकोंका कथन है कि मनुष्यके अतल (Un-conscious) क्षेत्रमें मानवके पुराने संस्कार दबे पड़े हैं। उत्तेजनाकी ठेस पाते ही, ये अभद्र प्रवृतियाँ अनायास ही जाग्रत् हो उठती

हैं और मनुष्यकी विवेक-बुद्धिपर हावी होकर अपना गंदा मायाजाल बुनना प्रारम्भ कर देती हैं। यदि हम मनपर अपना नियन्त्रण त्याग दें तो यह स्पष्ट है कि यह पापी हमें कहीं-से-कहीं खींचकर ले जा सकता है। कहीं हम अपवित्रता या वासना, ईर्ष्या, स्वार्थकी बातें सोचने लगें तो सम्भव है, यह हमें शैतान ही बना डाले और हम मान-मर्यादा-कर्तव्य-ज्ञानसे शून्य हो जायँ। हमें इस बातका सदैव ध्यान रखना चाहिये कि कहीं हमारा शैतान न जाग्रत् हो जाय। हमारी दुष्प्रवृत्तियाँ न भड़क उठें, हम कोरी भावनामें न बह जायँ।

हमारे मन:प्रदेशमें काँटेदार भयंकर वन हैं तो सुमधुर सुगन्धित पुष्पोंसे परिपूर्ण उद्यान भी हैं। शैतानी प्रवृत्तिको जाग्रत् कर लेनेसे मनमें भयंकर वन निर्मित होते हैं और दैवी प्रवृत्तिको जाग्रत् कर लेनेसे हरे-भरे उद्यानोंका निर्माण होता है, सुख-शान्तिका शीतल मन्द समीर बहता है, प्रेयके पुष्प हँसते हैं और संतोषकी कोकिल कूजती है। जिस चतुर मालीने अपने मनरूपी उद्यानमें सहानुभूति, दया, करुणा, प्रेमके वृक्ष लगाये हैं, वह उसीकी प्रतिच्छाया बाह्य जगत्में सर्वत्र देखता है। उसे संसार शान्त प्रतीत होता है। उसे सब ओरसे सहानुभूति, दया और प्रेम ही मिलते हैं।

आपको संसारमें इतना शोर-गुल, कोलाहल, मार-काट, दु:ख-दैन्य, पीड़ा, अविश्वास क्यों दीखता है? आप संसारके कुटिल संघर्षकी बुराई करते क्यों नहीं थकते?

कारण, स्वयं आपके मानस-जगत्में अव्यवस्था है। अहंकार और संघर्ष भरा है। आपकी कुटिल शक्तियाँ जाग्रत् हैं, जो आपके दृष्टिकोणको धूमिल बनाये हुए हैं। शैतानी दुर्गुणोंके कारण आप चिन्ता, विषाद, भय, द्वेष, ईर्ष्याके अपने बुरे विचारोंको दूसरोंपर थोप देते हैं। दोष स्वयं आपमें, आपके आन्तरिक प्रदेशमें है; वस्तु-जगत्में नहीं।

आपको यह मान लेना चाहिये कि शैतानी दुष्प्रवृत्तियोंसे आपका कोई सरोकार नहीं है। आप सुख-शान्तिस्वरूप परमात्माके अंश हैं और अपने हृदयमें स्थित परमात्माके दैवी गुण ही अन्त:करणसे बिखेर सकते हैं। आप सुखस्वरूप आत्मा हैं। परमात्माके अनन्त उपकारोंकी छाप आपके व्यक्तित्वपर है। प्रसन्नता, आनन्द और हितके विचार ही मन-मन्दिरमें रख सकते हैं। हितैषी भावनाएँ मनमें शान्ति उत्पन्न करती हैं, विरोधी भावनाएँ अशान्तिका प्रमुख कारण हैं।

'मैं सबके प्रति प्रेमकी विचार-लहरें छोड़ता हूँ। मेरा किसीके प्रति

शत्रुभाव नहीं है। सब मेरे हितैषी हैं। सब मुझे आनन्द और उत्साहकी दैवी सम्पदाएँ देते हैं। मेरे अंदर शान्ति है। मेरे बाहर शान्तिका प्रकाश है। मैं स्वयं शान्त रहता हूँ तथा दूसरोंको शान्त रखता हूँ। मेरे चारों ओरका वातावरण प्रशान्त है।' इस प्रकारके विचार मनमें दृढ़तासे जमानेसे मनुष्य धीरे-धीरे शान्त प्रकृति प्राप्त कर लेता है।

हमें चाहिये कि हम शान्तिसे बातें करना सीखें। शान्तिपूर्वक सब कार्य सम्पन्न करें, जिससे हम अपने मन तथा शरीरसे सर्वाधिक कार्य ले सकें। मन शान्त रहेगा तो शरीर स्वस्थ रहेगा। शान्त रहो! शान्त रहो!!

शरीरपर विचार तथा दृढ़ संकल्पका तीव्र प्रभाव होता है। यदि हम शान्त रहनेका संकल्प मनमें धारण कर लें तो यह हमारी प्रकृतिका एक अविभाज्य अंग बन सकता है।

जो-जो बातें आपको उलझन या उत्तेजनामें फँसाती हैं, उन्हें ठंडे दिमागसे करनेकी आदत डालिये। ठंडा [illegible] पीकर शान्त हो जाइये, कुछ विश्राम कर लीजिये, प्रसंग बदल दीजिये या किसी रुचिकर कार्यमें निरत हो जाइये; उत्तेजनाका उफान शान्त हो जायगा। जैसे ही चित्त शान्त हो, वैसे ही अपनी पहली समस्यापर विचार करने लगिये।

पत्नीसे नाराजगी, बच्चोंके झगड़े, नौकरोंकी त्रुटियाँ या मातहतोंकी अप्रियकर बातोंपर चिन्तित रहनेके स्थानपर शान्तिसे उन्हें सुलझानेसे काम चल सकता है। जबतक शान्ति मनमें न आ जाय और विवेक पूरी तरह जाग्रत् न हो जाय, किसी प्रमुख समस्याका अन्तिम निर्णय मत कीजिये।

मातहतोंकी प्रताड़नापर, ग्राहककी आलोचनापर या गुरुजनोंद्वारा दी गयी सजापर मनकी शान्तिको कदापि हाथसे न जाने दीजिये। घरमें आये हुए मेहमानोंके द्वारा दी गयी तकलीफोंपर उत्तेजित हो एकाएक अशान्त न हो जाइये। धैर्यसे उसे सहन कीजिये। उत्तेजनाकी आँधीमें सम्भव है कुछ ऐसी अप्रिय बात आप उच्चारण कर डालें, जो छूटे हुए तीरकी भाँति कभी वापस न आ सके और आपको आगे चलकर पछताना पड़े। चित्तकी शान्ति हाथसे न जाने दीजिये।

मानस शान्तिके अमोघ साधन

मनोविज्ञानका यह नियम है कि हम अपने कार्योंद्वारा जैसा अभिनय करते हैं, वैसा ही भाव अंदर मनमें अनुभव भी करते हैं। बाह्य प्रसन्नताका अभिनय

हमें मानसिक जगत्में आनन्द देता है। कभी-कभी हम दूसरोंको दिखानेके लिये आनन्द, उल्लास, प्रसन्नताकी मुख-मुद्रा बनाते हैं, मुसकराते हैं या खिलखिलाकर हँस उठते हैं, तो हम अंदर मनमें भी उस आनन्दकी अनुभूति प्राप्त करते हैं। जैसा बाह्य स्वरूप, वैसी मन:स्थितिका निर्माण—यही सिद्धान्त है।

फिर आप क्यों निराशा, दुःख, कष्टकी मुखमुद्रा बनाते हैं? क्यों बाहरसे मुहर्रमी लिबासमें रहते हैं? प्रसन्नताका बाना पहनिये। प्रसन्नताके कार्य कीजिये। इष्ट-मित्रोंके साथ रहकर दो क्षण हँसी-खुशीसे व्यतीत कीजिये। जब चार मित्र हँसेंगे, बोलेंगे, उनके साथ आप भी प्रसन्नताका अनुभव करेंगे। आज आप प्रसन्न रहें; कल देखा जायगा। सम्भव है, यह आजकी प्रसन्नताका अभिनय आपके स्वभावका एक अंग बन जाय।

कम-से-कम आज यह करें

आपको चाहिये कि आप यह प्रतिज्ञा करें—'मैं स्वयं आनन्दित होऊँगा और अपने सम्पर्कमें आनेवाले दूसरे व्यक्तियोंको आनन्दित करूँगा। कम-से-कम आजके लिये मैं जैसी परिस्थितियोंमें हूँ, उन्हींमें बिना चिन्ताके आनन्द और संतोषके साधन एकत्रित करूँगा। मैं अपने परिवार, पेशा या व्यापार और भाग्यसे—जैसा मुझको मिले हैं, उन्हींको सुन्दर बनाने और उन्हींमें प्रसन्न रहनेका प्रयत्न करूँगा।'

कम-से-कम आज मैं अपने शरीरकी उचित देख-रेख करूँगा। उसमें कहाँ टूट-फूट, कमजोरी या शैथिल्य आ रहा है, उसे दूर करनेका प्रयत्न करूँगा; पौष्टिक तत्त्व दूँगा, विश्राम और मनोरंजन दूँगा, शरीरकी ओरसे लापरवाही नहीं करूँगा। शरीररूपी इस बहुमूल्य मशीनका उचित संचालन और उन्नतिके साधन काममें लाऊँगा।

कम-से-कम आज मैं अपने मनको बलवान् बनानेकी चेष्टा करूँगा। मैं आज कोई महत्त्वपूर्ण उपयोगी कार्य करूँगा। नीरस और शुष्क विषयके अध्ययनसे मनको हटाऊँगा। मैं दृढ़तासे अपने मनको गम्भीर उच्च विषयक तत्त्वोंमें संलग्न रखूँगा।

मैं आज अपनी आत्माको मजबूत बनानेका काम शुरू करूँगा। मैं किसीके प्रति आज कोई अच्छा सहायताका कार्य करूँगा, मैं प्रसन्न रहूँगा और दूसरोंको आकर्षित करूँगा। मैं आज इतना सुन्दर बननेका प्रयत्न करूँगा,

जितना कि मैं सम्भवतः हो सकता हूँ! मैं दूसरोंकी चुगली न करूँगा, मिथ्या दोषदर्शनमें न पड़ूँगा। गुणोंकी उदारतापूर्वक प्रशंसा करूँगा; दूसरोंके सुधारकी व्यर्थ चिन्ता नहीं करूँगा। मैं आज दिनभर एक आदर्शरूपमें जीवनको व्यतीत करूँगा, सारे जीवनके जंजाल या समस्याओंमें एकदम न फँस जाऊँगा। मैं दो शत्रुओंको मार भगाऊँगा—जल्दबाजीको तथा अनिश्चितताको। इनका वास मेरे चरित्रमें न रहेगा।'

शत्रुभावसे मुक्त रहिये

जब हम अपने शत्रुओंको घृणा करते हैं, तब हम उन्हें अपने मानसिक जगत्‌पर हावी कर लेते हैं। आन्तरिक मनमें उनका डर हमें सदा-सर्वदा बना ही रहता है। वे हमारी निद्रा, हमारी भूख, हमारे रक्तसंचालन, हमारे स्वास्थ्य और हमारी प्रसन्नताको नष्ट कर धूलमें मिला देते हैं। यदि आपके शत्रुओंको मालूम हो जाय कि आप उनके बारेमें यह सोचा करते हैं या चिन्तित रहते हैं तो उन्हें इतनी प्रसन्नता हो कि वे खुशीसे नाच उठें। हमारी घृणा केवल उन्हींको हानि नहीं पहुँचाती, वरं यह घृणा-पिशाचिनी हमारे रात-दिनको भी नरक बना देती है।

यदि स्वार्थी व्यक्ति आपसे अनुचित लाभ उठाना चाहें तो उन्हें अपनी मित्र-मण्डलीकी सूचीसे पृथक् कर दीजिये, किंतु उनसे लड़ाई-झगड़ा कर कटुता उत्पन्न न कीजिये; अन्यथा यह कटुता आपकी मानस शान्ति भंग कर देगी। जब आप उनके प्रति कटुताकी भावनाएँ मनमें रखते हैं, तो आप अपने-आपको हानि पहुँचाते हैं। जिन व्यक्तियोंको 'हाई ब्लड-प्रेशर' होता है, उसका कारण प्रायः उनके मनमें अपने शत्रुओंके प्रति क्रोध और घृणासे उत्पन्न अनुचित तनाव है। जब क्रोध और ईर्ष्या पुराने मानसिक रोग हो जाते हैं तब हृदयकी अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

यही कारण है कि ईसा महान्‌ने कहा है—'अपने शत्रुओंसे प्रेम करो।' ईसा तत्कालीन नीतिकी ही बात नहीं कर रहे थे, वरं वे मानसिक रोगोंकी दवा बता रहे थे। जब उन्होंने कहा—'सौमें निन्यानबे बार क्षमा कीजिये' तो वे हमें हृदयरोगों, पेटके घावों तथा पाचनसम्बन्धी अनेक रोगोंसे बचनेका मार्ग बता रहे थे। जो व्यक्ति निरन्तर क्रोध या घृणामें फँसा रहता है उसके मुखपर स्थायी झुर्रियाँ और वृद्धावस्थाके चिह्न प्रकट हो जाते हैं।

असमयमें ही उसका यौवन विलुप्त हो जाता है।

यदि हम अपने शत्रुओंसे प्रेम नहीं कर सकते तो कम-से-कम हमें अपने-आपसे तो प्रेम करना चाहिये। हम अपने-आपसे इतना प्रेम करें कि हमसे शत्रुता माननेवाले भी हमारी मानस-शान्ति भंग न कर सकें। अतः आइये, हम उन्हें भूल जायँ। उनकी हमारे प्रति की गयी अशिष्टताओंको क्षमा कर दें।

इस चिन्तासे मुक्ति पानेका एक उत्तम उपाय यह है कि आप उन व्यक्तियोंके विषयमें सोचें ही नहीं, जिन्हें आप नापसंद करते हैं। सबसे दोस्ती, सबसे प्रेम रखनेका दृष्टिकोण मैत्री-भावनाका अभ्यास हमारे मनके क्रोध, स्वार्थ, ईर्ष्या, अभिमान, राग, द्वेष, छल-प्रपंचको नष्ट कर मानस-शान्ति प्रदान करता है। मैत्री-भावना एक अमोघ अमृत है। मैत्री-भावनाको हृदयके अन्तःस्थलमें बसा लेनेसे ईर्ष्या, प्रतिशोध, दुर्भावना, उद्वेग दूर हो जाते हैं। सबसे मैत्री रखनेवाला संयमी सबका प्रिय होता है। रात्रिमें वह मधुर निद्राका आनन्द प्राप्त करता है। धीरे-धीरे उसके शत्रु भी उससे शत्रुता भूलकर प्रेम करने लगते हैं। मैत्री-भावना मनुष्यको सबके प्रति—चाहे मित्र हो या शत्रु, पापी हो या पुण्यात्मा—सौहार्द, प्रेम, बन्धुत्व, सहानुभूतिका पवित्र भाव रखना सिखाती है। मैत्रीभावके अभ्याससे हम इन्हीं सद्‌गुणोंकी फुलवारी अपने मनरूपी उद्यानमें लगाते हैं।

महाभारत शान्तिपर्वमें क्षमा, तितिक्षा, इन्द्रियदमन और सहिष्णुताके जो महत्त्वपूर्ण उपदेश भरे पड़े हैं, उनमें गहरी मनोवैज्ञानिक सत्यता है—

किसीके मर्ममें चोट न पहुँचावे, कठोर वचन न बोले। नीच मनुष्यको श्रेष्ठ वस्तु समझानेका प्रयत्न न करे। जिसे सुनकर दूसरोंको उद्वेग हो, ऐसी नरकादि पापलोकमें डालनेवाली अमंगलमयी बात न कहे। कटुवचनरूपी बाण जब मुँहसे निकल पड़ते हैं, तब उनकी चोट खाकर मनुष्य दिन-रात शोकमें डूबा रहता है। अतएव विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह किसीपर भी वाग्बाणका प्रयोग न करे। दूसरा कोई भी यदि विद्वान्‌को कटुवचनरूपी बाणोंसे खूब घायल करे तो भी शान्त रहनेमें ही श्रेष्ठता है। दूसरोंके क्रोध करनेपर भी जो बदलेमें प्रसन्न रहता है, वह उसके सब पुण्योंको ग्रहण कर लेता है।

जो जगत्‌में निन्दा करनेवाले और आवेशमें डालनेवाले प्रज्वलित क्रोधका दमन कर लेता है, जिसका चित्त दोषरहित और प्रमुदित रहता है तथा जो

दूसरोंके दोष नहीं देखता; वह पुरुष अपनेसे द्वेष रखनेवाले व्यक्तिके सब पुण्य छीन लेता है। आर्यपुरुष क्षमा, सत्य, दया, सरलताको श्रेष्ठ बतलाते हैं।

वाणीका वेग, मनका वेग, क्रोधका वेग, तृष्णाका वेग, उदरका वेग और उपस्थका वेग—इन प्रचण्ड वेगोंको जो सह लेता है, उसीको मुनि कहा जाता है।

क्रोधीसे क्रोध न करनेवाला, असहनशीलसे सहनशील, अमानवसे मानव और अज्ञानीसे ज्ञानी श्रेष्ठ है। जो दूसरेकी गाली सुनकर भी बदलेमें उसे गाली नहीं देता, उस सहनशीलका दबा हुआ दुःख ही गाली देनेवालेको भस्म कर सकता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है।

मानस-शान्तिका मजा लेनेका एक उपाय यह है कि हम अपने शत्रुओंके विषयमें न सोचें, न विचारें, प्रत्युत उन्हें मनःपटलसे निकाल दें। जब हम उनके प्रति घृणा और प्रतिशोधकी भावनाओंमें डूबे रहते हैं, इससे उनकी अपेक्षा हमारी घृणा और प्रतिशोधका विष हमें अधिक हानि पहुँचा देता है।

कृतज्ञताकी आशा न रखें

अनेक व्यक्ति इस भावनासे परेशान और चिन्तित रहते हैं कि दूसरोंने उनकी सेवा, कृपा, भलमनसाहत या अच्छाईका कोई पुरस्कार नहीं दिया। कृतज्ञताके दो मीठे शब्द भी न कहे। दूसरोंकी उनके प्रति कठोरता, शुष्कता, सख्ती उन्हें हमेशा चिन्तित रखती है। वे प्रायः कहा करते हैं—

दुनिया भी कैसी स्वार्थी और खुदगर्ज है। हमने अमुकके साथ कितनी भलाई की। रुपये, पैसे, शरीर, सद्भावनाओंसे सहायता की, पर हमारी जरूरतके समय उसने आँखें फेर लीं। हमारी सज्जनताका यह शुष्क स्वागत!

कृतज्ञता प्राप्त करनेके लिये, पुरस्कारकी प्राप्तिके लिये की गयी सेवाका मूल्य अत्यन्त अल्प होता है। कृतज्ञताकी आशा रखकर सेवा करनेवाला सेवाको भूलकर कृतज्ञताकी खोजमें लग जाता है और इस प्रकार सेवासे तो वंचित होता ही है, कृतज्ञता न मिलनेपर दुःख और द्वेषको भी बुला लेता है। दूसरेकी सेवासे कृतज्ञ होना चाहिये, पर सेवा करके किसीसे कृतज्ञताकी आशा नहीं रखनी चाहिये।

आप किसीसे नमस्ते या सलामकी भी आशा मत रखिये। यदि किसीके साथ आपने भलाई की भी है तो उसे भूल जानेमें ही श्रेष्ठता है, क्योंकि उसका प्रतिदान यदि उसी अनुपातमें आपको प्राप्त न हुआ तो आप वृथा

ही मनमें दुःखी रहेंगे। मुझे किसीकी कृपा, प्रोत्साहन, कृतज्ञताकी आवश्यकता नहीं। मेरी आत्मप्रेरणा ही सब कुछ है—यही आत्मविश्वास सर्वत्र विजयी होता है और सुख प्रदान करता है।

डेल कार्नेगीका विचार है, 'यदि हम आनन्द लूटना चाहते हैं तो हम कृतज्ञता-अकृतज्ञताको बिलकुल भुला दें और जिसे देना हो, उसे कुछ भी इस भावसे दें कि वह हमें इसका कोई प्रतिदान नहीं देगा। हम दूसरोंसे बदलेमें कुछ भी पानेकी आशा न रखें—यही उत्तम है।'

अतः स्मरण रखिये, प्रसन्न रहनेका मार्ग यह है कि आप दूसरोंकी कृतज्ञता, उत्साह, प्रेरणा, प्रोत्साहन या किसी प्रकारकी भी सहायताकी भावना मनसे निकाल डालें। मुझे दूसरेकी किसी प्रकारकी भी सहायता नहीं चाहिये। मेरे पास सब कुछ है—यह भावना मनमें रखकर कार्य करें। जिसे कुछ देना है उसे निःस्वार्थ भावसे बिना कुछ प्रतिदान पानेकी कामना किये ही दें।

आध्यात्मिक आनन्द

भारतीय संस्कृतिकी मूल भावना आध्यात्मिक है। अनन्तकालसे जीवित और सर्वव्यापी भारतीय मनोभावों, संस्कारों और शान्तिका रहस्य हमें प्रभुकी भक्ति, पूजन, कीर्तन, भजनमें प्राप्त होता है। भक्ति तथा उसका उच्च आनन्द हमारी भावनाओं, मान्यताओं, विचारों एवं आदर्शोंको रसमय बनाता है। भक्तिसे स्निग्ध वचन गीतिकाव्यके रूपमें प्रवाहित होकर साहित्यकी अमूल्य निधि बने हैं। भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाम, प्रेमतत्त्व, अध्यात्म-रहस्य, गुण और प्रभावका वर्णन करते-करते सूर, तुलसी, मीराँबाई, नानक और कबीर इत्यादि ऐसी काव्य-सम्पदा हमारे लिये छोड़ गये हैं कि जिसके गायन-मात्रसे हमारे प्रमाद, आलस्य, भोग और पापका सर्वथा निवारण हो जाता है; काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अन्य दुर्विचार नष्ट हो जाते हैं।

जब आप सांसारिक दौड़-धूप एवं कुटिल संघर्षसे थक जायँ, तब लोकहितकारी परमानन्द प्रदान करनेवाली प्रेममयी भक्तिका आनन्द लीजिये। भक्तिरससे परिपूर्ण दो-चार सात्त्विक भजन धीमी-धीमी प्रेममयी वाणीसे गुनगुनाइये। कीर्तनमें ऐसे रम जाइये, जैसे प्रत्यक्ष भगवान्‌के सम्मुख ही बैठे हुए हैं। भगवद्भजनमें आपको सच्ची आन्तरिक शान्ति प्राप्त होगी। भजनके आनन्दकी तुलना संसारका कोई आनन्द नहीं कर सकता। प्रभुके प्रेमरसके कीर्तनमें संसारके समस्त कल्मष, संघर्षपूर्ण चिन्ताएँ, दुरभिसन्धियाँ प्रक्षालित हो जाती हैं। मनुष्यकी कुछ ऐसी प्रवृत्ति है कि भगवद्भजनमें रमण करनेसे उसे सर्वाधिक आनन्द प्राप्त होता है। इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं और मन शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

हृदयकी सच्ची प्रार्थनामें जो आन्तरिक आनन्दानुभूति होती है, हृदय जिन सात्त्विक भावनाओंसे परिपूर्ण होकर आत्मविभोर हो जाता है, उसे भोले भक्तका अकलुष हृदय ही अनुभव कर सकता है। भक्तिरससे स्निग्ध व्यक्ति आत्माकी ज्योतिके प्रकाशमें रहता है। आत्मा, जो परमात्माका अंश है, सारे शरीरकी स्फूर्ति, आनन्द, आह्लादका उद्‌गम है। अपने दूषित विचारोंका दमन करो, तुम्हारे आनन्दोपभोगमें विश्वकी कोई शक्ति बाधा नहीं डाल सकती।

जो जिस स्तरपर है, वह अपनी शिक्षा, बुद्धि, विवेक तथा भावनाके अनुसार मनोरंजनका साधन प्राप्त करता है। जो पशुत्वकी कोटिके हैं, वे

खान-पान, भोग-विलास, इन्द्रियलोलुपता तथा साधारण वस्तुओंमें आनन्द खोजते हैं; किंतु जो आत्माके आनन्दको समझते हैं, वे साधारण कोटिपर नहीं रुकते। निरन्तर आत्मचिन्तनमें निरत रहते हैं।

विषयोंकी लालसा करनेवाले व्यक्ति कभी सच्चा आनन्द प्राप्त नहीं कर पाते। गीतामें कहा गया है—

'विषयोंकी चिन्ता करनेसे उनमें संग (आसक्ति) होता है, संगसे काम या उनको भोगनेकी कामना उत्पन्न होती है, कामसे (यदि इच्छा पूर्ण न हो तो) क्रोध होता है, फिर क्रोधसे मोह और मोहसे स्मृतिका नाश होता है— भले-बुरेका ज्ञान नहीं रह पाता। स्मृति-नाशसे बुद्धिकी हानि और बुद्धिकी हानिसे सर्वनाश हो जाता है—मनुष्यकी अधोगति होती है। वह विषयोंमें आनन्द ढूँढ़ता हुआ विनाशको प्राप्त होता है।'

भगवान्‌की भक्ति, अध्यात्म-चिन्तन, परमतत्त्वकी खोजमें उच्चतम आनन्दकी उपलब्धि होती है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

अर्थात् 'यदि मनुष्य राग और द्वेषका परित्याग करके मन-इन्द्रियोंको वशमें करके उनके द्वारा विषयोंका ग्रहण करे तो वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है।'

इन्द्रियाँ जब हमारे वशमें न होकर दूषित विषयोंकी ओर हमें ले जाती हैं, मन जब हमारे वशमें न होकर नाना प्रकारकी चिन्ताओं, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोधकी विचार-धाराओंमें संलग्न रहता है, तब मनमें चंचलता और अस्त-व्यस्तता आती है और फलतः हम आनन्दसे दूर होकर दुःखके गहरे गड्ढेमें गिर जाते हैं; परंतु जब हम आध्यात्मिक दृष्टिकोणको अपनाकर सर्वत्र एक ब्रह्मके दर्शन करते हैं, जब मन सदा आनन्दस्वरूप परमात्मामें मग्न रहता है तब हमें सर्वत्र भगवान्‌का रूप ही दृष्टिगोचर होता है। सर्वोत्तम आनन्द जो हमारे मन, आत्मा और शरीरको अखण्ड आनन्द प्रदान करता है, आध्यात्मिक आनन्द ही है।

आध्यात्मिक सुख एवं आनन्दकी महिमा समझाते हुए भगवान्‌ने निर्देश किया है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

(गीता ६। २१)

अर्थात् 'इन्द्रियोंसे अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित हुआ यह योगी भगवत्-स्वरूपसे चलायमान नहीं होता है।'

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

'और परमेश्वरकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत्-प्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे विचलित नहीं होता है।'

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥

(गीता ६। २३)

'और जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये। वह योग न उकताये हुए चित्तसे अर्थात् तत्पर हुए चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।'

भगवान्‌ने प्रतिज्ञापूर्वक कहा है—'हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य और शूद्रादि तथा पापयोनिवाले भी जो हों, वे भी मेरी शरणमें आकर परम गतिको प्राप्त होते हैं। फिर क्या कहना है कि पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन परमगतिको प्राप्त होते हैं। इसलिये तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्य-शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।' अतएव भगवद्भजन, हरिनाम-कीर्तन, सद्ग्रन्थावलोकन, सदाचारी सत्पुरुषोंका सत्संग, इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार कर उन्हें ब्रह्मानन्दमें लीन करने तथा इन्द्रियों एवं मनकी विषय-भोगसे निवृत्तिके द्वारा ही सबसे श्रेष्ठ आनन्दकी उपलब्धि हो सकती है। जिस साधकको परमेश्वरके जिस रूपमें अधिक प्रीति और श्रद्धा हो, निरन्तर उसीका भजन, पूजन और चिन्तन करना चाहिये।

आत्माका आदेश पालन करें

१–एक छोटे बालकने, जो बड़ा होकर एक प्रसिद्ध आत्मवेत्ता बना, चार वर्षकी अल्पायुमें प्रथम बार एक छोटा–सा कछुआ देखा, उसे इस छोटे–से जानवरको रेंगते देखकर विस्मय हुआ। उसके मनमें आया कि तनिक लकड़ीसे मारकर देखूँ तो सही यह अपना नन्हा–सा मुँह, हाथ, पाँव कहाँ छिपाता है? उसने मारनेके लिये लकड़ी उठायी, लेकिन""""न जाने मनके अंदरसे किसीने लकड़ी मारनेसे उसे रोक लिया। वह कछुएको न मार सका, तनिक भी चोट न पहुँचा सका। इस घटनाका वर्णन स्वयं करते हुए बादमें उन्होंने लिखा—

'न जाने मन, आत्मा या हृदयकी किस अज्ञात शक्तिने मेरा हाथ जकड़ लिया। मैं उस अबोध पशुको कुछ भी हानि न पहुँचा सका। मैं मुश्किलसे लकड़ी कछुएकी पीठतक लाया होगा कि किसी अज्ञात शक्तिने मेरे हृदयमें कहा—'यह क्या करते हो? अबोध कछुएको हानि पहुँचाना तो पाप है। कहीं ऐसा महापाप मत कर बैठना। देखो, सँभलो, हाथ सँभालो, अनजान गरीब कछुएको मारकर पापके भागी न बनना। जो किसीको हानि न पहुँचाये ऐसे जीवको मारना महापाप है।' इन विचारोंसे मैं ऐसा भर गया कि इच्छा होते हुए भी उस कछुएको मार न सका। शरीरपर जैसे मेरा प्रभाव न था, वह किसी अज्ञात शक्तिके काबूमें था। मैं भागा–भागा घर माँके पास पहुँचा और उनसे पूछा कि 'यह कर्म बुरा है, यह पाप है, पापसे दूर हटो' कहनेवाला कौन था? माताजीने अत्यन्त प्रेमसे मेरे अश्रु पोंछते हुए मुझे समझाया—

'बेटा! कोई इस शक्तिको अन्तरात्मा कहता है, कोई इसे आत्मध्वनिके नामसे पुकारता है, किंतु सत्य बात तो यह है कि यह मनुष्यके अन्तरमें स्थित परमेश्वरकी आवाज है, जो भले–बुरेका विवेक करती है। यदि तुम आत्मध्वनिके आदेशको ध्यानसे सुनोगे और उसके आदेशानुसार कार्य करोगे, तो यह ध्वनि तुम्हें अधिक साफ, अधिक स्पष्ट और अधिक ऊँची सुनायी पड़ेगी। सदैव सीधा और कल्याणमय मार्ग प्रदर्शित करेगी। किंतु यदि तुम इसकी उपेक्षा करोगे तो धीरे–धीरे यह लुप्त हो जायगी और तुम्हें बिना पथ–प्रदर्शनके गहन अन्धकारमें भटकनेके लिये छोड़ देगी।

२–आत्म–ध्वनि या अन्तरात्माका आदेश मनुष्यका एक दैवी गुण है।

मनुष्यकी आत्मा ही उसे उचित-अनुचित, सत्-असत्, नीर-क्षीरका विवेक करनेवाली शक्ति है। अन्य पशुओंमें औचित्य दिखानेवाली कोई शक्ति नहीं पायी जाती।

संसृतिजात प्रत्येक मनुष्य-देहधारीका शिशुत्व अत्यन्त पवित्र एवं निर्लेप होता है। बालकके हृदयमें भगवान् बोलता है। उसकी निर्दोष आँखोंसे दैवी तत्त्व झलकता है। स्वार्थ या ईर्ष्याका नृत्य उसके मनमें नहीं होता। सांसारिक लोभ, स्वार्थ या दुरभिसन्धि उसपर अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकती, कुवासनाएँ उसे अस्त-व्यस्त नहीं कर सकतीं। बालकका निर्लेप मन नैसर्गिकरूपसे किसी भी क्रियाके अनुकरणमें तत्पर रहता है। बचपनकी प्रत्येक दलित इच्छा या गुप्त मनमें पैठी हुई वासना अपनी प्रतिक्रिया किये बिना नहीं रहती। इन क्रियाओंकी अच्छाई-बुराईके बारेमें प्रायः हम अपरिचित होते हैं। आत्मध्वनि ही वह दैवी संकेत है जो हमें पग-पगपर बुराई और पापसे रोकती है। ज्यों ही हम कोई गंदा काम या पाप-कर्म करनेकी ओर प्रवृत्त होते हैं, त्यों ही आत्मा हमें धिक्कारती या कचोटती है कि हम अनिष्ट मार्गपर न जायँ, पापसे बचें, दुष्कर्मसे अपनी रक्षा करें।

आत्माकी आवाज प्रत्येक मनुष्यमें सुन पड़ती है। हो सकता है कि अधिक पापोंके अथवा बार-बार उपेक्षित होनेके कारण इसपर मैल-मिट्टी जम जाय और यह कुछ क्षीण-सी पड़ जाय, किंतु यह रहती है अवश्य। किसीमें तीव्र तो किसीमें मन्द। धर्मभीरु, ईश्वरनिष्ठ भक्तोंके हृदयमें अन्तर्ध्वनि बड़ी तेजीसे बोलती है। उनकी रक्षा करती तथा पथ-प्रदर्शन करती है। दुष्ट, पापी व्यक्तियोंमें अनाचारके कारण यह मोह, स्वार्थ और हिंसामें दब-सी जाती है।

आत्म-आदेश मनुष्यको मिला हुआ एक दैवी वरदान है, जो आनन्दकन्द परमेश्वरकी ओरसे मनुष्यको सत्पथपर अग्रसर होनेके लिये दिया गया है। हमारी आत्मा निर्विकार और अलिप्त है। उसमें किसी प्रकारका मल नहीं। यही आत्मा हमारे शुभ कार्यों, सात्त्विक विचारों, भव्य भावनाओं और उत्कृष्ट इच्छाओंकी प्रेरक शक्ति है। सर्वोत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप परमात्मा सबमें विराजमान है। यही आत्म-ज्योति है।

मनुष्यके स्वभावका परिष्कार, आत्मोन्नति, सत्प्रवृत्तियोंका विकास, आध्यात्मिक आनन्द सब कुछ इस आत्मतत्त्वपर निर्भर है कि हम अपनी आत्मध्वनिका कितना विकास करते हैं। आत्मध्वनि हमारे द्वारा विकासकी चीज

है। निरन्तर इसे सुनने तथा इसके अनुसार ध्यानपूर्वक काम करनेसे हमारी यह आत्मध्वनि और भी स्पष्टतर और तीव्रतर सुनायी देने लगती है। यदि हम आत्मध्वनिकी अवहेलना किसी कार्य या कालमें करते हैं तो आत्मनिर्देश धीरे-धीरे धीमा पड़ जाता है और हमारे पाप-कर्म उसपर अपनी कालिमा जमा लेते हैं; चोर, डकैत, खूनी, कातिल प्रायः सभीमें उच्चतर आत्माका निवास होता है; किंतु पुनः-पुनः आत्माके विरुद्ध जघन्य कार्य करने, आत्मध्वनिकी अवहेलना करनेसे वह धीमी पड़ जाती है। कालान्तरमें कोई दुष्कर्म, चोरी, डकैती, खून करते हुए उन्हें आत्माकी प्रताड़ना प्रतीत नहीं होती। बार-बार आत्माकी अवहेलनासे अन्तमें यह मृतप्राय हो जाती है। वह व्यक्ति दयाका पात्र है, जिसकी आत्मा दुष्कर्मों और पापोंके कारण मर गयी है।

३-आत्मध्वनि क्या है—यह वास्तवमें हमारे हृदयमें विराजमान परम प्रभु हैं। परमेश्वरका अस्तित्व प्रत्येक व्यक्तिके हृदय-मन्दिरमें है। विशुद्धभावसे सुननेवालेको हमारे हृदयमें बैठे-बैठे भगवान् हमें उचित राहपर चलनेका आदेश दिया करते हैं। जो व्यक्ति धार्मिक कृत्यों, साधनों, इन्द्रियोंके संयमद्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं और अनन्य शरणागतिको प्राप्त होते हैं, उन्हें अन्तर्ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ती है। आत्माकी [illegible] उठना स्वयं एक शुभ लक्षण है। उसपर भगवत्कृपा समझनी चाहिये। यही आत्मध्वनि जीवात्माको संसार-बन्धनसे मुक्त कर सकती है। जो आत्मध्वनि हमें सत्पथपर अग्रसर करती है वही आत्माका आदेश है। परमात्मतत्त्वकी प्रतीति इसी तत्त्वसे होती है।

आत्मध्वनि अंदर रहनेवाले ईश्वरका आदेश है। हमारा हृदय एक देवालय है, जिसमें परमेश्वरका निवास है।

'तुम नहीं जानते हो कि तुम देवताके मन्दिर हो और परम देवता तुम्हारे हृदयमें है।' (बाइबिल)

'उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा नामसे अभिहित पुरुषोत्तम देहके भीतर स्थित रहते हैं।' (गीता १३। २२)

'हे मरणधर्मशील मानव! तुम अपनेको जानो, क्योंकि तुम्हारे भीतर तथा अन्य सभीके भीतर एक अद्वितीय देवता है, जो बाहर आकर संसारके रंगमंचपर नाना प्रकारसे अभिनय करता है तथा प्रमाणित करता है कि ईश्वर है।'

यदि तुम वास्तविक आध्यात्मिक उन्नति चाहते हो तो आत्माकी आवाजको ध्यानपूर्वक सुनो और तदनुसार कार्य करो। प्रत्येक शुभ सात्त्विक

देवोचित शक्तिका उद्‌गम-स्थान स्वयं तुम्हारे अन्तरमें विद्यमान है। संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तुएँ केवल इसी तत्त्वमें समायी हैं कि मनुष्य आत्मिक शक्तियोंका कितना विकास करता है। यदि आत्मध्वनिके निर्देशपर चलता रहे तो उसकी उन्नति निश्चित है।

जो मनुष्य संसारमें सफल-जीवनके अभिलाषी थे, उन भक्त आध्यात्मिक पुरुषोंने प्रथम कार्य अपनी आत्माको जाग्रत् करनेका किया था। अन्त:करणद्वारा ध्यानसे सुननेपर हम परमात्माकी आज्ञाको जान सकते हैं। यदि आप अन्त:करणकी आज्ञाका पालन सीख लें तो मोटी-मोटी धार्मिक पुस्तकोंमें अटके रहनेकी कोई आवश्यकता न रहे, क्योंकि वे भारी-भरकम ग्रन्थ भी अन्तरात्माके सदुपयोगके ही परिणाम हैं। अन्त:करणकी आवाजका आदेश-पालन ही दुनियाके तमाम धर्मोंका मूल है।

कहते हैं एक बार एक रोमन राजनीतिज्ञ बलवाइयोंके साथ पकड़ा गया। बलवाइयोंने उससे व्यंगपूर्वक पूछा—'अब तेरा किला कहाँ है? अब तू किसके बलपर अकड़ेगा?' उसने हृदयपर हाथ रखकर कहा, 'यहाँ मेरा परमात्मा मेरे अंदर है। वह मेरा रक्षक है। उसके बलपर मैं सदा ऊँचा रहूँगा।' ज्ञानके जिज्ञासुओंके लिये यह उत्तर बड़ा मर्मस्पर्शी है, जो दूसरोंका सहारा चाहते हैं, जो सदा एक-न-एक अगुआ ढूँढ़ा करते हैं, उनसे मैं कहूँगा, ओ थोथी विचारधारावाले हलके मनुष्यो! तुम अपनी अन्तरात्माके, हृदयमें स्थित परमेश्वरके दृढ़ आश्रयको ढूँढ़ो, उसीपर डटे रहो, उसीपर विश्वास लाओ, उसका सम्मान करो।

संसारमें ऐसे अनेक दृढ़चित्त महापुरुष हो गये हैं जिन्होंने मरते दमतक अन्तरात्माकी टेक नहीं छोड़ी। सत्यवादी हरिश्चन्द्र, महाराणा प्रताप, वीर हकीकत राय, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गाँधी अन्तरात्माके पथपर अग्रसर रहे। ये आत्मिक बल-विकासके अनुकरणीय आदर्श हैं। इन-जैसे दृढ़ आत्माज्ञाकारी पुरुष होने कठिन हैं।

पाप यथार्थमें कहाँ है? कोई बात हमारी अन्तरात्मामें चुभे और हम उसे करें तो बस, यही पाप है। क्या आत्मध्वनिकी उपेक्षा परमात्मध्वनिकी अवहेलना नहीं है? क्या यह अपमान उस परमेश्वरकी प्राकृतिक नियम-सीमाका उल्लंघन करना नहीं है? आत्माकी पुकारकी अवहेलना अवनतिकी ओर अग्रसर होना है। आत्महननसे हम अपने ही लिये बुरा नहीं करते हैं,

प्रत्युत स्थानीय वातावरणको कुचेष्टा तथा कुविचारसे कलुषित कर देते हैं। आत्मध्वनिकी हत्या करना मानो स्वयं अपनी हत्या कर लेना है। जिनकी अन्तरात्मा नष्ट हो चुकी है, हाय! उन्होंने अपने सबसे बड़े हितैषी, मित्र और पथ-प्रदर्शकको खो दिया है। वे वास्तवमें उन अंधोंके समान हैं, जो बिना लाठीके गहरे और ऊँचे गारेमें छोड़ दिये गये हैं। उस व्यक्तिका पापपंकसे उद्धार होना कठिन है; क्योंकि बिना अन्तरात्माके विकास—धर्म-अधर्मका ज्ञान नहीं हो सकता और न धर्मपर दृढ़ विश्वास ही हो सकता है।

४—आत्माके आदेशकी अवमाननाका परिचित चिह्न क्या है? हम किस प्रकार जानें कि हम आत्माज्ञा नहीं मान रहे हैं? इसके चिह्न हैं—भय, लज्जा और विषाद तथा भूल सुधारनेपर प्रसन्नता। प्रथम तीनों मनोभावोंकी उत्पत्ति तब होती है जब हम किसी अनाचार या कुचेष्टाके करनेमें आत्माज्ञाका उल्लंघन करते हैं। जहाँ हमने दुष्कर्ममें हाथ डाला कि तुरंत मनमें एक संकोचकी उत्पत्ति होती है जो उस कुकर्मके करनेमें निषेधक सिद्ध होती है। तदनन्तर यह निषिद्ध कार्यका परिणाम भी प्रकाशित करती है कि 'यदि तू ऐसा पापकर्म करेगा तो तेरा भविष्य अन्धकारमय हो जायगा, तेरी प्रतिष्ठा और कीर्तिमें कलंकारोप होगा।'

जो व्यक्ति अन्तरात्माकी हत्या करता है, उसके मनमें एक गुपचुप पीड़ा सदा चुभती रहती है। वह दैवी प्रकोपसे भयभीत रहता है। तत्पश्चात् लज्जा उसकी कायामें प्रवेश करती है और वह किसी प्रतिष्ठित पुरुषसे चार आँखें नहीं कर पाता। यदि उसके पुण्य एवं सत्-संस्कार जोर मारते हैं तो एक दिन वह जाग्रत् हो उठता है और उसे अपनी भयंकर भूलका ज्ञान होता है। आत्माज्ञाके पालनमें वह पुनः अपनी भूल सुधारकर सुख तथा आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त करता है। महर्षि वाल्मीकि डाकू बन गये थे। एकाएक एक दिन उनकी अन्तरात्मा जाग्रत् हुई और वे परम विद्वान् तथा भक्त बन गये थे।

यह पश्चात्ताप, जो आत्माके आदेशके पालन न करनेके कारण मनमें उत्पन्न होता है, अनुभवशीलोंके जीवनको सुन्दर बनानेमें सहायक होता है। गंदगी, पाप, कुपथकी कुरूपतासे परिचित जो व्यक्ति जीवनकी विपत्तिकी कसौटीपर कसा जा चुका है और खरा है, ऐसा व्यक्ति फिर पापपंकमें नहीं फँसता।

प्रिय पाठक! यदि आप शान्ति, सामर्थ्य और शक्ति चाहते हैं तो अपनी अन्तरात्माका सहारा पकड़िये। आप सारे संसारको धोखा दे सकते हैं, किंतु

अपनी आत्माको कौन धोखा दे सकता है? आप दुनियाकी आँखोंमें धूल झोंक सकते हैं, पण्डित, विद्वान्, धनी, महात्मा [illegible] कुछ बन सकते हैं, पर यदि आपकी अन्तरात्मा शक्तिमान्, प्राणवान्, जाग्रत् नहीं है, यदि आप उसकी अवहेलना करते हैं तो आपके हृदयमें एक गुपचुप पीड़ा अवश्य होती रहेगी। यह है आपकी अन्तरात्माकी महान् शक्ति। इसे साधनेसे सब सध जायगा।

अन्तःकरणको बलवान् बनानेका उपाय यह है कि आप कभी उसकी अवहेलना न करें। वह जो कहे, उसे सुनें और कार्यरूपमें परिणत करें, किसी कार्यको करनेसे पूर्व अपने अन्तरात्माकी गवाही अवश्य लें। यदि प्रत्येक कार्यमें आप अन्तरात्माकी सम्मति प्राप्त कर लिया करेंगे तो विवेकपथ नष्ट न होगा। दुनियाभरका विरोध करनेपर भी यदि आप अपनी अन्तरात्माके आदेशका पालन कर सकें तो कोई आपको सफलता प्राप्त करनेसे नहीं रोक सकता।

मनको बाँधनेमें आत्मकल्याण है

मन ही मनका बोधक होता है, मन ही मनका साधक होता है, मन ही मनका उत्प्रेरक और रक्षक होता है। हमारे मनमें अद्भुत उत्पादक शक्तियाँ भरी हुई हैं, जिनके द्वारा प्रतिपल हमारा अस्थि-चर्ममय शरीर संचालित हुआ करता है। मन जैसा जिधर जिस प्रकारका आदेश देता है, अनुचरकी भाँति हमारा शरीर वही करता है। संचालन एवं नियन्त्रणका समग्र कार्य हमारे मनमें ही चलता रहता है।

शरीरमें मन केन्द्रिय-विभाग है, जिसमें सैकड़ों उपविभाग कार्य करते हैं। किसी विभागमें निरीक्षण होता है तो किसीमें दर्शन, मनन, चिन्तन, सम्बोधन इत्यादि। कहीं कल्पना अपना रूपहला स्वरूप चित्रित करती है तो कहीं विवेक सर्वत्र अपना नियन्त्रण करता है। कहीं वासनाओंका विभाग है, जो नाना प्रकारके प्रलोभन-आकर्षणका केन्द्र बनकर हमारे असंतोष और अन्तर्ज्वालाका कारण बनता है।

मन बोधक है। अर्थात् इसीके विवेकद्वारा हमें आत्म-बोध होता है। हम धन-जन-तन आदिकी निस्सारता, क्षणभंगुरताका ज्ञान प्राप्त करते हैं और सबसे बड़े शक्ति-केन्द्र परमात्मामें आकर केन्द्रित हो जाते हैं। हम परमात्माके ही सनातन अंश हैं। जो हममें है वही परमात्मामें है, जो परमात्मामें है वही हममें व्याप्त है—इस तत्त्वका बोध कराने और जीवनके लक्ष्यके प्रति उन्मुख करनेवाला हमारा मन ही है। उच्चतम विवेक, सर्वोच्च ज्ञानका भण्डार, शक्ति और सामर्थ्यका मूल केन्द्र मनमें है। इससे हम वह प्रोत्साहन प्राप्त करते हैं जिससे हमें आनेवाली परिस्थितियोंसे युद्ध करनेकी प्रेरणा मिलती है। हम आत्मनिर्भरता और निर्भीकता प्राप्त करते हैं।

मन हमारे पथको साधता अर्थात् उचित दिशामें रखता है, भटकने, पथ-भ्रष्ट होने नहीं देता। जीवन तो एक यात्रा है। हम साधनाद्वारा, कर्मद्वारा निरन्तर अपनी-अपनी यात्राएँ करते चलते हैं। जिसको जहाँ जाना है, जो कार्य करनेका निर्देश है, वह शक्तिके अनुसार करता चलता है। उद्देश्यपर आरूढ़ रहनेका अभ्यास मनकी एकाग्रताद्वारा ही सम्पन्न होता है। मनकी दृढ़तासे आप जो चाहें, जैसे चाहें कर सकते हैं। शरीरको एक स्थानपर अचल, अटल खड़ा करके कार्य ले सकते हैं। हम पुस्तकोंमें पुराने ऋषि-मुनियोंके वृत्तान्त

पढ़ते हैं, जो इतनी कड़ी साधना करते थे कि शरीरपर मिट्टी जम जाती थी और दीमक या पक्षी उसमें अपने घर-घोंसले बना लेते थे। मन फिर भी पूरी गति और शक्तिसे कार्य करता चलता था। हमारी साधनाओंमें सम्पूर्ण दृढ़ता हमारे मनकी है।

मनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, हम नाना मधुर वस्तुओंकी ओर आकृष्ट होकर मोहरज्जुमें आबद्ध हो जाते हैं, पर यह मन ही उचित दशामें आकर हमें मोह, वासना, आलस्य, तामस सुख, प्रमाद आदिसे मुक्त करता है। वैराग्य-जैसे दिव्यभावकी उत्पत्ति करता है।

मन चंचल है। विक्षिप्त बंदरकी भाँति एक डालसे दूसरी, फिर तीसरी, चौथीपर कूदता-फाँदता फिरता है। यह कभी एक वस्तुसे तृप्त नहीं होता, एक बार किसी विषय या वस्तुसे क्षणिक तृप्ति पाकर नयी वस्तु, नयी स्थितिकी कामना करता है। यह फूल-फूलपर विचरनेवाली तितलीकी भाँति सक्रिय है।

मन ही उत्प्रेरक है। नयी उमंग, नयी प्रेरणा, नयी स्फूर्ति हमें बाहरसे नहीं, अंदरसे ही प्राप्त होती है। नये उत्साहवर्द्धक सपनोंका निर्माता हमारा मन ही है।

ये मनकी एक स्थितिके भाव हैं। दूसरी ओर यही मन राग-द्वेष, निन्दा-स्तुति, लोभ-मोह, काम-क्रोध, विषाद-चिन्ता, भय-बाधाकी भ्रमात्मक कल्पनाओंमें डालकर अनेक कुटिल द्वन्द्वोंमें आबद्ध करता है और हमारा पतन कर देता है। कुटिल बनकर हमें अनेक विपदाओंमें, मानसिक दुश्चिन्ताओंमें डाल देता है और अनेक छोटे-बड़े पापकर्मोंमें प्रवृत्त कराता है। हमारे अहंभावको उभार देता है। हम भ्रममें पड़कर स्वार्थमय जीवन व्यतीत करने लगते हैं। मन ही विकारोंको उत्पन्न कर जीवनको कलुषित बनाता है।

मनुष्यके जीवनका कोई भाग मनके नाना उत्पातोंसे मुक्त नहीं है। बाल्यावस्थामें बिना विचारे ये मूर्खतापूर्ण कार्य, गलतियाँ उसे घेरे रहते हैं, यौवनमें काम-वासनाओंकी व्याधि, इन्द्रियलोलुपता, मदान्धता, मत्सर उसे अशान्त बनाये रहते हैं। बुढ़ापेमें इन्द्रियशैथिल्य और शारीरिक-मानसिक बीमारियाँ उसे दुःखी रखती हैं। ये सब मनके विकार हैं।

मन ही मनका बाधक होता है। मन पथभ्रष्ट हो माया और तृष्णामें बहकता है। एक तृष्णाके पश्चात् दूसरीको जन्म देता है। तृष्णामें लगे रहना एक ऐसी भूलभुलैयामें भटकते रहना है, जिसमेंसे जीवनपर्यन्त निकलना कठिन

ही नहीं, असम्भव-प्राय है। मन ही भयके नाना रूपप्रतिरूप उत्पन्न कर हमारे असंख्य बन्धनोंका कारण बनता है।

हमारी अतृप्ति मनकी ही एक संकटपूर्ण, अस्वस्थ और अनिष्ट वृत्ति है जिसमें मनुष्य हर क्षण नयी-नयी आवश्यकताएँ अनुभव करता और उनमें शान्ति प्राप्त करनेका विफल प्रयत्न करता है। मनको इधर-उधर दौड़ानेसे अन्तस्तलमें वासनाका वेग, लालसाएँ, कामनाएँ, आशाएँ और तृष्णाएँ भयंकर विप्लव उत्पन्न कर देती हैं। हमारा आन्तरिक जीवन एक समरस्थलीके सदृश अशान्त, अस्थिर हो जाता है।

मन ही मनका घातक होता है। यदि उचित निरीक्षण न किया जाय तो मन पापका आगार, कुत्सित कल्पनाओंका भण्डार और असंयमका आलय बन सकता है। कलुषताके प्रश्रयसे यह हमारा शत्रु बन जाता है। हमसे ऐसे अनेक दुष्कर्म करवा डालता है कि बादमें पश्चात्तापकी अग्निमें जलना पड़ता है। अतः प्रत्येक विवेकशील व्यक्तिकी मूल समस्या मनोनिग्रहकी समस्या है। उसीको वशमें करना चाहिये।

मनको नियन्त्रित करनेकी महत्ता देखिये—

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थ कामिनि पातिनो।
चितस्स दम यो साधु चित्तं सुखावह॥

अर्थात् 'जो कठिनाईसे निग्रहयोग्य, शीघ्रगामी, जहाँ चाहे जानेवाला हमारा यह चंचल मन है, उसका दमन करना ही उत्तम है। दमन किया हुआ चित्त ही सुखप्रद होता है।'

स्वयं मन ही आत्मनिरीक्षण करता अर्थात् मनकी सृष्टिके भद्र-अभद्र, उचित-अनुचित, सार-निस्सार कार्योंकी देख-रेख रखता है। आत्मनिरीक्षणसे मनुष्य मनकी क्रियाओंपर अनुशासन करना और उसे ठीक मार्गपर आरूढ़ करना सीखता है।

मनको स्थिर करनेके लिये नित्य स्थायी और शाश्वत ब्रह्म आत्मा तथा अपने इष्टदेवके गुणोंपर उसे केन्द्रित रखनेका अभ्यास कीजिये। अभ्यास करते-करते मन एकाग्र होने लगेगा। इस एकाग्रतासे ही अन्तर्द्वन्द्वोंसे मुक्ति हो सकती है। चेतन तत्त्वके सान्निध्यसे ही मुक्ति है।

आपका मन जब धन, यौवन, परिवारमें मदमस्त होकर नृत्य कर उठे तो उसे रोकिये। उसे यह समझाइये कि ये सब सांसारिक वस्तुएँ अनित्य

और क्षणभंगुर हैं। पलक मारते ही क्षणभरमें विनष्ट हो जाती हैं। संसारके मिथ्या आकर्षण, मोह-मायाका परित्याग कर ब्रह्मपद, अध्यात्मचिन्तन और समाजसेवामें अपना जीवन व्यतीत कीजिये।

व्यर्थ ही दूसरोंपर संदेह करना, संशयमें रहना छोड़ दीजिये। गीता कहती है—'**संशयात्मा विनश्यति**' सदा संशय करनेवाला, दूसरोंको संदेह-दृष्टिसे निरखनेवाला अविश्वासी, अनियन्त्रित व्यक्ति क्षयको प्राप्त होता है। न दूसरोंके विषयमें क्षुद्रता तथा दुर्भावनाएँ लाइये, न स्वयं अपने विषयमें हीनत्वकी भावनाएँ उत्पन्न कीजिये। ये दोनों ही आपके मनकी विकारमय स्थितियाँ हैं।

दुःख क्या है? चिन्ता किस महाराक्षसीकी संतान है? काम-क्रोध, अभिमान-अहंकार, गर्व-मद, भेद-घृणा, वैर-विरोध, अश्रद्धा-अविश्वास, दुराचार-अनाचार आदि अनर्थ कहाँ उत्पन्न होते हैं? वास्तवमें संसारमें इन विकारोंके आधार हमें भिन्न-भिन्न रूपोंमें मिल जाते हैं। हमारा मन ही उन छोटे-बड़े आधारोंको लेकर अपना ताना-बाना बुना करता है। मनुष्यको कोई भी दुःख-सुख नहीं देता, दुःख-सुख तो हमारा मन ही देता है। मैत्रीभाव अथवा द्वेष-वैरका भाव, कुकल्पनाएँ या सद्‌भावनाएँ—सबका कारण मन ही है। इसलिये मनको वशमें करके, भोगोंसे हटाकर सुख-दुःखसे निर्लिप्त रहकर जीवन व्यतीत करना ही जीवनका शान्तिमय मार्ग है।

यौवन, आनन्द, उत्फुल्लता, उत्साह—ये सब आपके मनकी उच्चतम स्थितियाँ हैं। आयुसे किसी व्यक्तिका जवानी-बुढ़ापा नहीं नापा जा सकता। यौवन हमारी इच्छाकी निष्ठा, सुकल्पनाकी एक विशिष्टता, सामर्थ्य एवं पराक्रमकी एक साहसिक मनःस्थितिमात्र है।

वृद्धत्व कल्पनाकी, हीन दशाकी स्थिति है। जिस व्यक्तिमें इच्छाशक्ति और सामर्थ्यका ह्रास हो जाता है, वही वृद्ध है। जिसमें इच्छाशक्ति और सामर्थ्यका अभाव नहीं है, ऐसी मनःस्थितिवाला व्यक्ति चाहे शरीरसे झुर्रियोंवाला ही क्यों न हो, मनसे आशावान् और उत्साहपूर्ण है!

स्मरण रखिये—चिन्ता, संदेह, विषाद, आत्म-संशय, भय और निराशा आदि वे कुत्सित मनःस्थितियाँ हैं, जो किसी भी विकासोन्मुख व्यक्तिको धूलि-धूसरित कर देनेमें समर्थ हैं। इसके विपरीत जिसे उच्च विषयों, उन्नति तथा शक्तिवर्द्धन, ब्रह्मचिन्तनमें उत्साह है, वह एक स्वस्थ मनःस्थितिमें निवास कर रहा है। ऐसा व्यक्ति विषम परिस्थितियोंकी भयावनी चुनौतीको बच्चोंकी

अतृप्त जिज्ञासाके समान उल्लास और जीवनकी क्रीड़ा समझता है। आप उतने ही युवक हैं, जितना आपमें विश्वास है, उतने ही वृद्ध हैं जितना अपने तथा अपनी शक्तियोंके प्रति संदेह है। आप उतने ही जवान हैं जितनी आपमें आत्मदृढ़ता है और उतने ही बूढ़े हैं जितना आपमें भय है। आशा जवानीकी प्रतीक है, निराशा बुढ़ापेकी निशानी। जबतक पृथ्वीपर आपका हृदय सौन्दर्य, उल्लास, साहस, वैभव और शक्तिका संदेश देता है, तबतक आप युवक हैं, उन्नतिशील हैं।

अपने जीवनमें कुछ समय एकान्त-चिन्तनके लिये अवश्य रखिये और उसमें सोचिये कि आपके सम्पूर्ण दिनका विचार-प्रवाह, शुभ चिन्तन अथवा अशुभ चिन्तन कैसा रहा है? आज आपने कितना स्वयं अपना, तो कितना दूसरोंका शुभ चिन्तन किया है? कितना समय व्यर्थके बकवाद, परनिन्दा, दोषदर्शनमें नष्ट किया है? दूसरोंसे कब-कब और क्यों लड़े-झगड़े हैं? शान्तिके लिये क्या किया है? वासनाके कुचक्रमें पड़कर आप क्या करते रहे हैं? आपकी आजकी भावनाएँ, आवेग, अन्तर्द्वन्द्व कैसे रहे हैं? नव-निर्माणके हेतु आपने क्या किया है? इन प्रश्नोंके उत्तरसे आपको विदित होगा कि आप कितने भले अथवा बुरे हैं।

मनको स्वस्थ रखिये; सद्भावों और शुभ विचारोंसे परिपूर्ण सरस बनाये रहिये। स्वस्थ मन स्वयं अपनी उन्नति और श्रमकी शुभ कामनाएँ रखता है। नयी शिक्षा, नया अनुभव ग्रहणकर श्रेष्ठ नागरिक बननेका प्रयत्न करता है।

अपने मनको ऐसा नियन्त्रित कीजिये कि वह शुभ दर्शन, सत्कामना, हितचिन्तनमें ही संलग्न होता रहे। अपने 'अहम्' को सद्विचारमें लगाना स्वस्थ मनकी निशानी है। दूसरोंकी व्यर्थ टीका-टिप्पणी, व्यर्थ आलोचना, नीचा दिखानेकी मनोवृत्ति अस्वस्थ मनके प्रतीक हैं। परच्छिद्रान्वेषणसे हमारे अहम्की प्यास तृप्त नहीं होती वरं हम अधिकाधिक अतृप्त, दुःखी और अशान्त बनते हैं। यह विषम रोग है। मानसिक संतुलनमें ही मनका स्वास्थ्य है।

सफलता और मनःशान्ति

आजके युगमें आत्मोन्नतिकी दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं। १-स्वयं अपनी उन्नति, अपना कल्याण। हमें दूसरोंसे क्या प्रयोजन, हमें तो अपना सुधार करना है। ऐसे ऋषि जगत्-समाजकी उपेक्षा कर पर्वत और जंगलोंकी कन्दराओंमें एकान्त साधना करते हैं। उन्हें अन्य व्यक्ति, समाज, देशसे, उसकी उन्नति आदिसे मतलब नहीं। २-दूसरी विचारधारा है कि समाजको सुन्दर बनाओ, समाजका हित देखो, अपनी परवाह न करो। समाजका हित ही सर्वोपरि है। समाजके हितमें ही अपना हित निहित है। वास्तवमें ये दोनों विचार-धाराएँ पृथक्-पृथक् अपनेमें अपूर्ण हैं। एकान्त साधना करना और जिस समाजमें रहते हैं, उसकी उपेक्षा करना बड़ा अन्याय है, दूसरी ओर केवल समाज-सेवाका ही ध्यान रखना और 'स्व' की उपेक्षा करना बड़ी भारी मूर्खता है। सफलता और सुखके नियम ऐसे होने चाहिये जिनमें उपर्युक्त दोनों विचारधाराओंका समन्वय हो। 'स्व' और 'पर' दोनोंका उपकार हो। व्यक्ति और समाज दोनोंका समानरूपसे अभ्युदय हो। नीचे लिखे नियमोंका निर्माण एक ज्ञानी संत महात्माने इसी दृष्टिको सम्मुख रखकर किया है—

नियम (१)

प्राप्त विवेकके प्रकाशमें अपने दोषोंको देखना और उन्हें मिटानेमें सतत प्रयत्नशील रहना। इस नियमके अन्तर्गत आत्मनिरीक्षणका महत्त्वपूर्ण कार्य आता है। मनुष्यके मनमें वासना और विवेकमें सतत संघर्ष चलता रहता है। वासना तो जीवमात्रका भयंकर शत्रु है। कहा भी है—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-
मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते
यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥

अर्थात् 'हरिण, हाथी, पतंग, भौंरा और मीन—ये पाँचों जीव एक-एक विषय-वासनाके कारण मारे जाते हैं फिर जो प्रमादी अकेले ही अपनी पाँचों इन्द्रियोंसे पाँचों विषयोंका सेवन करता है, वह क्यों न मारा जायगा?'

विवेक ही वह दिव्य शक्ति है जो हमें वासनाओंके भयंकर जालसे मुक्त

रखती और सत्पथ प्रदर्शित करती है। आत्मनिरीक्षणद्वारा हमारा विवेक स्पष्ट होता है, अपनी दुर्बलताएँ साफ-साफ दृष्टिगोचर होती हैं। उत्तेजना और आवेशमें प्रायः हम उचित-अनुचितका विवेक नहीं कर पाते। इन्द्रिय-संयोग या वासनातृप्तिमें जो सुख अनुभव होता है, वह क्षणिक है। वह पहले अमृत-सा प्रतीत होनेपर भी परिणाममें प्रत्यक्ष विषका कार्य करता है (गीता १८। ३८)। आत्मनिरीक्षणमें जाग्रत् विवेक हमें इन्द्रिय-तृप्ति और असत् भावुकताके दुष्परिणाम दिखाता है। अतः हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम आत्मपरीक्षणके द्वारा अपने मनकी कालिमाको दूर करें, दोषोंको मिटानेके लिये सतत प्रयत्नशील रहें। यह कार्य सहज नहीं, वर्षोंकी साधना और प्रयत्नका परिणाम है। एक बार व्रत ले लें कि हम अवश्य अपने दोषोंको दूर करेंगे, पनपने न देंगे। कुसंग, कुविचार तथा असत् साहित्यके संसर्गमें नहीं रहेंगे, विवेकके अनुसार कार्य करेंगे। इस व्रतको निभायें। प्रलोभनके समक्ष दृढ़ बने रहें।

नियम (२)

यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो न पमज्जति।
सोमं लोकं पभासेति अब्भा मुको व चन्दिमा॥

'जो पहले भूल करके फिर सँभल जाता है, पीछे भूल नहीं करता, वह मेघसे मुक्त चन्द्रमाकी भाँति इस लोकको प्रकाशित करता है।' अतः दूसरा नियम है—की हुई भूलको दुबारा किसी भी रूपमें न करनेका व्रत लेकर उसे निभाना तथा उसके परिहारके लिये सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना। भूल दुबारा न करेंगे, सत्पथपर ही चलेंगे, चाहे कितनी भी कठिनता क्यों न हो। यह विश्वास आत्मपरीक्षण करनेके लिये रामबाण ओषधि है। विषयोंके प्रपंच, इन्द्रियोंके संचालन, मनकी चंचलतासे मुक्ति पानेके लिये सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थनाको अपने दैनिक जीवनका क्रम बना लेना चाहिये। हम अपनी वृत्तियोंको अन्तर्मुखी करें—'**कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः**'। प्रार्थनासे भगवान्‌में बुद्धि लीन होती है और सद्भाव, सत्प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं। भगवान्‌का सहारा लेने, उनकी भावना सदा-सर्वदा मनमें रखने और मनको निश्चयपूर्वक भगवत्कार्यमें लगानेसे वृत्तियाँ ऊँची उठती हैं, अधोगामिनी प्रकृति दूर हो जाती है। प्रार्थना एक प्रकारका आध्यात्मिक व्यायाम है, जिससे अन्तरात्माकी सफाई और पुनर्निर्माण होता है। मनुष्य ब्रह्ममें लीन हो जाता है और बुराईसे उसका सम्बन्ध टूट जाता है।

नियम (३)

दूसरोंके कर्तव्यको अपना अधिकार, उनकी उदारताको अपना गुण, निर्बलताको अपना बल न मानना चाहिये। हम केवल अपने कर्तव्योंको पूर्ण करनेका ध्यान रखें, अधिकार लेनेकी रट न लगावें। दूसरे जो उदारतापूर्वक हमें दें, उसे स्वयं अपने गुणोंद्वारा प्राप्त वस्तु न समझ लें। दूसरोंकी निर्बलताको अपना बल मानकर उनपर मनमाना अत्याचार अथवा स्वशासन न करने लगें। यह हमारे मनमें मिथ्या अहंकार उत्पन्न कर हमें सीमित (संकीर्ण) कर देता है। हम मदमस्त होकर समाजमें उच्छृंखलता उत्पन्न करते हैं। यदि ऐसे नियमका ध्यान न रखा जायगा तो समाज अहंकारी, अभिमानी, दम्भी, हिरण्यकशिपु-जैसे व्यक्तियोंसे परिपूर्ण हो जायगा। दर्प उसे अंधा बना देगा।

नियम (४)

जितेन्द्रियता, सेवा और भगवच्चिन्तनद्वारा सत्यकी खोज करना। इस नियमके अनुसार व्यक्तिको समाजकी सेवा करनेका अवसर दिया गया है, किंतु उसे अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर पहले आत्म-विजय कर लेना चाहिये। ब्रह्मचर्यमें जितेन्द्रियता आती है। मनको ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंको उचित सेवा-कार्यमें लगाना सरल हो जाता है।

नियम (५)

अपने प्रति सदा-सर्वदा मस्तिष्कके पक्षपातरहित न्यायका तथा दूसरोंके प्रति हृदयजन्य (क्षमा)-का व्यवहार रखना। यदि हम अपने प्रति भावना या सहृदयताका व्यवहार करें तो सम्भव है अपनी गलतियोंको भी माफ कर दें, भावुकतामें बह जायँ। कहीं भावुकतामें आकर अपनी गलतियोंकी ओर उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। विवेक तथा अन्तरात्मा जैसा न्याय करे, वैसा ही व्यवहार उत्तम रहता है।

नियम (६)

निकटवर्ती जन-समाजकी मन-वचन-कर्मसे जैसे भी, जितनी बन पड़े क्रियात्मक-रूपसे सेवा करनी चाहिये। दूसरेकी सेवा करनेसे मनुष्यका अहं तथा स्वार्थ दूर होते हैं। समाजसेवासे हमारा स्वार्थ और संकुचितता दूर होते

हैं और आत्मिक बलकी वृद्धि होती है। दूसरोंके सम्पर्कमें आने, उनसे सहयोग और सहायता करनेसे हम संयम, सहिष्णुता, धैर्य और सहानुभूति सीखते हैं। हमारी उच्छृंखलता, चपलता और संकुचितता दूर हो जाती है। निन्दा-वृत्ति दूर होती है।

द्वेष-वृत्ति छोड़ दीजिये। चित्तमें द्वेष उत्पन्न करनेवाली विचारतरंगोंकी गति चक्राकार होती है। द्वेषका प्रत्येक विचार ऐसे ही विचारोंका मण्डल चारों ओर बनाता है और स्वयं चारों ओर घूमकर पुनः पूरा मण्डल बनाकर द्वेषी और ईर्ष्यालुको हानि पहुँचाता है।

समाज-सेवाका कार्य करनेवालेको सारी संकुचित भावनाओंका परित्याग कर देना चाहिये। सेवाके अधिकारीको निरन्तर दलितों, गिरे हुए मनुष्यों, अशिक्षित, पिछड़े हुए व्यक्तियोंको ऊँचा उठाने, गलेसे लगाने और अन्य लोगोंके समकक्ष स्थान दिलानेमें प्रयत्नशील रहना चाहिये।

दूसरोंको अपनी सेवा, प्रेम, धन जो भी दे सकें प्रचुरतासे देते रहिये। हम जो देते हैं, वह वास्तवमें नष्ट नहीं होता; वरं दुगुना-चौगुना होकर, एकत्रित होकर हमें प्राप्त होता है। दान एक प्रत्यक्ष लाभका व्यापार है।

नियम (७)

कार्य और गुणोंमें भिन्नता होते हुए आपके दूसरोंके प्रति स्नेहमें एकता होनी चाहिये। आप कोई भी कार्य करें, जीवन-यापनके लिये कुछ भी गुणोंका विकास करें, किंतु दूसरोंके प्रति स्नेहमें एकता-समता रखिये। अपना प्रेम प्रचुरतासे औरोंको दीजिये। आपका प्रेम दूसरोंके लिये प्रेरक मधु होगा। आपकी छोटी-सी प्रशंसासे जनता और समाज सत्पथपर तेजीसे चलेंगे। एक विद्वान्‌ने लिखा है—

'क्या तुम जानते हो कि सत्य, शिव, सुन्दर और मुक्त आत्मा इस हड्डियोंकी कोठरीमें बद्ध होनेके लिये क्यों राजी हुआ है! सुनो, वह प्रेमका अमृत चखनेके लिये ही इस मल-मूत्रकी गठरीमें बँधा है। उसीका जीवन धन्य है, वही सौभाग्यशाली है, जो प्रेमका आस्वादन करता है। उसने मनुष्य-जन्म धारण करनेका सच्चा फल पाया, जिसे परमेश्वरने प्रेमका अलौकिक उपहार प्रदान किया है। प्रेमकी बूँद हृदयकी सीपमें पड़कर कैसे अमूल्य मोती उपजाती है, इसे कुजड़े नहीं, जौहरी ही जान सकते हैं। प्रेमी अपने लिये

नहीं जीता; वह दधीचिकी तरह अपनी हड्डियाँ भी दूसरोंको दे देता है। क्यों? इसीलिये कि वह दूसरोंको प्यार करता है। वे मूर्ख हैं जो कहते हैं कि सज्जनोंके साथ प्रेम और दुष्टोंके साथ द्वेष करना चाहिये। वे नहीं जानते कि द्वेषका हथियार इतना पैना नहीं है, जितना प्रेमका। बिना हड्डीके जीवोंका अस्तित्व अस्थिर है, इसी प्रकार प्रेमरहित मनुष्यका जीवन डावाँडोल है। आँधीमें उड़नेवाली रूईकी तरह वह परिस्थितियोंके वशमें होकर इधर-से-उधर नाचता फिरता है और अन्तमें नष्ट हो जाता है। सौन्दर्य बाहर कहाँ ढूँढ़ते फिर रहे हो? अपने हृदयको टटोलो, जरा देखो तो सही उसमें कितना सुन्दर प्रेमका रस भरा हुआ है, अन्यथा मनुष्य क्या है? मुट्ठीभर हड्डियोंका ढाँचा मात्र।'

वास्तवमें प्रेमका दान देकर ही मनुष्य अपना और दूसरोंका जीवन निर्माणकर अपनी आत्माको उन्नत बनाता है, अपनी उदारताका विकास करता है, दूसरोंका प्रेरणा-स्रोत बनता है।

नियम (८)

अपने आहार-विहारमें संयम और दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन होना चाहिये।

असंयमी व्यक्ति जानवरोंसे भी गया-बीता है। जानवर भी भोजन तथा वासनापूर्तिमें कुछ संयम रखते हैं, किंतु कुछ अविवेकी व्यक्ति आहार-विहारमें बड़े असंयमी होते हैं। फलतः बीमार पड़कर अल्पायुमें ही जीवन-लीला समाप्त करते हैं। संयम एक ऐसा अंकुश है, जो हमें विवेक और सत्यके पथपर आरूढ़ रखता है। अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लो, तुम विजयी कहलाओगे!

अपने दैनिक कार्योंमें पूर्ण स्वावलम्बन रखिये। स्नान, अपने स्थानकी सफाई, वस्त्रोंकी धुलाई, वस्तुओंकी सुव्यवस्था, पठन-पाठन, बाजारसे वस्तुओंका क्रय तथा हिसाब रखनेमें दूसरेका आश्रय मत देखिये! स्वयं अपना काम करनेसे हमें अपनी आवश्यकताओं तथा उनके विस्तारका सही अनुमान होता रहता है।

आपको अपने मनको मजबूत बनाना चाहिये। भय, चिन्ता, घबराहट और व्याकुलताको दूर कर अपनेको दृढ़ और आत्मविश्वासी बनाना चाहिये। विपत्तिकालमें मनका संतुलन स्थिर रखनेका अभ्यास रखना चाहिये!

नियम (९)

सुन्दर बनिये! सच्चे अर्थोंमें सुन्दर वह है जिसका शरीर श्रमी है; मन संयमी है, बुद्धि विवेकवती है और अहं अभिमानशून्य है।

इस दृष्टिसे सौन्दर्य हम सबके लिये परम पूज्य उपासनाका हेतु है। जो ऊपरसे आकर्षक, पर अंदरसे कलुषित विचार, गंदी वासना, लोलुप भावना, बुरे स्वभावसे भरा हुआ है, जो दूसरेका बुरा चाहता है, वह कुरूप और बदसूरत है, वह सुन्दरतासे दूर है; जिसका मन स्थान-स्थानपर भागता फिरता है, वह कुरूप है। जिसकी बुद्धि अविवेककी दल-दलमें फँसी है, भ्रममें भटक रही है, वह कुरूप विचारधाराके बन्धनमें फँसा हुआ है। सावधान! अपनेको आरामतलब, विलासी और कामचोर बनानेवाला कुरूप है। आचरणकी श्रेष्ठता ही सुन्दर बननेकी सच्ची कसौटी है।

नियम (१०)

सिक्केसे वस्तु, वस्तुसे व्यक्ति, व्यक्तिसे विवेक और विवेकसे सत्यको अधिक महत्त्व प्रदान किया कीजिये। हमारा आजका धर्म 'टका-धर्म' बन गया है। यह सर्वथा त्याज्य है।

सिक्का मनुष्यने अपनी सेवा, जीवनकी परिपुष्टि, विकास और सहायताके लिये निकाला था। खेद है कि आज वही सिक्का हमें नाना प्रकारके कुत्सित नाच नचा रहा है। सिक्केके क्षणिक प्रलोभनमें हमारे धर्म, कर्म, न्याय, सत्यता, निष्ठा, प्रेम तथा समस्त सम्बन्ध नष्ट हो जाते हैं। यह मनुष्यका दुर्भाग्य ही है।

सिक्का हमारे मनको बेईमानीकी ओर ले जाता है। हम सोचते हैं कि तनिक-सी बेईमानी, चोरी, अनीतिको कौन देखता है? बेईमानीसे पैसा मिल सकता है, कुछ लोगोंको भ्रममें डाला जा सकता है, किंतु वह क्षणिक है। उससे मनुष्यकी महत्ताका कोई ज्ञान नहीं हो सकता।

सिक्केसे वस्तुका अधिक महत्त्व है। वस्तुसे व्यक्तिको अधिक महत्त्व मिलना चाहिये। व्यक्तिसे विवेक और विवेकसे सत्य महत्त्वपूर्ण है। सावधान! आपको अपनी आत्माके सत्यस्वरूपको ही ग्रहण करना है। आपका जीवन सत्यके लिये एक लम्बी यात्रा है। सिक्केके झूठे रंगीन खिलौनोंमें मत बहक जाना!

नियम (११)

व्यर्थ चिन्तन त्यागकर वर्तमानका सदुपयोग कर भविष्य उज्ज्वल बनानेका सतत प्रयत्न करना चाहिये। ईर्ष्या, द्वेष, बुरी योजनाओंको मनमें रखनेसे मानसिक संस्थान गंदा होता है। राक्षसोंकी सम्पत्ति घृणा है। सत्यसे मन पवित्र होता है, भक्ति और पुण्यसे आत्मा बलवती बनती है। सतत प्रयत्नसे अपना विकास समृद्ध ज्ञानमय जीवनकी ओर रखिये। तभी कल्याण है!